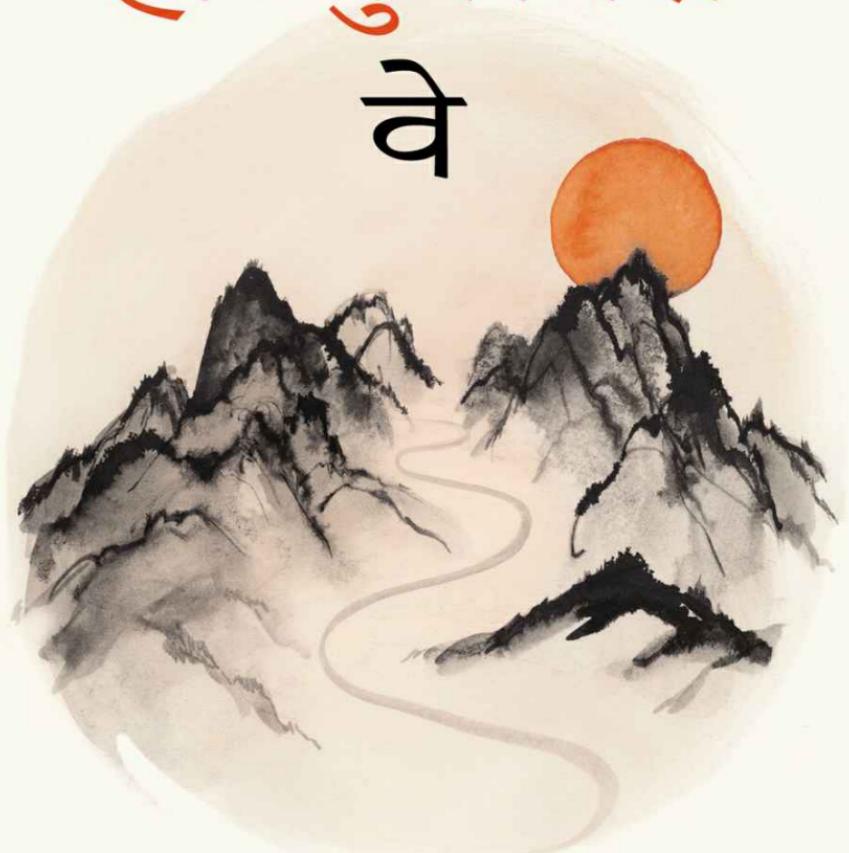


द हार्टफुलनेस वे



आध्यात्मिक रूपान्तरण के लिए
हृदय-आधारित ध्यान

दाजी

कमलेश डी. पटेल
एवं जोशुआ पोलॉक

Hindi Translation of *The Heartfulness Way*

द हार्टफुलनेस वे

आध्यात्मिक रूपान्तरण के लिए
हृदय पर आधारित ध्यान

कमलेश डी. पटेल
जोशुआ पोलॉक



विषय-सूची

आमुख

परिचय

भाग एक : हार्टफुलनेस क्यों

1. साधक की यात्रा

2. ध्यान के रहस्यों का प्रकटन

मनोभाव

यौगिक प्राणाहृति

भाग दो : हार्टफुलनेस का अभ्यास

3. ध्यान

कब और कहाँ ध्यान करें

ध्यान का आसन

रिलैक्सेशन

ध्यान कैसे करें

ध्यान कितनी देर करें

ध्यानावस्था

4. सफाई

सफाई करना

5. प्रार्थना

प्रार्थना के सहारे जुड़ना

हार्टफुलनेस की प्रार्थना

भाग 3: गुरु

6. गुरु की भूमिका

निष्कर्ष

हार्टफुलनेस का अनुभव कीजिए

शब्दावली

टिप्पणियाँ

आमुख



हम यह कभी नहीं जान पाते कि जीवन में हमारे लिए क्या नियत है और अगले पल क्या होने वाला है। यही जीवन के रहस्य और उसके सौन्दर्य का अभिन्न अंग है। इस धरती पर अपने जीवन के छह दशकों के दौरान मुझे अनेक आशीर्वाद प्राप्त हुए। उनमें से एक सन् 1976 में तब मिला जब मैं युवा था और भारत के अहमदाबाद शहर में फ़ार्मेसी की पढ़ाई कर रहा था। मैं अपने कॉलेज के एक साथी का आभारी हूँ जिसकी वजह से मैं हार्टफुलनेस ध्यान पद्धति से परिचित हो पाया। उसके कुछ ही महीनों बाद मैं एक विलक्षण व्यक्ति के सम्मुख आया जो तभी मेरे प्रथम गुरु बन गये और जिहोने इस अभ्यास में मेरा मार्गदर्शन किया। उनका नाम रामचन्द्र था और हम उन्हें ‘बाबूजी’ कहते थे।

पहली बार में ही हार्टफुलनेस ध्यान करने का मुझ पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि मैं समझ गया कि मुझे अपने जीवन की दिशा व सहारा मिल गया है। लेकिन बाबूजी से मुलाकात का असर उससे भी कहीं परे का था। कुछ ऐसा जो अपने सार में इतना कीमती और सूक्ष्म था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। हालाँकि तब से लेकर मेरे भीतरी संसार में कई जगत् और आयाम खुल चुके हैं लेकिन पिछले चार दशकों के दौरान जो प्रकट हुआ है, उसका यह मात्र एक पहलू है। इससे भी अद्भुत तो रोजमरा के गुणों की वह दौलत है जो हार्टफुलनेस अभ्यास के माध्यम से आयी है। ये गुण हैं—प्रेम, स्वीकार्यता, विनम्रता, सेवाभावना, करुणा, समानुभूति और अस्तित्व के प्रति एक उच्च उद्देश्य।

इन सब की शुरुआत ध्यान की एक सरल प्रक्रिया से होती है। हमारी ओर से ज्यादा प्रयास की आवश्यकता नहीं है केवल शान्त बैठ कर अपनी आँखें बन्द करके अपने हृदय में सम्पूर्ण अस्तित्व के स्रोत पर अपना ध्यान केन्द्रित करना। ध्यान के अभ्यास को अगर हम बच्चों की तरह हर्षोल्लास और मासूमियत से करें तो हमारा भीतरी जगत् हमारे सम्मुख स्वाभाविक रूप से खुलने लगेगा। हृदय पर आधारित ध्यान के अभ्यास में हम अपने अस्तित्व

के जिस सरलतम और शुद्धतम पहलू की खोज व अनुभव करते हैं वह है —‘हमारी आत्मा’। इससे सम्बन्धित सब कुछ बिलकुल स्वाभाविक होता है।

इस पुस्तक में दी गयी हार्टफुलनेस के अभ्यास की विधियाँ हमारी आत्मा का पोषण करती हैं, अनर्गल आवरण को हटाती है जो कि हमारी आत्मा को छुपाये रखते हैं और फिर भीतर बच्चे जैसी मासूमियत व हर्ष की उस चमक को प्रकट कर देती हैं जिससे जीवन वास्तव में अर्थपूर्ण बन जाता है। साथ ही हमें शहर के व्यस्त जीवन के तनाव, रोज़ी-रोटी और जीविका, भविष्य और रिश्ते-नाते की फिक्र आदि से भरी इस रोज़मर्हा की दुनिया में भी जीना पड़ता है। हार्टफुलनेस का अभ्यास इन सबके प्रति हमारी प्रतिक्रियाओं को सरल बना कर हमें अपना दैनिक जीवन एक समृद्ध और परिपूर्ण ढंग से जीने में मदद करता है।

यदि आपको मालूम पड़े कि कष्टों से पार पाने तथा आशा व सन्तुष्टि के आसमान में उड़ान भरने का कोई व्यावहारिक तरीका उपलब्ध है तो क्या आप उसमें रुचि लेंगे? हार्टफुलनेस आपको यही भेंट करता है। लेकिन समस्याओं को हटा कर या उनसे मुँह मोड़ कर नहीं बल्कि भीतर से बाहर की ओर हमारा ही रूपान्तरण करके, जिससे कि हम अपनी सीमाओं के बन्धन को हटाकर दुनिया को एक नये नजरिए से देख पायें।

हार्टफुलनेस में हम अपनी चेतना की गहराइयों में उतरते हैं, उसका विस्तार करते हैं और वास्तविक क्षमता को उजागर करने के लिए चेतना से भी परे चले जाते हैं। मुझे आशा है कि आप इस पुस्तक का आनन्द लेंगे और जो कुछ मैंने जीवन की इस यात्रा में अभी तक सीखा है, उससे लाभ उठायेंगे।

जनवरी, 2018

कमलेश डी. पटेल

परिचय



अगस्त, 2015 में जब मैं चेन्नई, भारत में स्थित अपने घर के ऑफिस में बैठा हुआ था तो मेरी पत्नी मेरा फोन लेकर आयी। हँसते हुए उसने मुझे बताया कि “यूरोप से कमलेश जी का कॉल आया है।” मेरी दो साल की बेटी ने यूँ ही फोन उठा लिया था और जब तक मेरी पत्नी देखती उसने उनसे कुछ बातचीत भी कर ली थी। जब मैंने फोन लिया तो उन्होंने कहा, “मैं चाहता हूँ कि तुम ध्यान के विषय में एक किताब लिखो।” मैं तुरन्त मान गया लेकिन मेरे अन्दर थोड़ी घबराहट थी। क्योंकि मुझे मालूम था कि कमलेश जी 40 साल से भी ज्यादा समय से ध्यान कर रहे हैं और विश्व भर के तमाम जिज्ञासुओं के आध्यात्मिक मार्गदर्शक भी हैं। इसलिए मुझे लगा कि इस विषय पर किताब लिखने के लिए वे ही कहीं ज्यादा योग्य थे।

कई सप्ताह के बाद जब हम मिले तो मैंने कहा, “बेहतर होगा कि यह किताब आप खुद ही लिखें।”

वह हँसे और बोले, “इसे हम मिलकर लिखेंगे।”

दो साल के भीतर भारत व अमेरिका की कई जगहों पर अनेक विषयों को लेकर हमारी कई व्यापक वार्ताएँ हुईं। ‘द हार्टफुलनेस वे’ इन्हीं वार्ताओं का क्रमबद्ध संग्रह है।

लगभग 20 साल पहले किताबों के प्रति मेरे आकर्षण ने ध्यान में मेरी रुचि जगायी थी। किशोरावस्था में ही आध्यात्मिकता की ओर मैं खिंचाव महसूस करने लगा था। मुझे भरोसा था कि यदि अपने माता-पिता के विशाल पुस्तक-संग्रह में लम्बे समय तक मैं कुछ खोजता रहूँ तो कुछ ऐसे दुर्लभ और गूढ़ लेख ढूँढ़ ही निकालूँगा जिनके पन्नों से जगत् के गोपनीय रहस्य फूट पड़ेंगे।

पहली किताब जो भाले की नोंक की तरह मेरे हाथ लगी, वह थी प्रख्यात सन्त लाओत्जू द्वारा लिखित किताब—‘ताओ ते चिंग’। इसकी सरलता और ज्ञान ने मुझे मन्त्रमुग्ध कर दिया और मेरे हृदय में उठ रही आध्यात्मिक तड़प की लपटों को हवा दे दी। अब मैं दूसरी किताबों को पढ़ने के लिए प्रेरित हुआ। मैंने बौद्ध, ताओ, सूफी, ईसाई और अन्य साहित्यों का

अध्ययन किया। मैंने अरस्तू और ऑगस्टीन को, इमर्सन और एपीक्यूरस को भी पढ़ा। धीरे-धीरे यह विचार मेरे अन्दर घर करने लगा कि इस पूरे अध्ययन से तो मैंने केवल दूसरों के विचारों और अनुभवों को ही जाना है पर मेरा खुद का अनुभव क्या है? अभी तक तो मेरे द्वारा प्राप्त सारी जानकारी अमूर्त थी। तमाम आध्यात्मिक विचारों से मैं परिचित हो चुका था लेकिन केवल किताबी तौर पर। इस दौरान कई नये शब्द भी मैंने पढ़े जैसे ‘एनलाइटनमेंट’, ‘सटोरी’, ‘समाधि’, ‘इल्युमिनेशन’। मैं इन धारणाओं का अर्थ खुद समझने की ज़रूरत महसूस करने लगा। मैं जानता था कि इसके लिए व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना होगा।

पागलों की तरह मैं तरह-तरह के अभ्यास अपनाने लगा। मैंने ध्यान की कक्षाएँ कीं, योग का अभ्यास किया, मार्शल आर्ट्स का अध्ययन किया। एक बार मुझे एक प्रसिद्ध जेन गुरु मिले। जब उन्होंने मुझ पर अपनी दृष्टि डाली तो मैं हकलाते हुए इतना ही कह पाया, “अभी तक मैं किसी भी गुरु से नहीं मिला हूँ।”

“लेकिन तुम मिलोगे,” उन्होंने कहा।

तब तक मैंने ध्यान का नित्य अभ्यास शुरू भी कर दिया था पर ध्यान से मुझे कोई सुकून नहीं मिला। यह एक संघर्ष ही था—बड़ा कठिन और उबाऊ। कुछ वर्षों की खोज के बाद मेरा उत्साह ठण्डा पड़ने लगा। हार कर खाली हाथ ही अन्ततः मैंने अपनी खोज बन्द कर दी।

आगस्त 2002 की बात है जब एक स्थानीय दुकान के बाहर खड़े-खड़े मेरी मुलाकात एक अजनबी से हो गयी तथा जिससे बातचीत करके मुझे यह पता चला कि वह सहजमार्ग (जिसका हिन्दी में अर्थ ‘प्राकृतिक मार्ग’ है) या हार्टफुलनेस नाम की पद्धति से ध्यान का अभ्यास करती है। उसकी बातचीत से लगा मानो हार्टफुलनेस के अभ्यास ने सचमुच उसकी ज़िन्दगी बदल दी हो।

ध्यान के इस नये तरीके को जानने की उत्सुकता के बावजूद मैं थोड़ा आशंकित भी था। ध्यान के बारे में किये जाने वाले तमाम दावों का अब मेरे ऊपर कोई भी असर होना बन्द हो गया था। ध्यान का मेरा अनुभव अलग तरह का रहा था। मैंने तो सोचा कि शायद मैं ध्यान करने के लिए बना ही नहीं था। साथ ही यह संशय भी मुझे था कि एक सही रास्ता इतनी आसानी से तो नहीं मिल सकता। मैं अक्सर सोचता था कि क्या एक योग्य गुरु खोजने के लिए हिमालय की गहरी धाटियों या सुदूर किसी जगह पर जाना होगा। किसी बिलकुल असली चीज़ का यूँ ही किसी नुक्कड़ पर अकस्मात् मिल जाना आखिर कहाँ तक जायज हो सकता है? लेकिन मेरे भीतर से किसी ने कहा, “ऐसा सम्भव है...”

फिर सितम्बर की एक उज्ज्वल सुबह मेरी माँ का फ़ोन आया। वह रो रही थीं। मेरी छोटी बहन किसी कार से दुर्घटनाग्रस्त हो गयी थी। वह बेहोश थी और उसे अस्पताल ले जाया जा रहा था। कोई नहीं जानता था कि वह जीवित भी बचेगी या नहीं? मैं आधे रास्ते में था और कुछ भी नहीं कर सकता था। 16 वर्ष की आयु में मध्य रात्रि को उसका देहावसान हो गया।

यह ऐसा समय होता है जब लोग जीवन का अर्थ, आध्यात्मिकता और आशा की किरण खोजने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन मैं तो यह सब पहले ही कर चुका था और खाली हाथ लौटा था। फिर भी मैंने ब्रायन जोंस नाम के एक हार्टफुलनेस प्रशिक्षक से मिलने का समय तय किया। ब्रायन एक पेशेवर कलाकार हैं। हम उनसे उनके स्टूडियो में मिले, जो विभिन्न स्तरों तक तैयार तमाम पेंटिंगों से भरा हुआ था। कॉफी पीते हुए यह जानकर मैं बहुत प्रभावित हुआ कि हार्टफुलनेस प्रशिक्षक स्वयंसेवक होते हैं और अपनी इस सेवा के लिए कोई शुल्क नहीं लेते। ब्रायन ने स्टूडियो से लगे एक कमरे में ध्यान करने के लिए या जैसा कि वह कहते थे एक ‘सिटिंग’ देने के लिए मुझे आमन्त्रित किया। उन्होंने मुझे एक कुर्सी पर बैठाया और खुद सामने एक कुर्सी पर बैठ गये। उन्होंने मुझे समझाया कि हृदय पर ध्यान कैसे करना है। उन्होंने कहा कि उनका काम बस मेरे साथ ध्यान करना है जिससे मेरे ध्यान में मदद मिलेगी। उन्होंने मुझसे आँखें बन्द करने को कहा और फिर कहा ‘कृपया शुरू कीजिये।’

फिर क्या हुआ यह बताना बड़ा कठिन है। यह समझने में मुझे ज्यादा देर नहीं लगी कि मैंने जो अनुभव किया था वह समाधि की एक झलक थी। एक गहरी आत्म-सन्तुलन की दशा जहाँ आप स्वयं से परे चले जाते हैं, अभी और यहाँ से परे और हर चीज़ से परे हो जाते हैं। जब उन्होंने ‘बस कीजिए’ कहकर ध्यान समाप्त किया तो मुझे ऐसा लगा कि मैं उस शाश्वतता से बाहर खींच लिया गया हूँ।

ध्यान के बाद की स्थिरता के पलों में, उससे मिलने वाले आनन्द में हम शान्त होकर बैठे रहे। उन्हीं पलों में मैंने यह जान लिया कि किसी अद्भुत चीज़ का मुझे अनुभव हुआ है। वह चीज़ जिसके लिए मैं जीवन भर प्यासा रहा। मुझे नहीं मालूम था कि वह चीज़ क्या थी लेकिन पहली बार मेरा हृदय पूरी तरह से प्रफुल्लित और शान्त हुआ था। यह मैं बाद में जान पाया कि यह अनुभव ‘यौगिक प्राणाहुति’ नामक किसी चीज़ के द्वारा घटित हुआ था।

हार्टफुलनेस तीन प्रकार की विधियों—ध्यान, सफाई और प्रार्थना का एक समग्र रूप है। ये तीनों अभ्यास यौगिक प्राणाहुति के द्वारा पोषित होते हैं। प्राणाहुति हार्टफुलनेस अभ्यास का सार (निचोड़) है और इसकी रूपान्तरण-क्षमता की कुँजी भी।

ध्यान के द्वारा हम मन की जटिलता से हृदय की सरलता की ओर बढ़ते हैं। हर चीज़ की शुरुआत हृदय से ही होती है। जब हृदय शान्त होता है तो मन भी स्थिर होता है। जब हृदय सन्तुष्ट होता है तो मन में अन्तर्दृष्टि, स्पष्टता और समझ पनपती है। हम अक्सर सोचते हैं कि हृदय और मन दो भिन्न चीज़े हैं जो एक दूसरे से प्रायः टकराती रहती हैं। हार्टफुलनेस ध्यान में मन को नियमित करने के लिए हम हृदय का सहारा लेते हैं जिससे दोनों एक ही पटरी पर आ जाते हैं। ध्यान की संगति में जब दोनों मिल कर एक होते हैं तो हमारा व्यक्तित्व भी समग्र हो जाता है।

सफाई की विधि हमें उन विभिन्न मानसिक और भावनात्मक प्रवृत्तियों से मुक्त करा देती है जो हमारे जीवन पर हावी रहती हैं। इसके द्वारा हम आन्तरिक स्थूलताओं, तुच्छ प्रवृत्तियों और इच्छाओं को दूर कर अपने हृदय को पवित्र बनाते हैं। धीरे-धीरे फिर हमारा असली स्वभाव प्रकट होने लगता है।

प्रार्थना में हम अपने भीतर मौजूद आध्यात्मिक स्रोत से अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं। प्रार्थना की यह क्रिया आगे चलकर प्रार्थना के भाव की दशा में विकसित हो जाती है। इससे हमें स्रोत के साथ जुड़ जाने का इशारा मिलता है। अब हमारे भीतर एक ऐसी इच्छा और तड़प पैदा हो जाती है जो स्वतः ही ध्यान की गहराइयों में पहुँचा देती है।

हार्टफुलनेस के इस अभ्यास की शुरुआत भारतवर्ष में 20वाँ शताब्दी के आरम्भ में हुई। इसकी शुरुआत करने वाले रामचन्द्र नामक एक योगी थे जिन्हें लोग लालाजी कहते थे। लालाजी ने शुरू से ही सभी धार्मिक व सामाजिक पृष्ठभूमि के अनुयायियों को स्वीकार कर एक समावेशी वातावरण स्थापित करने की पहल की। उनके समय, काल व मूलस्थान में जोकि दुर्लभ था। वे खुद ऐसी अनेक परम्पराओं में लिप्त थे जिनका उन्होंने पुनर्निर्माण किया और एक ऐसा मार्ग बनाया जो आधुनिकता की ओर बढ़ते हुए समाज की सेवा कर सके। वर्तमान के जिज्ञासुओं के पास अनेक जिम्मेदारियाँ हैं और अपनी आध्यात्मिक जिज्ञासाओं की पूर्ति के लिए वे स्वयं को समग्र रूप से समर्पित कर देने की परिस्थिति में नहीं हैं। हार्टफुलनेस एक ऐसे सन्तुलित और समग्र अस्तित्व की पेशकश करता है जहाँ जीवन के आध्यात्मिक और भौतिक दोनों ही पहलू साथ-साथ मधुरता से रह सकें।

लालाजी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी का नाम भी रामचन्द्र था जिन्हें लोग बाबूजी के नाम से जानते थे। उन्होंने हार्टफुलनेस के इस अभ्यास को वर्तमान स्वरूप में लाकर इसे पूर्णता प्रदान की और विश्व भर के जिज्ञासुओं का मार्गदर्शन किया। बाबूजी के उत्तराधिकारी श्री पार्थसारथी राजगोपालाचारी (चारी जी) हार्टफुलनेस के इस मार्ग के तीसरे गुरु थे।

20 दिसम्बर, 2014 को जब चारीजी ने अपनी देह का त्याग किया तो श्री कमलेश इस हार्टफुलनेस परम्परा के चौथे मार्गदर्शक बने।

सन् 2008 में जब मैंने काम के लिए पुनः भारत को चुना तो चारीजी के साथ कई मुलाकातें करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। पहली बार जब मैं उनसे मिला तो वर्षों पहले जेन गुरु द्वारा की गयी भविष्यवाणी मुझे एकदम याद आ गयी। हालाँकि ‘मालिक से मुलाकात’ का अर्थ मैं बाद में समझ पाया कि यह एक ऐसी घटना है जो भीतर ही घटित होती है न कि बाहर।

भारत में रह कर मेरी मुलाकात कमलेशजी से भी हुई जो मेरे पड़ोसी होने के साथ-साथ मेरे एक मित्र के पिता भी थे। जल्द ही मेरे अन्दर उनके लिए अत्यन्त सम्मान और अपनेपन का भाव विकसित हो गया। अब तक जिन लोगों से भी मैं मिला हूँ उनमें वे सर्वाधिक भरोसेमन्द व ज़मीन से जुड़े व्यक्ति लगे। मुझे एक वाक्या याद आता है जब उनके पुत्र ने उनसे कहा कि हमारे अपार्टमेंट में रहने वाला एक सुरक्षाकर्मी हमेशा दुखी रहता है, शायद ध्यान से उसे फ़ायदा हो सके। कमलेश जी का जबाब था, “इस समय ईश्वर की अपेक्षा उसे रोटी की ज्यादा ज़रूरत है।”

कमलेश जी का जन्म 1956 में भारत के उत्तर पश्चिमी प्रान्त गुजरात में हुआ था। हार्टफुलनेस का अध्यास उन्होंने 1976 में आरम्भ किया जब वे फार्मेसी कॉलेज के विद्यार्थी थे। स्नातक होने के बाद वे अमेरिका चले गये और वहाँ न्यूयार्क शहर में एक फार्मेसिस्ट के रूप में कार्य शुरू किया। ध्यान का अपना अध्यास भी उन्होंने जारी रखा। 2011 में चारीजी ने उन्हें अपना आध्यात्मिक उत्तराधिकारी घोषित किया, जो चारीजी के देह त्याग के बाद प्रभाव में आ गया।

तब से कमलेशजी ने स्वयं को पूर्णतः अपने आध्यात्मिक कर्तव्यों के प्रति समर्पित कर दिया है जिनमें हार्टफुलनेस इंस्टीट्यूट की गतिविधियों का मार्गदर्शन करने के साथ-साथ संसार के हर कोने में फैले हुए आध्यात्मिक जिज्ञासुओं की निरन्तर मदद भी शामिल है। सारे यथारीति सम्बोधनों से वह दूर रहते हैं लेकिन फिर भी लोग उन्हें दाजी कहते हैं। गुजराती भाषा के इस शब्द का अर्थ है—पिता का छोटा भाई।

‘द हार्टफुलनेस वे’ नाम की यह पुस्तक दाजी और मेरे बीच खुल कर हुए वार्तालापों की शृंखला है जिसमें हम हार्टफुलनेस के अध्यास और सिद्धान्तों की गहराइयों में गये हैं। इन वार्ताओं में मैंने दाजी से कई प्रश्न पूछे हैं। कुछ प्रश्न ऐसे हैं जो ध्यान आरम्भ करते समय मेरे भीतर थे। कुछ ऐसे हैं जो हार्टफुलनेस प्रशिक्षक होने की वजह से मुझसे पूछे जाते हैं। कुछ प्रश्न ऐसे भी हैं जो हमारी बातचीत के दौरान मेरे मन में स्वतः ही पैदा हुए।

‘द हार्टफुलनेस वे’ के तीन भाग हैं। पहला भाग आध्यात्मिक खोज की प्रकृति का निरीक्षण करता है और ध्यान तथा यौगिक प्राणाहृति के रहस्यों को खोलता है।

दूसरा भाग हार्टफुलनेस के मूलभूत अभ्यासों—ध्यान, सफाई और प्रार्थना से हमारा परिचय कराता है। यह आधारभूत जानकारी और व्यावहारिक निर्देशों का मिश्रण है। हर अध्याय का समापन इन सरल अभ्यासों को करने के क्रमबद्ध निर्देशों से हुआ है।

तीसरे भाग में हमारी आन्तरिक आध्यात्मिक यात्रा में सहायक गुरु की अदृश्य परन्तु महत्वपूर्ण भूमिका का जिक्र है।

‘द हार्टफुलनेस वे’ उस सरल अभ्यास को अनुभव करने का एक निमन्नण है जिसने मेरा और विश्व भर के उन लोगों का जीवन रूपान्तरित कर दिया है जो हार्टफुलनेस का अभ्यास कर रहे हैं। दरअसल कोई पुस्तक हमें रूपान्तरित नहीं कर सकती। यह हमें बुद्धिमानी की बातें तो बता सकती है किन्तु हमें बुद्धिमान नहीं बना सकती। कोई भी पुस्तक हमें ज्ञान तो दे सकती है पर उस ज्ञान के सत्य का अनुभव नहीं करा सकती। इस पुस्तक में जो प्रस्तुत किया जा रहा है वह है अनुभव पर आधारित एक ऐसा तरीका जिसने व्यक्तियों को उनके सत्य को खोजने में मदद की है।

आध्यात्मिकता की तलाश हम विभिन्न स्थानों पर करते तो रहते हैं परन्तु आध्यात्मिक स्रोत को कभी भी बाहर नहीं पाया जा सकता। यह एक ऐसी चीज़ है जो पकड़ में नहीं आती, बस महसूस की जा सकती है। जब हम इसका अभ्यास करते हैं तो हृदय के द्वारा ही हम इसे महसूस करते हैं क्योंकि महसूस करने वाला अंग हृदय ही है। हार्टफुलनेस अभ्यास करने का अर्थ है आकार से परे जाकर सार को खोजना, परम्पराओं में छिपे रहस्य को जानना, स्वयं को अपने हृदय के मूल तत्त्व में केन्द्रित कर लेना और फिर वहाँ सच्चा अर्थ और सन्तुष्टि पाना।

जिज्ञासुओं के लिए दाजी का बड़ा सरल और सीधा सन्देश है : अनुभव ज्ञान से ज्यादा बड़ा है। कोई भी अच्छा शिक्षक यह समझता है। यही कारण है कि ज्यादातर कक्षाओं में लेक्चर और प्रयोगशाला दोनों का प्रावधान होता है।

दाजी अक्सर कहते हैं कि लेक्चर में आप सिद्धान्त सीखते हैं और प्रयोगशाला में आप प्रयोग करके व्यावहारिक ज्ञान अनुभव करते हैं। अतः मैं आपको आमन्त्रित करता हूँ कि आप आयें और अपने हृदय को अपनी प्रयोगशाला बना कर उसमें हार्टफुलनेस के अभ्यास का परीक्षण करें।

किसी भी प्रयोग में एक प्रयोगकर्ता होता है, प्रयोग के लिए एक विषय होता है और इसका एक परिणाम होता है। आध्यात्मिक प्रयोग में ये तीनों भूमिकाएँ आप ही निभाते हैं। यहाँ आप ही प्रयोगकर्ता हैं, आप ही प्रयोग का विषय हैं और आप ही इसका परिणाम भी हैं। ऐसे प्रयोग में कभी अन्तिम निष्कर्ष नहीं निकलता बल्कि खोज की निरन्तर प्रक्रिया जारी रहती है। यही इस हार्टफुलनेस अभ्यास की अलौकिकता और आनन्द है।

जनवरी, 2018

जोशुआ पोलॉक

भाग एक

हार्टफूलनेस क्यों



1.

साधक की यात्रा



चेन्नई (भारत) में दाजी के फ्लैट में प्रवेश करने पर मैंने उन्हें झूले पर आराम करते हुए पाया। जब मैं उनकी ओर बढ़ा तो उनके चेहरे पर एक मुस्कुराहट फैल गयी।

“क्या हो रहा है भाई?” मुझसे हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाते हुए उन्होंने पूछा। मैं जाकर उनके सामने बैठ गया। इतने में पास के कमरे से उनके कोई रिश्तेदार आये और उन्होंने मुझे चाय दी। दाजी बीच में बोल पड़े, “इन्हें कॉफी दो। वो इन्हें ज्यादा अच्छी लगेगी।” यही सच भी था।

अक्सर दाजी में लोग जो पहली चीज़ देखते हैं, वह है उनकी स्थिरता। यह एक अद्भुत गुण है जो उनके सामीप्य में हर किसी को प्रभावित करता प्रतीत होता है। उनके शब्द नपे-तुले और सोचे-समझे होते हैं। आम तौर पर वह तभी बोलते हैं जब किसी बात के सार को कहना ज़रूरी हो। फिर यह सुनने वाले का काम है कि वह उसके बारे में आगे खोज करे और उस ख़्याल को विकसित करे। उनकी वार्ता के बीच में अक्सर ख़ामोशी के अन्तराल होते हैं। ऐसे पलों में कोई व्यक्ति बहुत-सी चीज़ें समझ सकता है। वो चीज़ें जो उनकी शिक्षाओं से भी ज्यादा महत्वपूर्ण होती हैं। ऐसे माहौल में प्रश्नकर्ता आत्म-सन्तुष्ट रहता है और अपने सारे प्रश्न भूल जाता है। दाजी के साक्षात्कारकर्ता के तौर पर मुझे इसी बात का डर था। पर इसकी बजाय मुझे हम दोनों के बीच एक नयी प्रेरणा उभरती दिखाई दी। हमारी वार्तालाप बे-रोकटोक होने लगी और हर प्रश्न का जवाब वह बड़े उत्साह व गहराई से देते रहे।

दाजी ने कहा, “तो आप यहाँ सवाल लेकर आये हैं।”

“जी हाँ,” मैंने कहा, “लेकिन शुरुआत तो मैं इसी से करूँगा कि ध्यान क्यों करें?”

“क्यों नहीं?” उन्होंने चुटकी ली। “कारण तो हर व्यक्ति के अलग-अलग होंगे। जीवन में हमारा ध्येय हमारी अपनी ज़रूरतों और रुचि के अनुरूप होता है। उदाहरण के लिए कोई व्यक्ति अपना वज़न कम करने के लिए जिम जाता है तो दूसरा व्यक्ति ‘सिक्स पैक एब्स’ चाहता है। लेकिन दोनों एक ही जिम में जाते हैं। विश्व भर में ध्यान करने वालों से बातचीत के दौरान मैंने एक ख़ास क्रम देखा है। शुरू में लोग एक व्यापक उद्देश्य लेकर ध्यान करने आते हैं। उदाहरण के लिए बहुत-से लोग तनावपूर्ण जीवन-शैली से त्रस्त हैं अतः वे रिलैक्स होने का कोई रास्ता चाहते हैं। कोई अपना ब्लड प्रेशर कम करना चाहता है। कोई व्यक्ति मानसिक स्पष्टता तलाशता है तो कोई भावनात्मक सन्तुलन चाहता है। लेकिन जब वे ध्यान शुरू करते हैं तो जल्द ही इन उद्देश्यों से कहीं अधिक लाभ हासिल करना शुरू कर देते हैं। प्रायः लोग अपने भीतर उत्पन्न एक गहरी आध्यात्मिक सन्तुष्टि से अत्यन्त आश्चर्यचकित होते हैं। यह हालत भीतरी खुशी और आनन्द को प्रतिबिम्बित करती है। यह ऐसा ही है जैसे कोई भूखा आदमी खाने को एक टुकड़ा माँगे मगर कोई उसे दावत देकर हैरान कर दे!”

“इससे भी बढ़कर यह कि ये नतीजे तुरन्त मिलते हैं और देखे भी जा सकते हैं। हम उन्हें एक ही ध्यान के बाद महसूस कर सकते हैं। क्या होगा जब आप दूसरी और तीसरी बार भी ध्यान करेंगे? और अगर कई बार ध्यान करें तो उसके संचित असर के बारे में भी ज़रा कल्पना कर लें!”

मैंने पूछा, “क्या ध्यान हमारे मूल उद्देश्य का भी ख़याल रखता है?”

“यह उनको निशाना बनाये बिना उनका ख़याल रखता है,” उन्होंने कहा, “ध्यान बस आपकी आन्तरिक हालत को, चाहे वो कैसी भी हो सामान्य करता है। एक तनावप्रस्त व्यक्ति ध्यान करके यह कह सकता है कि ‘ध्यान आपको रिलैक्स करता है’। एक परेशान आदमी ध्यान करके कह सकता है, ‘ध्यान आपको शान्ति प्रदान करता है’। क्रोध और कड़वाहट से भरा एक आदमी ध्यान करके कह सकता है, ‘ध्यान आपका दिल खोल देता है और आपको एक प्यारा इन्सान बना देता है’।”

“तरह-तरह की ये बातें हमें भ्रमित कर सकती हैं। और हम सोचने लगते हैं कि वास्तव में ध्यान करता क्या है?”

“तो यह क्या करता है?” मैंने पूछा।

“यह हमें प्राकृतिक बनाता है,” दाजी ने कहा, “जैसे-जैसे आप प्राकृतिक बनने की ओर बढ़ते हैं तो आपमें जो अप्राकृतिक है वह गायब

होने लगता है। अप्राकृतिक किस्में हज़ारों हो सकती हैं लेकिन प्राकृतिक तो केवल एक ही होती है। और उस एक को प्राप्त कर लेने पर हमारी हज़ारों शिकायतें दूर हो जाती हैं।”

“ध्यान क्यों करें, इसका उत्तर जटिल है। क्योंकि जैसे-जैसे हम प्रगति करते हैं, हमारा ध्येय बदलता जाता है। आज का कारण कल के कारण से भिन्न हो जाता है। और ऐसा ही होना भी चाहिए। जैसे-जैसे हम ध्यान करते हैं, हमारी समझ बढ़ती जाती है। हम यह बेहतर समझ पाते हैं कि हम क्या हैं और हमें क्या होना चाहिए। ध्यान वह साधन है जो हमें इस अनन्त यात्रा पर ले जाता है।”

मैंने पूछा, “अगर यात्रा अनन्त है तो क्या हम कभी पहुँच पायेंगे?”

“कहाँ?” उन्होंने हँसते हुए कहा, “जिस क्षण आप यह सोचते हैं कि हाँ, मैं पहुँच गया हूँ तो आपका बढ़ना रुक जाता है। आपका चलना बन्द हो जाता है। विकास कभी नहीं रुक सकता। परिवर्तन की चाह हमारे अन्दर हमेशा रहनी चाहिए। अगले चरण के लिए हमें तैयार रहना चाहिए, चाहे वह कुछ भी हो। और वहाँ पहुँचने के बाद हमें और भी आगे जाने के लिए तैयार और पर्याप्त रूप से लचीला रहना चाहिए।”

मैंने कहा, “किन्तु आध्यात्मिक साहित्य तो ऐसे व्यक्तित्वों के उदाहरणों से भरा पड़ा है जिन्हें पूर्ण समझा जाता था।”

“क्या आपको ऐसा लगता है कि उन्होंने स्वयं ही अपने बारे में ऐसा कहा होगा?” उन्होंने पूछा। “गणित में एक ‘एसिम्प्टोट’ होता है। यह एक रेखा है जिसके पास से एक वक्र गुजरता है और इस रेखा को अनन्त पर काटता है। वह वक्र उस रेखा के करीब आता जाता है लेकिन दोनों कभी मिलते नहीं हैं। वे केवल नज़दीक से नज़दीक होते जाते हैं। एक अत्यन्त उच्च जिज्ञासु भी उसी वक्र की तरह है। वह हमेशा मंज़िल के नज़दीक पहुँचती रहती है, कभी भी वहाँ पहुँचे बिना। किसी भी पल वह लक्ष्य से अत्यन्त नज़दीक भी है और अत्यन्त दूर भी। फिर भी वह चलती रहती है। जब तक जिज्ञासु का अस्तित्व है, यात्रा भी अनन्त है।”

“तो हम किस की ओर बढ़ रहे हैं,” मैंने पूछा।

“स्वार्थ से निःस्वार्थ की ओर,” उन्होंने कहा। “प्रतिक्रिया करने वाले मन से प्रत्युत्तर देने वाले दिल की ओर, अहंकार की कैद से अहंकार से मुक्ति की ओर, यहाँ और अभी से शाश्वत व समय रहित अस्तित्व की ओर, साकार पूजा से निराकार की ओर, संकुचन से विस्तार की ओर, बेचैनी से चैन की ओर, बनावट से असल की ओर, हठ से स्वीकार्यता की ओर, असन्तुलन से सन्तुलन की ओर, अँधेरे से उजाले की ओर, भारीपन से हल्केपन की ओर,

स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर, परिधि से अस्तित्व के उद्भव, स्रोत या उच्च स्व की ओर।”

“तो देखिए, ध्यान का उद्देश्य हमें बदलना है। धर्म का उद्देश्य भी हमें बदलना ही है। यही आत्म-सहायता और मानसिक चिकित्सा पद्धति का भी उद्देश्य होता है। फिर भी जब हम अपने आपको किसी तरह बदलने की कोशिश करते हैं तो हमें जड़त्व की बड़ी ताकतों का सामना करना पड़ता है जो हमें ध्येय प्राप्त करने से रोकती हैं।”

“बेशक सहायता भी काफ़ी उपलब्ध है। बड़ी-बड़ी शिक्षाओं की भी कमी नहीं है, विशेषकर इस आधुनिक युग में! एक माउस की क्लिक से हम लगभग किसी भी परम्परा की दौलत तक पहुँच सकते हैं। हम कितने ही विषयों पर नवीनतम वैज्ञानिक अनुसन्धान देख सकते हैं। यह सूचनाओं का युग है। फिर भी सूचनाएँ हमारी बस इतनी ही मदद कर सकती हैं।”

दाजी हँसे और बोले, “मुझे एक पुराना शेर याद आ रहा है,

**किताबों में दब के मर गये कीड़े किताब के,
पारी न किसी ने फ़ज़ीलत की सनद।**

जिसका अर्थ है :

‘कीड़ों ने हज़ारों किताबें खा लीं लेकिन उन्हें इस ज्ञान का कोई प्रमाण-पत्र नहीं मिला।’

ऐसा होता है किताबी कीड़ा। चाहे जितना ज्ञान वह हासिल कर ले लेकिन यह उसे ज्ञानी नहीं बना सकता। ज्ञान हमें बदल नहीं सकता। उदाहरण के लिए हम सब जानते हैं कि धैर्य एक गुण है पर क्या इस बात का ज्ञान हमें धैर्यवान बनाने के लिए पर्याप्त है? इसी तरह हम सब प्रेम की कीमत जानते हैं। दुनिया के सभी महान शिक्षकों ने इसके बारे में कहा है। लेकिन प्रेम के बारे में जानना तथा इसे महसूस और जाहिर करना बिलकुल अलग-अलग बातें हैं।”

“इससे हम क्या सीखते हैं? अगर अकेली शिक्षा ही काफ़ी होती तो अभी तक तो हम सब बदल चुके होते। आखिरकार बहुत-सी महान विभूतियाँ हमसे पहले आयीं और अपने पीछे महान शिक्षाएँ छोड़ गयीं, फिर भी दुनिया वैसी की वैसी ही है। इसलिए बड़ी-बड़ी शिक्षाएँ, बड़े-बड़े ज्ञान पर्याप्त नहीं हैं।”

“उदाहरण के लिए, हो सकता है कि आप ईश्वर की सर्वव्यापकता में विश्वास रखते हों लेकिन क्या उसकी सतत उपस्थिति भी आप अपने जीवन में महसूस करते हैं? अगर नहीं, तो यह विश्वास आपकी मदद कैसे करेगा?

यह आपको सुकून दे सकता है। किन्तु विश्वास के बल पर अर्जित सुकून इसके पीछे की हकीकत के अनुभव का स्थान नहीं ले सकता।”

तभी कोई कमरे में दाखिल हुआ और उसने हमें भोजन करने के लिए कहा।

“आइए खाना खायें,” दाजी बोले।

हम मेज पर बैठ गये, लेकिन देखा कि भोजन अभी तैयार नहीं था। जाहिर है, कोई ग़लतफ़हमी हुई होगी। दाजी हँसे और बोले, “देखिए, यही मैं कह रहा था कि केवल भोजन के बाद से आप किसी व्यक्ति की भूख नहीं मिटा सकते। और न ही मात्र विश्वास से एक तड़पते दिल की प्यास बुझाई जा सकती है।”

कुछ देर बाद भोजन परोसा गया। हमने खामोशी से खाया। फिर दाजी बोले।

“ध्यान से हम अपने भीतर प्रवेश करते हैं और किसी उच्चतर चीज़ से जुड़ जाते हैं। इसलिए हम चाहे कहीं पर भी हों, इसे पा सकते हैं। हमें तीर्थयात्रा करने की आवश्यकता नहीं है। हमें अपनी पोशाक, अपनी आदत या अपना नाम बदलने की ज़रूरत नहीं है। हमें अपनी आँखें बन्द करके खामोशी से ध्यान में बैठने के अतिरिक्त और कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है। इस प्रकार हम व्यावहारिक-आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त करते हैं।”

“अनुभव ही आध्यात्मिकता और धर्म में अन्तर बताता है। बिना अनुभव के तो विश्वास खोखला ही है। यह बहुत ही सूक्ष्म चीज़ है। सांसारिक जीवन में तो अधिकतर लोग यह समझते हैं। उदाहरण के लिए, विज्ञान के विषय के दो भाग होते हैं—लेक्चर और लैब। लेक्चर से आप सिद्धान्तों को समझ सकते हैं लेकिन उनको घटित होता आप प्रयोगशाला में ही देखते हैं। आप व्यावहारिक रूप से उनसे परिचित हो जाते हैं। कहीं और से ग्रहण किये गये आपके ज्ञान को साक्षात् अनुभव का समर्थन मिल जाता है।”

“आध्यात्मिक मामलों में फिर भी लोग लकीर के फ़कीर ही रहते हैं। हाथों-हाथ दिये गये ज्ञान से वे असहज महसूस करते हैं और कहीं और की शिक्षाओं पर भरोसा करते हैं। फिर भी एक समय तो आता है जब दिल व्यक्तिगत अनुभव की माँग करता है। ज्ञान उस माँग को पूरा नहीं कर सकता। विश्वास भी पूरा नहीं कर सकता। फिर वे आध्यात्मिकता की तलाश में लग जाते हैं। कृपया इसे धार्मिक विश्वास की आलोचना न समझें। धर्म एक बुनियाद है। लेकिन ज़रा बतायें तो कि बुनियाद कहते किसे हैं? जिसके ऊपर निर्माण करना होता है। कोई धार्मिक शिक्षा सच हो सकती है लेकिन आपके लिए इसका तब तक कोई मतलब नहीं जब तक कि आप

उस सच्चाई को स्वयं महसूस न कर लें। किसी शिक्षा का सच होना ही काफ़ी नहीं है। सच तो यह आपके लिए होनी चाहिए।”

“सत्य का अनुभव व्यावहारिक तौर पर होना चाहिए और ‘ध्यान’ उसका साधन है। जब हमारे पास व्यावहारिक अनुभव नहीं होते तो विभिन्न धर्म प्रायः अलग-अलग भाषाएँ बोलते प्रतीत होते हैं। फिर हमें केवल ईसाई, बौद्ध, हिन्दू, मुस्लिम और अन्य, यही दिखाई देते हैं। हो सकता है कि इनके बीच का अन्तर दूर करने के प्रयास में हम हर धर्म को जानने का प्रयत्न करें। और फिर यह भी हो सकता है कि उनका ज्ञान होने पर वे एक दूसरे से और भी ज्यादा अलग दिखाई देने लगें। हम देखते हैं कि किस प्रकार ईसाई ‘स्वर्ग का साम्राज्य’ तलाश करते हैं, बौद्ध ‘निर्वाण’ के लिए प्रयत्न करते हैं, हिन्दू ‘मोक्ष’ और ‘अहम् ब्रह्मास्मि’ के पीछे लगे रहते हैं और सूफ़ी ‘फ़ना-ए-फ़ना’ और ‘बङ्का-ए-बङ्का’ के लिए प्रयत्न करते हैं।”

“हमारे मन में आता है कि यह तो पक्का हो गया कि वे सब एक ही सत्य को नहीं मानते। कोई एक अगर सही होगा तो बाकी सब ग़लत होंगे।”

“अब हम बहस करने लगते हैं। हम झगड़ते हैं कि कौन-सा ईश्वर सच्चा ईश्वर है। हम झगड़ते हैं कि कौन-सा दर्शन सच्चा दर्शन है। हम संस्थापकों की वैधता पर भी बहस करने लगते हैं। और कुछ लोग तंग आकर नास्तिक बन जाते हैं। वे सोचते हैं कि ये सभी धर्म ग़लत होंगे!”

“परन्तु जब आप ध्यान करते हैं और इनमें से कुछ अवस्थाओं का सचमुच अनुभव करते हैं तब जाकर आपको यह अहसास होता है कि वे सब तो एक ही हैं। फिर आपके लिए कोई एक ख़ास नहीं हो सकता। आप यह दावा नहीं कर सकते कि केवल आपकी परम्परा ही ठीक है। उल्टे आप ही सभी की मान्यताओं को स्वीकार करने लगते हैं। फिर झगड़ा ही किस बात का?”

“इसलिए मैं हमेशा यहीं सलाह देता हूँ कि आपकी परम्परा कोई भी हो, उसी पर क़ायम रहें—लेकिन ध्यान भी करें। ध्यान आपको गहराई में जाकर उसके सार को खोजने में मदद करेगा। तब आपको मालूम पड़ेगा कि समस्त धर्मों का एक ही सार है। यह ऋग्वेद की एक मशहूर पंक्ति ‘एकम् सद्विप्रा बहुधा वदन्ति’ की भाँति है। ‘सत्य एक है; ज्ञानी लोग इसका वर्णन विभिन्न तरीकों से करते हैं।’”

फिर दाजी ने अपने एक ख़ास अन्दाज में यू-टर्न लिया।

“फिर भी, ध्यान के हमारे अनुभव चाहे कितने भी प्रभावशाली हों वे हमें बदल पाने में हमेशा कामयाब नहीं होते,” उन्होंने कहा, “हमारे अनुभव अत्यन्त गहन हो सकते हैं। अत्यन्त आनन्ददायक हो सकते हैं। लेकिन फिर

भी व्यक्तिगत अनुभव के द्वारा व्यक्तिगत परिवर्तन मुश्किल से ही हो पाता है। क्या आनन्द की दशा हमें स्वतः ही दयालु बना देती है? क्या आनन्द हमें प्रेममय बना देता है?” उन्होंने अपनी असहमति जतायी।

“तो फिर अनुभव की चर्चा ही क्यों?” मैंने पूछा।

“एक गधे को जब आप चलाना चाहते हैं तो उसे कुछ हरी धास दिखानी पड़ती है,” उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा।

“फिर तो यह एक प्रोत्साहन की बात है,” मैंने कहा।

“आगर ध्यान में हमें बेहतरीन अनुभव न हों तो मेरा ख़्याल है कि फिर शायद ही कोई ध्यान करे,” उन्होंने कहा, “ध्यान हमारा परिवर्तन करता है किन्तु ध्यान करते रहने के लिए हमारे पास कोई तो कारण होना चाहिए।”

मैंने कहा, “लेकिन मेरा मानना है कि हमारे अनुभव, ध्यान करते रहने के लिए हमारे प्रोत्साहन से भी ज्यादा काम के हैं। वे हमें कुछ सिखाते भी हैं।”

“हाँ, लेकिन इसका यह मतलब भी नहीं है कि हम उनसे सीखते हैं!” दाजी ने पलट कर जवाब दिया। “पर ध्यान से हम बदलते ज़रूर हैं। ध्यान का अभ्यास हमारे अस्तित्व के गहरे स्तर पर कार्य करता है। जबकि ज्ञान और अनुभव केवल सचेतन स्तर पर कार्य करते हैं। जो पर्याप्त नहीं हैं। हमारे विचारों, रवैयों, भावनाओं और आदतों की जड़ें अवचेतन के असीम विस्तार में फैलती हुई हैं। इससे भी ज्यादा यह कि हमारे सुषुप्त विचार हमारे उन विचारों से भी अधिक शक्तिशाली होते हैं जिनका उपयोग हम सचेतन स्तर पर करते हैं। यह इसका एक कारण है कि जब हम परिवर्तन का प्रयास सचेतन स्तर तक ही सीमित रखते हैं तो हम असफल हो जाते हैं। सोच-समझ कर की जाने वाली क्रियाओं को तो हम बदल सकते हैं लेकिन अवचेतन स्तर की क्रियाओं को कैसे बदला जाये? क्या हम उस चीज़ को बदल सकते हैं जिसके प्रति हम शायद ही जागरूक हों? यही हमारी सबसे बड़ी बाधा होती है जब हम अपने जीवन में एक अर्थपूर्ण परिवर्तन लाने की कोशिश करते हैं। एक सच्चा परिवर्तन लाने वाले कारक को केवल ऊपरी स्तर पर ही कार्य नहीं करना चाहिए बल्कि हमारे अस्तित्व के हर एक स्तर पर उसे कारगर होना चाहिए। उसे सम्पूर्ण होना चाहिए।”

“ध्यान का सही अभ्यास हमारे प्रयासों के इस अन्तर को भर देता है। यह गहनतम स्तर पर कार्य करता है और हमारे भीतर विकास की सुप्त शक्तियों को सक्रिय कर हमें विकास के मार्ग पर आगे धकेलता है। परिवर्तन की प्रक्रिया अब अपने आप होने लगती है।”

“अक्सर यह हमारे जाने बिना ही हो जाता है! हमें पता ही नहीं चलता कि हम इतने खुश क्यों हैं। हम जान ही नहीं पाते कि हम इतना हल्का क्यों

महसूस कर रहे हैं। हमारा परिवार, हमारे दोस्त और सहयोगी यह सब देखते हैं। वास्तव में अब उनकी ज़िन्दगी में हमारी उपस्थिति भी एक परिवर्तनकारी क्षण बन जाती है। अब हमारा साँस लेना प्रेम, हमारा चलना-फिरना प्रेम, हमारा बोलना प्रेम और हमारा जीवन प्रेम बन जाता है।”

“हम बात कर रहे थे कि किस तरह ज्ञान और अनुभव, दोनों हमें निराश करते हैं। लेकिन उसमें ध्यान का व्यावहारिक-तत्व जोड़ देने से वे अत्यन्त उपयोगी बन जाते हैं।”

“क्या इसीलिए कि ध्यान के द्वारा जो ज्ञान हमें मिलता है, वह तात्कालिक ज्ञान होता है?” मैंने पूछा।

“बिलकुल,” दाजी ने कहा, “लेकिन ध्यान पूर्व अर्जित ज्ञान को भी उपयोगी बना देता है। उदाहरण के तौर पर, आध्यात्मिक साहित्य को पढ़ते हुए हमें अब पता चलता है कि यह तो हमारे ही अनुभव से मेल खाता है। यह हमारे अनुभवों का भी स्पष्टीकरण कर देता है। और फिर यह हमें समझ के उच्चतर स्तरों पर खींच लाता है।”

“अभ्यास करते हुए हम अपने अनुभवों से भी सीखते हैं। इससे पहले हम अचेतन रूप से ही परिवर्तन का विरोध करते थे और हमारे अनुभव बेकार चले जाते थे। लेकिन वक्त के साथ, ध्यान का अभ्यास उस आन्तरिक प्रतिरोध को मिटा देता है। एक घोड़े की तरह जो चाबुक की परछाई से ही दौड़ने लगता है, हमारे लिए अब किसी अनुभव की झलक मात्र ही पर्याप्त होती है। आन्तरिक परिवर्तन को सुलगाने के लिए यह काफ़ी है। हम वाह्य अन्तरिक्ष में स्थित उस वस्तु की तरह हो जाते हैं जो सिर्फ़ एक थपकी से ही चलना जारी रखती है। वहाँ कोई प्रतिरोध नहीं होता। हमारे अनुभवों का भी अब वही असर होता है। वे सिर्फ़ आपको थपथपाते हैं और आप ऊँचे उठने लगते हैं।”

मैंने पूछा, “हमारे अनुभव वास्तव में हमें क्या बताने का प्रयत्न करते हैं?”

“अनुभव हमारी आन्तरिक प्रकृति को प्रतिबिम्बित करते हैं,” दाजी ने कहा, “मिसाल के तौर पर जब मैं क्रोधित होता हूँ तो मेरा अनुभव नकारात्मक होता है। वह क्रोध मुझे उस तरह के अनुभवों से वंचित रखता है जिन्हें मैं चाहता हूँ। जब मुझे ईर्ष्या होती है तो मुझे एक और नकारात्मक अनुभव होता है। लेकिन जब मैं प्रेममय और उदार होता हूँ तो यह अनुभव बड़ा सुन्दर होता है। कितना सुन्दर होता है, यह मेरे प्रेम और मेरी उदारता की सीमा पर निर्भर करता है।”

मैंने पूछा, “तो क्या वे आपको यह बताते हैं कि किस दिशा में चलना है?”

“हाँ,” दाजी ने कहा, “वे सूचक हैं। जब मैं ऐसा होऊँगा तो मेरा अनुभव वैसा होगा और जब मैं वैसा होऊँगा तो मेरा अनुभव ऐसा होगा। साथ ही ध्यान के कुछ अभ्यासों से उत्पन्न समझ के कारण मेरा बदलना भी सम्भव हो जाता है।”

मैंने कहा, “इसका मतलब यह हुआ कि अनुभव की जो भूमिका हमारे लिए ध्यान शुरू करने से पहले थी उसमें अभी भी कुछ ज्यादा बदलाव नहीं आया है। यह अब भी गधे को हरी धास दिखा कर प्रोत्साहित करने जैसा है।”

“हाँ,” दाजी ने कहा, “लेकिन अब अनुभव कारगर हो जाता है क्योंकि अब आपने गधे के अड़ियल स्वभाव को हटा दिया है।”

“मतलब हमारा आन्तरिक प्रतिरोध,” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी ने कहा, “और एक वक्त आता है, जब कोई गधा नहीं रह जाता। मुझे अहसास हो जाता है कि वह कारण एक ही है जो मेरे सभी अनुभवों पर असर डालता है और वह है अपने अहं से निपटने का मेरा तरीका। मेरा अहंकार जितना अधिक होगा उतना ही बदतर मेरा अनुभव भी होगा। जितना अधिक मैं विनम्र और शालीन रहूँगा, उतना ही बेहतर मेरा अनुभव भी होगा। यह एक सरल सूत्र है। और फिर एक दिन मेरे दिमाग़ में एक बल्ब जल उठता है : “क्यों न मैं जीरो ही हो जाऊँ या क्यों न मैं ‘कुछ नहीं’ हो जाऊँ?”

“और ध्यान इसको भी आसान बना देता है,” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी ने कहा, “केवल एक ही प्रकार के परिवर्तन से अब मेरा सरोकार रह जाता है कि मुझमें ‘मैं’ ज्यादा हुआ है या कम। इसका उल्टा हम यह भी पूछ सकते हैं कि ईश्वरीय उपस्थिति ज्यादा हुई है या कम। जितना अधिक ‘मैं’ वहाँ होता हूँ उतना ही कम ‘वह’ वहाँ होता है और जितना कम ‘मैं’ वहाँ होता है उतनी ही अधिक ‘उस’ की उपस्थिति प्रकट होती है। अब यह होने और न होने का सवाल बन जाता है।”

“ओह, तो गधे के गायब हो जाने से आपका यह मतलब था!” मैंने कहा।

दाजी ने सहमति प्रकट की।

“जब मैं परम् स्रोत में विलीन हो जाता हूँ तो यह परमानन्द है,” वह बोलते रहे, “बल्कि मैं ही आनन्द बन जाता हूँ। और जब मैं ही आनन्द बन गया तो फिर इसका अनुभव कैसे करूँगा? यह बारिश की उस बूँद के समान है जो सागर में गिर जाती है। अब वह बूँद नहीं रही। वह सागर बन गयी है।”

“यही वजह है कि रहस्यवादी परम्पराएँ अन्त में खामोश हो जाती हैं। वे अन्तिम अवस्था को अभिव्यक्त नहीं कर पातीं जो इतनी उन्नत, पूर्ण और सन्तुलित होती है।”

“और क्या ऐसा व्यक्ति जिसने यह अवस्था प्राप्त कर ली है, कभी स्वार्थी हो सकता है? क्या वह हिंसक हो सकता है? दुनिया के सामने बहुत-सी चुनौतियाँ हैं। कोई राजनीतिक हैं तो कोई सामाजिक। कोई आर्थिक है तो कोई वातावरण से सम्बन्धित। सभी मामलों में मानवता ही कष्ट भोगती है। लेकिन दुनिया की समस्याएँ बहुत सरल हैं। ये हैं लोगों के बीच प्रेम की कमी, करुणा, सहनशीलता, विनम्रता और स्वीकार्यता की कमी। ये घमण्ड, नफरत और हिंसा हैं जिन्होंने इन्सान के दिलों को प्रदूषित कर दिया है। ऐसे ही पक्षपात और असहिष्णुता भी हैं। आगर लोगों के दिलों में शान्ति नहीं है तो उनके चारों तरफ भी शान्ति नहीं होगी। ऐसे लोग हमेशा लड़ने और बहस करने की वजह ढूँढ़ लेते हैं। किसी व्यक्ति का खुद का हृदय जब शान्त होगा तभी उसका व्यवहार भी शान्तिमय होगा।”

“नफरत की समस्या को कैसे सुलझाया जाये? क्या इसका कोई राजनीतिक हल है? क्या प्रेम और स्वीकार्यता पर कानून बनाकर उसे जबरदस्ती लागू किया जा सकता है? क्या कोई कानून इन्सान के दिल को बदल सकता है? दिल केवल तभी बदलता है जब वह बदलना चाहता है। और यह एक व्यक्तिगत चयन है जो हर व्यक्ति को स्वयं करना चाहिए। इसे हम उनके ऊपर लाद नहीं सकते। हम उन्हें केवल प्रेरित कर सकते हैं और ज़रूरी नुस्खे दे सकते हैं।”

“इसलिए दूसरों को बदलने की कोशिश की बजाय हमें अपने परिवर्तन में लग जाना चाहिए। जहाँ तक दूसरों का सवाल है उनसे हमारी कोई अपेक्षा नहीं होनी चाहिए। वे जैसे भी हों उनसे प्रेम करके, उन्हें स्वीकार करके और उनकी सेवा के लिए तत्पर रहके ही हमें सन्तोष कर लेना चाहिए। जैसा कि हम अपने परिवार के सदस्यों के साथ करते हैं। यही मानवता है, जिसकी दुनिया को बेहद ज़रूरत है।”

“केवल प्रेम ही दूसरों की कमियों को स्वीकार करना सम्भव बना सकता है। क्या आपने किसी माँ को अपने बच्चों के लिए कभी हार मानते हुए देखा है? चाहे उसका बच्चा दुर्व्यवहार करता हो या स्कूल से निकाला गया हो या इससे भी कुछ बुरा करता हो, माँ हमेशा उसी का पक्ष लेती है। दूसरे लोग भले ही उससे तंग आ चुके हों। ऐसा माँ के प्रेम के कारण होता है। जहाँ प्रेम होता है, वहाँ स्वीकार्यता होती है। जहाँ प्रेम होता है, वहाँ करुणा होती है। प्रेम हर श्रेष्ठ गुण की जड़ है। इसलिए जहाँ प्रेम होगा तो क्या वहाँ आपको किसी और गुण की आवश्यकता

पढ़ेगी? जब प्रेम होता है तो स्वीकार्यता, क्षमा और करुणा किसी की ज़रूरत नहीं रह जाती। अकेला प्रेम ही काफ़ी है। किसी अन्य गुण की ज़रूरत नहीं रह जाती। हम सब यह जानते हैं। भूतकाल के और वर्तमान के सभी महान शिक्षकों ने ऐसा ही कहा है। लेकिन यदि शिक्षाएँ ही पर्याप्त होतीं तो क्या हम अभी तक बदल नहीं गये होते?”

2.

ध्यान के रहस्यों का प्रकटन

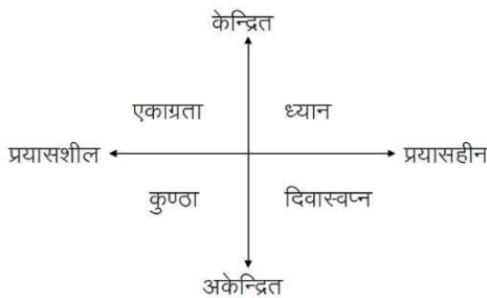


ध्यान का अभ्यास बहुत-सी चिन्तनशील परम्पराओं के एक अभिन्न अंग को पैदा करता है। इसे दिव्यता का सामीप्य हासिल करने के लिए सबसे प्रभावी तरीका माना जाता है, जो कि कर्मकाण्ड और विश्वास से परे है। कर्मकाण्ड वे क्रियाएँ हैं जिन्हें हम भौतिक स्तर पर करते हैं और वे भौतिक स्तर तक ही सीमित रहती हैं। विश्वास मानसिक स्तर पर रहता है। इन दोनों से परे जाने के लिए और आध्यात्मिक स्थिति में आने के लिए हमें किसी ऐसी चीज़ की मदद लेनी चाहिए जिसका सम्बन्ध अस्तित्व के उच्चतर आध्यात्मिक स्तरों से हो। हार्टफुलनेस ध्यान में हम इसी दृष्टिकोण से काम करते हैं। इसे बेहतर ढंग से समझने के लिए मैंने इसके आरम्भ से ही पहल करने का फैसला किया।

“ध्यान क्या है?” मैंने दाजी से पूछा।

उन्होंने पेन उठाया और एक डायग्राम बना दिया।

“ऊर्ध्वाधर अक्ष स्थिर मन और अस्थिर मन के बीच का क्रम प्रदर्शित करता है,” उन्होंने कहा। “स्थिर मन एक विचार पर टिकता है और वहाँ रहता है। यह एक बिन्दु पर केन्द्रित होता है। इसके विपरीत अस्थिर चंचल मन एक विषय से दूसरे विषय पर भटकता रहता है। यह कई विषय सोचता है तथा इसका ध्यान यहाँ से वहाँ कूदता रहता है। इन दो चरम सीमाओं के बीच, एक मध्य का क्षेत्र है। मन की अधिकांश गतिविधि इसी मध्य क्षेत्र में होती है।”



“यहाँ एक ध्रुवता और है : प्रयासशीलता और प्रयासहीनता। यह क्षैतिज अक्ष पर है। प्रयासहीन मन आराम और चैन में होता है। दूसरी तरफ प्रयासशील मन है जो कभी आराम से नहीं रह सकता। यह सोचने, समझने और एकाग्र होने के लिए संघर्षरत रहता है।”

“इन दो क्रमों के विभिन्न युग्मों का परिणाम मन की विभिन्न स्थितियों के रूप में फलित होता है। यहाँ हमारे पास दिवास्वप्न, कुण्ठा, एकाग्रता और ध्यान है। चलिए, हम ध्यानयुक्त मन को समझते हैं। जैसा कि आप देख सकते हैं कि यह केन्द्रित होने और प्रयासहीनता का मिश्रण है। इसे एक विचार में केन्द्रित होना है, परन्तु बिना किसी प्रयास के।”

“क्या यह कोई भी विचार हो सकता है?” मैंने पूछा।

“हाँ,” दाजी ने कहा।

“यदि ऐसा है तो ध्यान तो हर कोई पहले से ही करता है,” मैंने कहा।

“यही तो मैं कह रहा हूँ,” दाजी ने चुटकी ली। “एक नयी बात सीखने का कोई सवाल ही नहीं है। ध्यान करना हम सब जानते हैं। हम इसे रोज करते हैं।”

“उदाहरण के लिए एक व्यापारी अपने व्यापार पर ध्यान करता है। जब वह कार चलाता है तो भी उस पर ध्यान करता है। जब वह रात को सोने जाता है, तो भी वह उसी पर ध्यान करता है। शायद वह किसी से प्यार करती है। वह अपनी दिनभर की दिनचर्या में उस व्यक्ति पर ही ध्यान करती है। जब वह अपने दाँतों को ब्रश करती है, वह उसी व्यक्ति पर ध्यान करती है। वह किराने की दुकान पर जाती है परन्तु पूरे समय उसी का ध्यान करती है। इसी बीच वह दुकान में एक संगीतकार के पास से गुजरती है। उसका मन संगीत के बारे में सोचने में ही व्यस्त है। वह संगीतकार भी ध्यान ही कर रहा है। यहाँ तक कि एक पारिभाषिक शब्द भी है—सुनियोजित हत्या। यहाँ हत्या करने वाला भी पहले से ही ध्यान कर रहा होता है कि अपनी करतूतों को कैसे अंजाम दिया जाये।”

“यदि सब लोग पहले से ही ध्यान करते हैं तो ध्यान के बारे इतना ख़ास क्या है?,” मैंने पूछा।

“इसे इतना ख़ास वह विचार बनाता है जिसको हम ध्यान के द्वारा खोजते हैं,” दाजी ने कहा। “हमारे ध्यान का उद्देश्य ही वह विचार है।”

“ध्यान के हमारे उद्देश्य से ही सारा अन्तर पड़ता है। एक गहन उद्देश्य ही हमें गहन चेतना प्रदान करता है। एक सांसारिक वस्तु हमें सांसारिक चेतना प्रदान करती है। एक अस्थाई लक्ष्य हमारे मन को अस्थाई ध्यानावस्था प्रदान करता है। एक गहन और अपरिवर्तनशील वस्तु हमारे ध्यान को स्थाई बना देती है। विभिन्न वस्तुएँ विभिन्न प्रकार के प्रभाव पैदा करती हैं।”

“हम ध्यान की ऐसी स्थिति कैसे प्राप्त कर सकते हैं जो स्थाई और गहरी दोनों हो?” मैंने पूछा।

“एक गहन लक्ष्य पर प्रयासहीन ध्यान करके,” दाजी ने कहा। “उसके लिए हमें अभ्यास करना चाहिए। जैसे माँ के बिना कोई बच्चा नहीं हो सकता, वैसे ही ध्यान के अभ्यास के बिना भी ध्यान की कोई स्थिति प्राप्त नहीं की जा सकती।”

“मैंने देखा है कि नये जिज्ञासु अक्सर ध्यान करने की कोशिश से घबराते हैं,” मैंने कहा। “वे सोचते हैं कि उन्हें अपने विचारों से निबटने में परेशानी होगी।”

“कई लोग कहते हैं कि मन का स्वभाव ही बेचैनी है,” दाजी ने कहा। “वे कहते हैं कि इसकी प्राकृतिक स्थिति बेचैनी की ही है। मैं इसे नहीं मानता। असल में, मैं इस धारणा को दूर करना चाहूँगा।”

“कठिनाई का यह विचार इतना गहरा क्यों है?” मैंने उनसे पूछा।

“बहुत से प्रतिष्ठित शिक्षकों ने इस दृष्टिकोण को स्वीकारा है,” दाजी ने कहा। “मेरे विचार में वे इस प्रकार की धारणा से हानि पहुँचाते हैं। अगर आप यह मानते हैं कि मन की स्वाभाविक वृत्ति अस्थिर रहना है तो यह आपका दुश्मन बन जाता है। और दुश्मनों के साथ आप क्या करते हैं?”

“आप उनसे लड़ते हैं,” मैंने जवाब दिया।

“और इस तरह ध्यान करना एक युद्ध की तरह हो जाता है,” उन्होंने कहा। “यह मन को दबाने की प्रक्रिया बन जाती है। परन्तु क्या कभी आपके विचारों ने और आपकी भावनाओं ने आपको अच्छी फ़िल्म का आनन्द लेने से रोका है?”

“नहीं,” मैंने कहा।

“क्या उन्होंने कभी स्वादिष्ट भोजन का आनन्द लेने से रोका है?”

मैंने फिर कहा, ‘नहीं’।

“क्यों नहीं?,” उन्होंने जोर देकर कहा।

“एक फ़िल्म आपका ध्यान आकर्षित करती है,” मैंने कहा। “एक अच्छा भोजन आपका ध्यान खींचता है। फिर आप अन्य चीज़ों पर ध्यान नहीं देते।”

“बिल्कुल,” दाजी ने कहा। “जब कोई चीज़ आपका ध्यान आकर्षित करती है और उसे वहीं टिकाए रखती है, तो आप अवांछित विचारों से दूर हो जाते हैं। अपने मन को केवल उसी में लगाये रखने के लिए आपको सही मायनों में किसी डुबा देने वाली चीज़ की आवश्यकता होती है। तब आप अनुभव करेंगे कि कैसे फिर यह मन स्वाभाविक रूप से स्थिर हो जाता है, बिना प्रयत्न के ही केन्द्रित हो जाता है।”

“हालाँकि इस पर हमारा अधिक नियन्त्रण प्रतीत नहीं होता। कुछ वस्तुएँ मन को आकर्षित करती हैं और कुछ बिल्कुल भी नहीं करतीं। उदाहरण के लिए अगर आपका बच्चा पूरे दिन अपनी पढ़ाई में पूरी तरह डुबा हुआ था तो आपको खुशी महसूस हो सकती है कि वह एक सकारात्मक गतिविधि में व्यस्त है। परन्तु अगर आप को पता लगता है कि वह लगातार नौ घण्टे से वीडियो गेम खेल रहा है तो आपको चिन्ता होने लगती है। दोनों ही मामलों में, आपका बच्चा ध्यान केन्द्रित करने की अपनी विशाल क्षमता को दर्शाता है। परन्तु आपकी चिन्ता उस वस्तु के कारण है जिस पर वह केन्द्रित है। आपकी चिन्ता इस बात में है कि उसके शौक क्या हैं।”

“आप ही देखिए, हम ध्यान केन्द्रित न कर पाने से परेशान नहीं हैं। अपनी रुचि की चीज़ों पर तो हम बिना किसी प्रयास के आसानी से ध्यान केन्द्रित कर लेते हैं। परन्तु क्या हम अपनी रुचियों को चुन सकते हैं? हो सकता है कि कुछ वस्तुएँ दूसरों की अपेक्षा हमें ज्यादा अच्छी लगती हों। इसका कारण वे संस्कार हैं जो हमारी चेतना में रहते हैं परन्तु उस विषय पर हम फिर कभी चर्चा करेंगे। खैर, जब कोई चीज़ आपको भा जाती है, तो आप लगभग मुअध हो जाते हैं। आप उसी पर केन्द्रित हो जाते हैं। जब कोई वस्तु आपको नहीं भाती तभी आपको ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास करना पड़ता है।”

“उदाहरण के लिए जब आप किसी ऐसे विषय पर पुस्तक पढ़ते हैं, जो आपके मन को नहीं भाती, तब क्या होता है? आपका ध्यान हर दूसरी लाइन पर भटक जाता है, ठीक है न? फिर आपको यह अहसास होता है कि आपको तो पता ही नहीं कि आपने अभी-अभी क्या पढ़ा है। आप तब तक विषय में बार-बार वापस जाकर देखते हैं जब तक आप को विषय परिचित-सा नहीं लगने लगता। पुस्तक समाप्त करने के लिए आपको वास्तव में ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है।”

“जहाँ बल काम नहीं आता वहाँ हमारी रुचि काम कर देती है,” मैंने कहा।

“सही कहा,” दाजी बोले। “आगर आप किसी परियोजना में रुचि रखते हैं तो आप अवश्य ही सफल होंगे। यदि आप कोई दिलचस्पी नहीं रखते तो आप संघर्ष करते रहेंगे। दिलचस्पी के बिना कोई भी कार्य जी का जंजाल बन जाता है। जब तक मन को कोई विचार आकर्षक नहीं लगता तब तक वह उस पर टिका नहीं रह सकता। उसके बजाए वह किसी और चीज़ पर ध्यान केन्द्रित कर लेगा।”

“एकाग्र होना और केन्द्रित होना एक ही चीज़ नहीं हैं। क्या वे एक हैं?” मैंने टिप्पणी की।

“सही तरह से केन्द्रित तो बिना प्रयास के ही हुआ जाता है,” उन्होंने जवाब दिया। “यह स्वाभाविक रूप से ही हो जाता है। प्रयास तो हमें तब करना पड़ता है जब यह स्वतः नहीं होता। इसे एकाग्रता कहते हैं—केन्द्रित होने का प्रयास।”

“हम ध्यान की परिभाषा एक ही चीज़ के बारे में लगातार सोचने के रूप में देते हैं। इसलिए कई लोग इसे ग़ालती से एकाग्रता मान लेते हैं। लेकिन ध्यान एकाग्रता नहीं है। एकाग्रता बलपूर्वक की गयी चीज़ है जबकि ध्यान तो सहज, प्रयासहीन होता है, बिना किसी बल के।”

“एकाग्रता में आपको अपना मन व्यवस्थित करना पड़ता है। आप एक ही विचार पर मन को केन्द्रित करके बाकी सभी विचारों का बहिष्कार करते हैं जिनके बारे में आप अन्यथा सोचना भी पसन्द नहीं करते। आप जितना गहराई से केन्द्रित होते हैं, आपकी जागरूकता उतनी ही अधिक चीजों का बहिष्कार करती है। उच्चतम अवस्था पर आपकी सम्पूर्ण जागरूकता अन्य सभी चीजों को छोड़कर केवल एक ही बिन्दु पर केन्द्रित हो जाती है।”

“इसके लिए प्रयास करने की आवश्यकता होती है। विचारों के प्रवाह को रोक पाना आसान नहीं है। मन का एक प्राकृतिक संवेग होता है। यह एक निश्चित दिशा में जाना चाहता है लेकिन आप इसे जबरदस्ती किसी और तरफ ले जाना चाहते हैं। यह तो वेगपूर्वक बहती हुई किसी नदी की दिशा बदलने के प्रयास जैसा हो गया। अगर आप अपने मन को बलपूर्वक दबाने की कोशिश भी करते हैं तो इसे आपको वहीं पर दबाये रखना होगा। ज्योंही आपके प्रयास ढ़ीले पड़ेंगे, एक दबी हुई स्प्रिंग की भाँति उछल कर यह वापस आ जायेगा। आखिर कितनी देर तक आप जोर लगा कर रख सकते हैं?”

मैंने कहा, “हालांकि कुछ लोग ध्यान और एकाग्रता को समान मानते हैं परन्तु वे यह भी कहते हैं कि ध्यान आरामदायक होना चाहिए। वे कहते हैं कि इससे हमें शान्ति प्राप्त होनी चाहिए।”

दाजी ने पूछा, “जब हम एकाग्रता के लिए इतना जोर लगा रहे हों तो क्या ध्यान कभी आरामदायक या शान्तिदायक हो सकता है? इसलिए एकाग्रता के बारे में भूल जायें। सांसारिक मामलों में यह ज़रूरी हो सकता है लेकिन आध्यात्मिक क्षेत्र में यह पूरी तरह से विफल है।”

“लेकिन हम तो ध्यान को केन्द्रित रहने की दशा के रूप में परिभाषित करते हैं,” मैंने उन्हें याद दिलाया।

“प्रयास के बिना केन्द्रित” दाजी ने सही किया। “ऐसी स्थिति में, आपका मन स्वाभाविक रूप से एक विचार पर ठहर जाता है। जब कोई वस्तु आपका ध्यान आकर्षित करने और कायम रखने में सक्षम हो जाती है तो यह अपने आप होता है। जब आपका ध्यान इस तरह से लगता है तो आप डूबने की स्थिति में होते हैं। यह मन की ध्यानावस्था का दूसरा नाम है।”

“हालांकि ‘आकर्षण’ शब्द द्विअर्थी है! यह इच्छा का ही एक और नाम है।”

“वास्तव में इच्छा होती क्या है?” मैंने पूछा।

“इच्छा सम्पूर्णता के लिए आत्मा की दिशाहीन ललक है,” दाजी ने कहा। “आत्मा अपने मूलस्रोत से जुड़ने के लिए तड़पती है। वही असल इच्छा है—बड़ी इच्छा! जब तक हम यह नहीं जानते कि खोजना कहाँ है, तब तक हम तृप्ति के लिए बाहर ही देखते हैं।”

“मैं आप को एक कहानी सुनाता हूँ। एक दिन एक चींटी एक पत्ते पर रेंग रही थी। एक चिड़िया उसकी बगल में आकर बैठ गयी। ‘जब तुम आसमान में इतनी ऊँची उड़ती हो तो क्या-क्या अद्भुत दृश्य देखती हो’, चींटी ने आह भर कर कहा। ‘मैं तो केवल टहनियाँ, पत्ते और कंकड़ ही हमेशा देख पाती हूँ। कृपया मुझे बताओ कि वहाँ ऊपर से तुम्हें क्या दिखाई देता है?’

‘ठीक है’, चिड़िया ने कहा, ‘मैं एक ही नज़र में पूरे जंगल को देख सकती हूँ और कुछ दूरी पर मैं सागर भी देख सकती हूँ।’

‘सागर क्या होता है?’ चींटी ने पूछा।

‘सागर में इतना पानी होता है कि उसका कोई अन्त ही नहीं होता’, चिड़िया ने कहा।

चींटी ने तो केवल बारिश की बूँदों और ओस की बूँदों को ही देखा था। ‘मैं इस सागर को देखूँगी!’ चींटी ने सोचा। ‘सागर किस दिशा में है?’ उसने चिड़िया से पूछा।

चिड़िया ने अपने पंख से इशारा करते हुए कहा, ‘इस ओर है’।

‘धन्यवाद’, चींटी ने कहा और चल दी। वह घण्टों तक चलती रही। अन्ततः उसे कीचड़ का एक गह्रा मिला। चींटी यह देखने लगी कि क्या इसका दूसरा छोर दिखाई देता है? लेकिन जितनी भी दूर वह देख सकती थी वहाँ पानी ही पानी था।

‘आखिर मैं सागर तक पहुँच ही गयी!’ चींटी बोली।

“यही वह स्थिति है जिसमें हम अपने को पाते हैं,” दाजी हँसे। “ग़लती से हम क्षणिक को शाश्वत, सीमित को असीमित और कीचड़ के गड्ढे को अनन्त सागर समझ बैठते हैं। हम विभिन्न चीज़ों में अपनी तृप्ति ढूँढ़ते हैं। हालाँकि जो सन्तोष हम इनसे पाते हैं वह सीमित और क्षणिक होता है। सचमुच भीतर से यह हमें और भी खालीपन महसूस कराता है। यह इसलिए है क्योंकि सन्तुष्टि के असली स्रोत से हमारा सम्पर्क नहीं होता। ऐसे सम्पर्क के बिना, उस गहरी ज़रूरत की तृप्ति अन्य तरीकों से करने के अलावा और कोई चारा भी नहीं रह जाता।”

“उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि एक लम्बी कार यात्रा में आपकी बेटी रो रही है। आप एक आइसक्रीम पार्लर के पास से गुजरते हैं और सोचते हैं कि इससे उसका रोना बन्द हो जायेगा। आप रुक कर उसे आइसक्रीम देते हैं और वह खुश हो जाती है। उसका मन शान्त हो जाता है। सचमुच वह ध्यान की अवस्था में है। आइसक्रीम उसकी परेशानी हल कर देती है लेकिन यह हल थोड़ी ही देर का है। अगली बार आपको उसका मन लगाने के लिए दूसरा तरीका ढूँढ़ना पड़ेगा। दूसरा, आपने उसके मन को ढाल दिया है। आपने आइसक्रीम देकर उसकी बेचैनी का हल ढूँढ़ लिया है। अब जब भी वह परेशान होगी तो इस बात की काफी सम्भावना है कि वह आइसक्रीम माँगेगी। आपकी अगली यात्रा में वह ज़रूर यह माँगेगी भले ही थोड़ी देर की ही बात हो।”

“तो मुझे लगता है कि और आइसक्रीम नहीं,” मैंने कहा।

“नहीं, नहीं। वह मुझे कभी माफ़ नहीं करेगी!,” दाजी बोले।

लेकिन मैं तो अपने बारे में कह रहा था।

“ध्यान की वस्तु सीमित हो तो तृप्ति भी सीमित होती है,” वह बोलते गये। “उसके बाद आप फिर से बेचैन हो जाते हैं। यदि आप सचमुच अपने ढूबने की अवस्था का आनन्द लेते हैं तो आप इसे दोहराना भी चाहते हैं।”

“ऐसा करने से आप तृप्ति और अभाव का एक चक्र बना लेते हैं। अगर आपको आइसक्रीम पसन्द है तो आपका मन इसकी ओर आकर्षित होगा। अगर आप व्हिस्की पसन्द करते हैं तो आपका मन फिर उधर ही जायेगा।

आपका मन उसी की तरफ़ जाता है जो उसे आकर्षित करता है। तब हम इच्छा और पूर्ति के चक्र में फँस जाते हैं। जब तक हम उस इच्छा की पूर्ति नहीं करते, हमारा मन अस्थिर और बेचैन रहता है। उसकी पूर्ति के बाद हम फिर से अस्थिर और बेचैन हो जाते हैं। हम अभाव और क्षणिक खुशी के बीच झूलते हुए पेण्डुलम की भाँति हो जाते हैं। हमारी इच्छाएँ जितनी अधिक होंगी, उतना ही मुश्किल हमारे लिए उन्हें पूरा कर पाना होगा। अगर किसी एक क्षेत्र में हम तृप्त महसूस करते हैं तो किसी अन्य प्रकार से हम असन्तुष्ट रहते हैं।”

“इससे भी आगे, जब कभी हमें वह वस्तु नहीं मिलती जिसके हम आदी हो चुके हैं तो हम पहले से भी अधिक दुःखी और असन्तुष्ट हो जाते हैं। हमारी मानसिक स्थिरता हमारी इन इच्छाओं की पूर्ति पर निर्भर करने लगती है, अतः हम हठी हो जाते हैं। “मेरे पास यह नयी कार होनी चाहिए,” आप कहते हैं और यह सच है। अपनी मानसिक स्थिरता के लिए आपको इसे लेना ही पड़ेगा। आपने स्वयं को ही ऐसा प्रशिक्षित कर लिया है कि आप इसके बिना बेचैन हो जाते हैं, दुःखी हो जाते हैं। यही पहली समस्या है। दूसरी समस्या यह है कि किसी विशेष इच्छा की बार-बार पूर्ति करने से आप पूर्ति की उस हृद तक सहनशीलता विकसित कर लेते हैं।”

“एक दिन मुझे पता चला कि जिस फार्मेसिस्ट को मैंने नियुक्त किया है उसे एक मादक दवा लेने की लत है। वह उस मादक दवा की इतनी खुराकें लेता था कि कोई सामान्य व्यक्ति तो उससे मर ही जाता परन्तु वह तो अब भी अपने पैरों पर खड़ा था और काम कर रहा था। उस दवा के असर के प्रति उसकी सहनशीलता बढ़ गयी थी। किसी इच्छा की बार-बार पूर्ति करने पर, हमारी निर्भरता बढ़ जाती है और हमारी सहनशीलता भी। इसकी पूर्ति से हमारी निर्भरता तो अधिक से अधिक होती जाती है जबकि सन्तुष्टि कम से कम। परिणामस्वरूप हम और भी अधिक बेचैन और असन्तुष्ट हो जाते हैं।”

“असल में वह चीज़ जिसके लिए मन वास्तव में तड़पता है, स्थायित्व है। यह सीमित में खुश नहीं रहता। यह आनन्द की अस्थाई दशाओं से भी सन्तुष्ट नहीं होता। यह अनन्त ढूँढ़ता है यानि एक ऐसी तृप्ति जो सभी तृप्तियों का अन्त कर दे। यह ऐसी इच्छा को तृप्त करने की खोज में लगा रहता है जिसके तृप्त होने पर बाकी सभी इच्छाओं का अन्त हो जाता है। संक्षेप में मन केवल ध्यान ही करना नहीं चाहता अपितु ध्यान में अन्तहीनता भी चाहता है। यही सच्चा ध्यान है, गहन ध्यान है।”

“तो इच्छा का होना कुछ ग़लत नहीं है,” दाजी ने आगे कहा, “लेकिन अपनी असल इच्छा की पूर्ति करें। बड़ी इच्छा पूरी करें। जैसे एक बड़ी मछली छोटी मछलियों को निगल जाती है उसी तरह सबसे बड़ी इच्छा छोटी

इच्छाओं को अपने में समा लेती है। उसी पूर्ण तृप्ति में हम पूर्ण शान्ति प्राप्त करते हैं।”

मैंने कहा, “आप इच्छा और आकर्षण की बात कर रहे हैं लेकिन बहुत से विचार तथा भावनाएँ जिनकी ओर हमारा मन आकर्षित होता है सुखद नहीं होते।”

“यह सच है,” दाजी ने कहा। “आकर्षण का मतलब यह नहीं है कि हम उसे पसन्द करते हैं। हरगिज नहीं। बल्कि इसका मतलब यह है कि मन इस ओर आकर्षित हो जाता है, चाहे हम इसे चाहें या नहीं। इच्छा का दूसरा रूप है—भय, विरक्ति और धृणा। उदाहरण के लिए हम जीना चाहते हैं और मृत्यु से डरते हैं। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और जितना ज्यादा हम उस पर ध्यान देते हैं जिसे हम चाहते हैं उतना ही हम उसके बारे में भी सोचने लगते हैं जिसे हम नहीं चाहते। कभी तो मन सकारात्मकता पर ध्यान करता है और कभी यह नकारात्मकता में लीन हो जाता है।”

“नकारात्मक पक्ष देखें तो मन किसी कष्टदायक विचार, किसी दर्दनाक याददाशत या किसी कठोर भावना की ओर झुक सकता है। यहाँ तक कि यह शारीरिक दर्द भी हो सकता है। ये सभी मानसिक वस्तुएँ भंवर की तरह होती हैं जो हमारे ध्यान को अपनी ओर खींच लेती हैं।”

“असल में हमारा ध्यान खींचने वाली सभी वस्तुएँ भंवर की तरह होती हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि हम उनके बारे में सकारात्मक महसूस करते हैं या नकारात्मक। हम तैर कर उनसे दूर जाने का प्रयास कर सकते हैं लेकिन हमें तेज धाराओं के खिलाफ़ तैरना पड़ता है। जब हम किसी चीज़ से बच निकलने पर ज्यादा ध्यान देते हैं तो इसका आकर्षण और भी मजबूत हो जाता है। तो देखिए कि एक विचार की शक्ति यहाँ तक बढ़ जाती है कि हम उस पर ध्यान देने लगते हैं।”

“उदाहरण के लिए, एक लड़का एक लड़की को देखता है और उसके लिए पागल हो जाता है। उसका मन उसी पर टिक जाता है। वह उसके बारे में सोचना बन्द नहीं कर सकता और वह उसके बारे में सोचने से प्रसन्न भी है। लेकिन क्या होगा अगर वह पहले से ही विवाहित पुरुष हो?”

“तब तो वह मुसीबत में है,” मैंने कहा।

“उस लड़की का विचार एक भंवर की तरह है। वह उसकी ओर खिंचता ही जाता है। उसे यह भी मालूम है कि यह ठीक नहीं है। इसलिए अत्यन्त प्रयासपूर्वक वह उसके आकर्षण के बहाव से संघर्ष करता है। उसका मन उसके विचार पर जम जाना चाहता है लेकिन यह ग़लत चीज़ पर जम रहा है।”

“हम अक्सर विचारों के ऐसे घेरे में फँस जाते हैं जो न तो हमारे जीवन के लिए और न ही दूसरों के जीवन के लिए उपयोगी होता है। असल में विचारों के ये घेरे हमारे जीवन में विनाशकारी ताकत बन सकते हैं। इसलिए हमें मन को नियन्त्रित करना होगा। हम ध्यान के अभ्यास द्वारा इसे प्राप्त करते हैं। हमें इस तरह अभ्यास करना चाहिए कि हमारा मन स्वाभाविक रूप से एक उपयोगी और रूपान्तरकारी वस्तु की ओर आकर्षित हो जाये। एक सुदृढ़ विधि ही ऐसा करके दिखा सकती है। ध्यान में मन को सन्तुष्टि के परम स्रोत की ओर मोड़ देना ही वह तरीका है जिससे मन नियमित हो सकता है।”

“अतः ध्यान का लक्ष्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है,” मैंने टिप्पणी की।

“हाँ, लक्ष्य ही उस प्रभाव को निर्धारित करता है जो ध्यान से हमारे ऊपर होगा।” उन्होंने कहा, “आप पानी पियें या व्हिस्की, पीने की क्रिया तो एक जैसी ही है। केवल उसका प्रभाव भिन्न है क्योंकि वस्तु भिन्न है। इसी प्रकार किसी भी वस्तु पर आप ध्यान करें, ध्यान की क्रिया समान है। बात केवल इतनी है कि भिन्न वस्तुओं के परिणाम भी भिन्न होते हैं। सीमित वस्तु एक सीमित प्रभाव उत्पन्न करती है। एक असीमित वस्तु किस तरह का प्रभाव पैदा करेगी? यह विचार मन को तो भ्रमित कर देता है। पर वह हृदय को भ्रमित नहीं कर सकता। हृदय अन्तर्बोध से कार्य करता है और मन के अनेक बन्धनों से मुक्त है।”

“वह असीमित वस्तु क्या है?” मैंने पूछा।

“स्रोत,” दाजी ने कहा। “यह स्वयं दिव्यता ही है—मूल स्रोत। मन से दिव्यता को खोजने का मतलब है उसे बाहर खोजना। और फिर यह बहुत दिमागी भी है और सूक्ष्म भी। अगर हम ध्यान केन्द्रित करने की कोशिश करते हैं तो हमें ध्यान केन्द्रित करने के लिए कुछ भी नहीं मिलता है। अगर हम इसे समझने की कोशिश करते हैं तो यह हमारी समझ में भी नहीं आता है। यह कुछ ऐसा है जिसे भीतर ही ढूँढ़ा जाना चाहिए। इसकी पहली झलक हमें अहसास के रूप में ही मिलती है।”

“सोचने की प्रक्रिया संकरी होती है। लेकिन अहसास व्यापक और सम्पूर्ण होता है। सोचना भी उसी में सम्मिलित है परन्तु वह सोचने से भी परे होता है। इसमें हमारे तन्त्र की सभी विधाएँ शामिल हैं लेकिन यह उनसे भी परे है। अहसास के द्वारा गहरे सत्य उजागर होते हैं। दिव्यता को जाना नहीं जा सकता, उसकी उपस्थिति का अहसास किया जा सकता है।”

“क्या आप अपने जिगर या अपने पाँव की एड़ी पर इसकी उपस्थिति महसूस कर सकते हैं? क्या आप अपने कन्धे या अपनी कोहनियों से इसे महसूस कर सकते हैं? हृदय महसूस करने का अंग है इसीलिए इसे हृदय से

महसूस किया जाता है। और इसीलिए हम हृदय पर ध्यान करते हैं। और यहाँ आकर हमारी ज्ञान, धारणाओं और रूपों की यात्रा समाप्त हो जाती है।”

“इस आन्तरिक उपस्थिति को महसूस करने में ध्यान हमारी सहायता कैसे करता है?” मैंने पूछा। “इससे जुड़ने में कैसे हमारी मदद करता है?”

“पतंजलि के योग सूत्रों में यह भली-भाँति समझाया गया है,” दाजी ने बताया। योग सूत्र जिन्हें अक्सर ऋषि पतंजलि से जोड़ कर देखा जाता है प्राचीन शिक्षाएँ हैं जो योग के कुछ मूलभूत सिद्धान्तों को स्पष्ट करती हैं। हालाँकि कई लोग शारीरिक व्यायाम के साथ ‘योग’ शब्द को जोड़ते हैं। लेकिन वह योग की केवल एक शाखा है। योग एक ध्यानपरक दृष्टिकोण भी है जिसका उद्देश्य व्यक्ति को सार्वभौमिक स्रोत से जोड़ देना है। योग का यह पहलू योग सूत्रों का विषय है, जिसमें पतंजलि ने आठ अंगों या चरणों को मिलाकर एक मार्ग प्रस्तुत किया है जिसे सामूहिक रूप से अष्टांग योग के रूप में जाना जाता है। वे आठ चरण हैं :

1. यम
2. नियम
3. आसन
4. प्राणायाम
5. प्रत्याहार
6. धारणा
7. ध्यान
8. समाधि

दाजी ने कहा, “योग सूत्रों के सभी आठ चरण महत्वपूर्ण हैं और हम उनमें से प्रत्येक के बारे में आगे चर्चा करेंगे। हालाँकि फिलहाल मैं बाद के चार चरणों : प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि पर ध्यान केन्द्रित करना चाहूँगा। ये चार चरण उस प्रक्रिया का वर्णन करते हैं जिसके द्वारा हम ध्यान की गहराइयों में प्रवेश करते हैं। ये सभी चरण एक-दूसरे से भिन्न हैं लेकिन अलग नहीं हैं। बल्कि वे एक दूसरे में समाए हुए हैं। वे एक ही अभियान—हमारे अस्तित्व की गहराइयों की यात्रा—के चार पहलू हैं।”

“आइए, हम पाँचवें चरण से शुरू करें जो ‘प्रत्याहार’ है। प्रत्याहार का अर्थ है—स्वयं को खींच लेना। यह भीतर की ओर मुड़ना है, चारों ओर के अनेक भटकावों से स्वयं को अलग करके भीतर की ओर केन्द्रित कर लेना है। अधिकांश समय हमारा ध्यान बहिरुखी होता है। हमारी जागरूकता सामान्यतया पाँच इन्द्रियों तक ही सीमित रहती है। इनसे तो हम बस सुनते हैं, देखते हैं, स्पर्श करते हैं, सूँघते हैं और स्वाद लेते हैं। हमारे इस बाहरी

झुकाव में कुछ ग़लत नहीं है। हमारे अस्तित्व के लिए यह महत्वपूर्ण है। हमारी इन्द्रियाँ एक मार्गनिर्देशन प्रणाली की तरह हैं। वे हमें जीवन की बुनियादी ज़रूरतें : भोजन, आश्रय, वस्त्र इत्यादि जुटाने में मदद करती हैं।”

“परन्तु जीवन के इस भौतिक पहलू से हम बहुत अधिक उत्साहित रहते हैं। हम बहुत अधिक भौतिकता हासिल कर सकते हैं, दूसरों से प्रेम और प्रशंसा प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन ये चीज़ें गहरे स्तर पर हमें तृप्त नहीं कर सकतीं। वे हृदय को सच्चे रूप में सन्तुष्ट नहीं कर सकतीं। चाहे कितना भी हम प्राप्त कर लें फिर भी हम पाते हैं कि हममें किसी ज़रूरी चीज़ की कमी रह गयी है। अन्ततः हम महसूस कर लेते हैं कि हमारी भौतिक इच्छाओं की पूर्ति से हमें तृप्ति नहीं मिलती। हमारा हृदय तो किसी और ही चीज़ के लिए तड़पता है—बिलकुल अलग, कोई बहुत गहरी चीज़।”

“आपने पहले भी इस बारे में बात की है,” मैंने कहा। “आपने पूर्णता प्राप्त करने व मूल स्रोत से एकाकार हो जाने हेतु आत्मा की तड़प के बारे में बताया था।”

“हाँ,” दाजी ने कहा। “लेकिन वह धारणा बहुत बौद्धिक है। हमारे दिलों के साथ प्रतिध्वनि करने के लिए वह बहुत सूक्ष्म है। एकाकार होने की हमारी बुनियादी चाह एक ऐसी चीज़ है जिसको हमें स्वयं के भीतर ही खोजना चाहिए। जब तक हम ऐसा नहीं करते, हम आम-तौर पर बहक जाते हैं और भीतरी तृप्ति की खोज भौतिक स्तर पर ही जारी रखते हैं। हमारी खोज बाहरी ही रहती है और हम चीज़ों को हासिल करने और उनका उपभोग करने में लगे रहते हैं।”

“बड़ी आसानी से हमें चीज़ों के लगातार उपयोग या किसी प्रोत्साहन की लत पड़ जाती है। उदाहरण के लिए जैसे आप इतने सारे लोगों को कुछ-कुछ देर बाद अपने स्मार्टफोन को देखते हुए पाते हैं। ध्यान में हम कुछ देर के लिए स्वयं को ऐसी चीज़ों से अलग कर लेते हैं। गतिशील जीवन की निरन्तरता से हम विराम लेते हैं। हम इसके लालचों, इसकी चिन्ताओं और इसके तनावों से मुख मोड़ लेते हैं। दूसरे शब्दों में हम स्वयं से बाहर की खोज बन्द कर देते हैं। यही प्रत्याहार है। प्रत्याहार में हम भीतर जाते हैं। भगवद्गीता इसे एक चित्र के रूप में बताती है : ‘जब योगी अपनी इन्द्रियों को उनके कार्यों से ठीक उसी तरह विमुख कर देता है, जैसे कि एक कछुआ अपने अंगों को सभी दिशाओं से खींच लेता है तो उसकी चेतना भली-भाँति स्थापित हो जाती है’। हम अपने भीतर केन्द्रित हो जाते हैं।”

“यदि आप आगे भी प्रत्याहार को समझना चाहते हैं, तो संस्कृत में इसका शब्द-विन्यास देखें। प्रत्याहार शब्द संस्कृत के दो शब्दों से मिलकर बना है : प्रति और आहार। जहाँ “प्रति” का अर्थ है ‘विरुद्ध’ और ‘आहार’ का

अर्थ है 'सेवन'। प्रत्याहार में हम चीजों का उपभोग करने के लिए उन्हें बाह्य रूप से खोजना बन्द कर देते हैं। भीतर जाकर और स्वयं को अपने अस्तित्व के केन्द्र में बसा कर, हम उपभोग और प्रोत्साहन की इस इच्छा को हरा देते हैं। हम इतने सन्तुष्ट हो जाते हैं कि हम इसे भूल जाते हैं।"

"इसे हासिल कैसे किया जाये?" मैंने पूछा।

"कोई चीज़ हो जो हमें अन्दर की ओर खींचे," दाजी ने कहा, "इसे बलपूर्वक हासिल नहीं किया जा सकता। नहीं तो हम संघर्ष ही करते रह जायेंगे। अक्सर होता ऐसा है कि एक व्यक्ति अपनी आँखें बन्द कर लेता है और ध्यान करने की कोशिश करता है लेकिन भीतर उसे कुछ नहीं मिलता। यह ऐसा है मानो दिल बन्द हो गया हो—पूरी तरह से पहुँच के बाहर। कुछ मिनट कोशिश करने के बाद वह निराश हो जाता है। "मुझे कुछ महसूस नहीं होता!" वह ऐसा कहता है। और फिर छोड़ देता है या फिर बलपूर्वक हृदय पर केन्द्रित होने की कोशिश करता रहता है। लेकिन तब वह वास्तव में ध्यान नहीं कर रहा होता है। यह वो चीज़ नहीं है बल्कि एकाग्रता है।"

"जब हम अन्दर देखते हैं तो हमें कुछ दिखाई क्यों नहीं देता?" मैंने पूछा।

"हमने अपनी आन्तरिक संवेदनाएँ इतनी विकसित नहीं की हैं कि उस सूक्ष्म स्तर पर हम कुछ भी महसूस कर पायें," दाजी ने कहा। "हम लाल रंग को पहचानने की कोशिश में लगे एक अँधे व्यक्ति की तरह हैं। दिव्यता पहले से ही हमारे भीतर है लेकिन हम इसे पहचानते नहीं। हम इसे महसूस नहीं करते। इसलिए हमारे ऊपर इसका कोई प्रभाव नहीं होता।"

मैंने पूछा, "इस बन्धन से कैसे पार पाया जाये?"

"हार्टफुलनेस में हमारे ध्यान को यौगिक प्राणाहुति से सहायता प्राप्त होती है," दाजी ने कहा। "उसी से सारा फ़र्क पड़ता है। यौगिक प्राणाहुति का विषय विशाल है अतः इसे गहराई से जानने के लिए और स्वयं अनुभव करने के लिए थोड़ा इन्तज़ार करते हैं। तब तक इतना ही समझ लें कि प्राणाहुति गहन ध्यान के लिए एक उत्प्रेक है। दिव्यता में हमारे केवल विश्वास करने की बजाय यह हमें दिव्यता का अनुभव कराती है। दिव्य अनुभव से सराबोर कर प्राणाहुति हमें विश्वास करने की ज़रूरत से परे जाने में मदद करती है। किसी चीज़ का अनुभव जब आप स्वयं करते हैं तो विश्वास का कोई मतलब नहीं रह जाता। अतः प्राणाहुति एक ऐसा जरिया है जिसके द्वारा हम वास्तविकता के प्रति और अपने भीतर की आवश्यक उपस्थिति के प्रति जागृत हो जाते हैं। परिणामस्वरूप ध्यान अब एक आनन्ददायक और जीवन्त गतिविधि बन जाता है। अब यह सिर्फ़ एक नीरस अभ्यास नहीं है।

अब हम विचारों और शारीरिक संवेदनाओं के साथ संघर्ष करते हुए ध्यान नहीं करते हैं।”

“इसके अलावा, यौगिक प्राणाहुति हमें उस आन्तरिक उपस्थिति में विलय होने और लगभग उसी के समान बन जाने में सहायक होती है। तो देखें कि प्राणाहुति स्वयं में दिव्यता ही है जो हाथ में आमन्त्रण लिये आपके दरवाजे पर आती है। जिस प्रकार गुलाब की खुशबू हमें बगीचे की ओर आकर्षित करती है उसी प्रकार दिव्यता की महक हमें अन्दर की ओर खींचती है। यह अत्यन्त मुआध और वशीभूत कर देने वाली होती है। यह हमारे दिल से बात करती है और हमें अपनी ओर, हमारे खुद की ओर और आगे खींचती है। ध्यान के गहरे स्तरों तक पहुँचने में यह हमारा मार्ग प्रशस्त करती है। यह सब इतने स्वाभाविक रूप से हो जाता है कि हमें शायद ही कोई प्रयास करना पड़ता हो। यही कारण है कि बाबूजी (हार्टफुलनेस पद्धति के दूसरे गुरु) ने हार्टफुलनेस के इस मार्ग को ‘प्राकृतिक मार्ग’ या ‘सहज मार्ग’ कहा है। इसका नज़रिया प्राकृतिक और प्रयास रहित है।”

“अब भीतर खींचे जाने के बाद हम पतंजलि पद्धति के छठे चरण में पहुँचते हैं, जो ‘धारणा’ है। पतंजलि ने ‘धारणा’ को ‘अन्य चीज़ों पर रोक लगाने’ के रूप में परिभाषित किया है। इसका अर्थ यह है कि ध्यान के दौरान, आप भटकते नहीं हैं। आपको अब भी बाहर से ट्रैफ़िक की आवाज़ें आती हुई सुनाई देंगी। आपको यह भी पता होगा कि बगल वाले कमरे में कोई फोन पर जोर-जोर से बात कर रहा है। फिर भी आप इन सभी आने वाली आवाज़ों से अप्रभावित रहेंगे। वे आपको परेशान नहीं करेंगी। उनके प्रभाव पर रोक लग जाती है।”

“हालाँकि पतंजलि की परिभाषा के फलस्वरूप लोग धारणा को प्रायः गहरी एकाग्रता की स्थिति समझने की ग़लती कर बैठते हैं। आइए, इसका शब्द विन्यास भी देख लें। ‘धारणा’ संस्कृत की ‘धर’ धातु से बना है जिसका अर्थ है, ‘वह जो धारण करती है’। अतः एक छोटे भ्रूण की तरह जिसे अपनी माता के गर्भ में सहारा मिलता है, हमको भी सहारा दिया जाता है। लेकिन कहाँ? हृदय के गर्भ में। जब हम हृदय में पूर्ण आराम से होते हैं तो कुछ विशिष्ट, कुछ पावन घटित होता है। प्रकृति में बीज धरती माता के गर्भ में अंकुरित होते हैं, उस आराम के कारण जो उन्हें वहाँ मिलता है। इस आराम में वे प्रस्फुटित होते हैं और अपने ऊपर का कवच उतार फेंकते हैं। क्यों? क्योंकि उन्हें अपने चारों ओर की धरती से सुरक्षा मिलने का अहसास है। जब हम हृदय के गर्भ में उसी स्तर के आराम और सुरक्षा का अनुभव करते हैं तो दिव्य बीज खुलने लगता है और उस बीज से धीरे-धीरे एक नया आध्यात्मिक

जीवन प्रकट होने लगता है। अब हम चेतना के एक बिलकुल नये क्रम को अनुभव करना शुरू कर देते हैं।”

“इस स्थिति में हम गहरे आराम का अनुभव करते हैं। हम इतने आराम का अनुभव करते हैं कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जब हम इतने शान्त हो जाते हैं तो क्या मन अब भी बेचैन रहेगा? क्या हमारी भावनाएँ हमारे भीतर कोई तूफ़ान खड़ा कर सकेंगी? सब कुछ अब थम जाता है और हम सन्तुष्ट हो जाते हैं।”

“तो देखें कि ध्यान की वस्तु को हम अपने मन में पकड़ कर नहीं रखते जैसा कि लोग अक्सर सोचते हैं। यह तो हमें थका देगा। होता तो बल्कि यह है कि ध्यान की वस्तु ही हमें पकड़ कर रखती है।”

“पतंजलि का अगला चरण ‘ध्यान’ है जिसका मतलब ‘एक वस्तु पर मन को टिकाना’ है। लेकिन जब मन आरामदायक स्थिति में ही हो तो इसे टिकाए रखने की कोई ज़रूरत नहीं पड़ती। यह पहले से ही अपनी जगह पर होता है। यह वहीं सन्तुलित बना रहता है।”

“तो ‘धारणा’ और ‘ध्यान’ वास्तव में उसी एक स्थिति का वर्णन कर रहे हैं,” मैंने कहा।

“सही कहा,” दाजी बोले, “एक अविचलित मन और एक स्थिर मन के बीच कोई अन्तर नहीं है। उनमें कोई भेद नहीं किया जा सकता।”

“और हमें एक शान्त मन को सुस्त मन मानने की ग़लती नहीं करनी चाहिए। बिलकुल नहीं। इस स्थिति में तो हमारी जागरूकता गतिशील हो जाती है। चेतना हमारे अन्दर की दिव्यता से सराबोर हो जाती है। हम इसमें पूरी तरह से डूबे हुए होते हैं। जब हमारे डूबने का स्तर एक निश्चित सीमा से आगे बढ़ता है तो इसे हम ‘समाधि’ कहते हैं जो पतंजलि योग पद्धति का आठवाँ और अन्तिम चरण है।”

“क्योंकि समाधि इन आठ चरणों में अन्तिम चरण है, लोग सामान्यतया इसे आध्यात्मिक यात्रा की महान पराकाष्ठा के रूप में समझ लेते हैं। वास्तव में समाधि तो केवल एक शुरुआत है। इससे भी आगे अभी बहुत, बहुत और बहुत कुछ है। असल में हममें से बहुत लोग ध्यान के पहले ही दिन समाधि का स्वाद ले लेते हैं। जैसा कि आपके साथ भी हुआ था। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते हैं समाधि का हमारा अनुभव और गहरा एवं परिवर्तित होता जाता है।”

“समाधि गहरा ध्यान ही है। यह दिव्य ध्येय में गहराई से डूबना है। जिससे हम अपने भीतर की उस दिव्य उपस्थिति के साथ एक होना शुरू हो जाते हैं और अन्ततः एक हो जाते हैं। हालाँकि पूर्ण एकत्व तुरन्त ही नहीं होता। यह एक प्रगतिशील चीज़ है। हर अगले ध्यान में कुछ और अधिक

विलय हो जाना सम्भव है। और हर छोटे विलय में, हम पूर्णता की भावना का अनुभव करते हैं जिसकी बराबरी हमारे किसी भी पिछले अनुभव से नहीं की जा सकती। हमारा हृदय सुकून और सन्तुष्टि से ओत-प्रोत हो जाता है। हालत जब ऐसी हो तो क्या कोई चीज़ हमें परेशान कर सकती है? क्या हम फिर भी तनावप्रस्त या असन्तुलित महसूस कर सकते हैं? मन तभी आराम करता है जब दिल शान्तिपूर्ण स्थिति में होता है।”

“फिर भी कई लोग ध्यान को मन की निष्क्रिय या विचारहीन स्थिति मानते हैं। यह तो बहुतों की समझ में नहीं आया है कि आन्तरिक स्थिरता की जड़ें इसी एकत्व में समायी हुई हैं। प्रायः लोग मानसिक स्थिरता को ही लक्ष्य के रूप में ले लेते हैं, यह जाने बिना कि उस स्थिरता का कारण क्या है। यह मानकर कि ध्यान विचारों को दबाने की ही एक प्रक्रिया है, वे विचारहीनता की स्थिति पैदा करने के लिए कई कृत्रिम तरीके निकाल लेते हैं। निश्चित रूप से शरीर में ऐसे बिन्दु हैं जिन पर एकाग्र होने से विचारहीनता की स्थिति पैदा होती है। (यही कारण है कि कुछ लोग नाक के सिरे पर ध्यान करते हैं।) लेकिन एकत्व के बिना विचारहीनता मात्र अज्ञानता या मानसिक सुस्ती की ही अवस्था है और यह किसी काम की नहीं है। इसे समाधि नहीं कहते।”

“आइये, अब हम इस शब्द की ही जाँच करें! ‘समाधि’ संस्कृत की दो धातुओं से मिल कर बना है। ‘सम’ का अर्थ ‘बराबर’ और ‘आदि’ का अर्थ है ‘मूल’। तो समाधि में हम उस अवस्था में प्रवेश करते हैं जो मूल अवस्था के सामान है। वह अवस्था जो हमारे अस्तित्व में आने से पहले व्याप्त थी। उस समय स्रोत से अलग कुछ भी अस्तित्व में नहीं था। वह स्रोत जिससे हम प्रकट हुए। उस स्थिति में पूर्ण शान्ति और पूर्ण सन्तुलन था।”

“असल में ‘सम’ का अर्थ केवल ‘सामान’ ही नहीं है जैसा कि अभी मैंने बताया। इसका मतलब ‘सन्तुलन’ भी हो सकता है। इसलिए हम ‘समाधि’ का अनुवाद ‘मूल सन्तुलन’ के रूप में भी कर सकते हैं।”

“तो समाधि की अवस्था हमारी उस मूल अवस्था के सामान है जो सन्तुलन की अवस्था थी,” मैंने कहा।

“बिलकुल,” दाजी ने कहा, “‘समाधि’ शब्द बनाने का एक तीसरा तरीका भी है। ‘सम’ जिसका अर्थ ‘सन्तुलन’ है को ‘आधि’ धातु के साथ जोड़िए जिसका अर्थ है ‘मानसिक अशान्ति’। इस सम्बन्ध के अनुसार समाधि का एक और अर्थ निकलता है—‘मानसिक अशान्ति का सन्तुलन’। यह भेद खोल देने वाला एक वर्णन है। समाधि में परेशान मन अपनी मूल सन्तुलित अवस्था की ओर वापसी करता है। सन्तुलन मन के लिए प्राकृतिक है जबकि अशान्ति कृत्रिम। यह बाद में आयी। इसे तो हमने ही बनाया है।”

“और हम इसे बनाते रहते हैं,” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी ने कहा, “अशान्ति हमारे प्रयासों पर निर्भर करती है परन्तु सन्तुलन किसी भी चीज़ पर निर्भर नहीं करता। जब आप चीज़ों को अकेले छोड़ देते हैं तो वे खुद ही सन्तुलित हो जाती हैं। एक तालाब में तरंगें तभी उठती हैं जब इसमें कुछ छेड़खानी की जाती है वरना अपने आप में तो यह शान्त ही रहता है।”

“इसलिए हम सन्तुलन पैदा नहीं कर सकते,” मैंने कहा।

“और न ही हम समाधि पैदा कर सकते हैं,” दाजी ने उत्तर दिया, “हम ध्यान करते हैं और समाधि अपने आप आ जाती है। यह तो वह चीज़ है जो तब बची रह जाती है जब सब कुछ शान्त हो जाता है। अनन्त लक्ष्य पर प्रयास रहित फोकसः इसी को ध्यान कहते हैं।”

“सीमित वस्तु के साथ आपकी जागरूकता सीमित होती है। उदाहरण के लिए बहुत से लोग मन्त्र पढ़ते हैं। लेकिन बार-बार एक ही शब्द को दोहराते हुए तो वे अपने मन का विकास रोकते ही हैं। ऐसे दोहराव के द्वारा वे अपनी जागरूकता को शब्द की संकीर्ण परिधि तक सीमित कर देते हैं। एक सीमित विचार पर ध्यान केन्द्रित करने से आपकी जागरूकता एक ही बिन्दु पर टिकी रहती है। जब आपकी जागरूकता एक ही बिन्दु पर केन्द्रित हो तो आप उस एक बिन्दु के अलावा बाकी सभी से चूक सकते हैं। आप ऊँखों पर पट्टी बाँधे घोड़े की भाँति वह व्यक्ति बन जाते हैं जिसको केवल सामने की वस्तु ही दिखाई देती है, और कुछ नहीं। आपकी जागरूकता सीमित हो जाती है।”

“तब क्या होता है जब आपका ध्येय असीमित होता है?” मैंने पूछा।

“एक असीमित वस्तु लेने पर आपकी जागरूकता अस्तित्व की असीमित सम्पूर्णता को सम्मिलित कर लेती है। ऐसी जागरूकता में सब कुछ शामिल रहता है। इससे कुछ नहीं बच सकता। लेकिन क्या इसका यह मतलब है कि आप एक साथ दुनिया के हर व्यक्ति, हर कुत्ते, हर गाय, ब्रह्माण्ड के हर कण के प्रति जागरूक हो गये? नहीं! ध्यान में जो हम जागरूकता प्राप्त करते हैं वह विभिन्न रूपों या विविधताओं के बारे में हमारी जागरूकता नहीं है। बल्कि यह उनके एकत्व के बारे में है। यह सम्पूर्णता के प्रति पूर्ण जागरूकता है। सम्पूर्णता में यदि कोई गुण है तो वह है उसका अस्तित्व। यह एक शुद्ध उपस्थिति है, एक शुद्ध अस्तित्व।”

“और हम भी उसका एक हिस्सा हैं,” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी ने कहा, “आप इससे अलग नहीं हो सकते। यह ऐसा नहीं है कि आप किसी पर्वत शिखर पर खड़े हों और अनन्त को निहार रहे हों।

बल्कि आप वही बन जाते हैं। आपकी स्थिति अब उस पुराने वैदिक आह्वान ‘तत् त्वं असि’ की याद दिलाती है जिसका अर्थ है—‘आप हैं और यही सच है।’। आप ‘वह’ हो जाते हैं लेकिन इसका एहसास आपको नहीं होता।”

“क्यों नहीं होता?” मैंने पूछा।

“क्योंकि आप अनन्त में विलीन हो गये हैं,” दाजी ने कहा। “अब आप वहाँ नहीं हैं। और अगर आप वहाँ नहीं हैं तो इस सत्य का अनुभव कौन करेगा? अब ज्ञानी ज्ञान में विलीन हो जाता है। बूँद महासागर में विलीन हो जाती है।”

दाजी रुके और फिर बोले, “लेकिन यह अन्त नहीं है। नहीं, यह तो केवल एक शुरुआत है.....”

मनोभाव

एक बार दोपहर में, मैंने दाजी के साथ अकेले ध्यान किया। इसके बाद दाजी ने कहा, “ध्यान ही सब कुछ नहीं है।”

“आपका क्या मतलब है?” मैंने पूछा।

“आध्यात्मिक अभ्यास महत्वपूर्ण है,” उन्होंने कहा। “इसके बिना परिवर्तन केवल एक सपना है। फिर भी एक सबसे अधिक प्रभावशाली ध्यान पद्धति जिसका दृष्टिकोण भी सर्वाधिक अनुशासित हो, हमें इस मार्ग के मात्र 5 प्रतिशत तक ही ले जा सकती है।”

“और बाकी 95 प्रतिशत?” मैंने पूछा।

“रवैया,” दाजी ने कहा, “हम जो करते हैं वह महत्वपूर्ण है,” उन्होंने कहा, “लेकिन यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि हमारा ‘रवैया’ जिसके साथ हम इसे करते हैं। यह केवल ध्यान पर ही लागू नहीं होता। किसी भी गतिविधि के साथ यह हमारा रवैया ही है जो उसे परिभाषित करता है और यह हमारा रवैया ही है जो उसकी सफलता निर्धारित करता है। यदि आप नकारात्मक मनोदशा में ध्यान करेंगे तो इसका उल्टा असर होगा। आपकी नकारात्मकता ही आपके ध्यान का उद्देश्य बन जाती है। आपकी आँखें बन्द होंगी। आप ऐसे दिखेंगे मानो आप ध्यान में हों लेकिन वास्तव में आप अपने ही नकारात्मक विचारों और भावनाओं पर चिन्तन कर रहे होंगे। वही आपके ध्यान का केन्द्र बन जाते हैं। और क्या होगा जब आप अपनी ही ख़राब मनःस्थिति पर ध्यान करेंगे?”

“यह और तीव्र हो जायेगी,” मैंने कहा।

“ध्यान का उद्देश्य चेतना की सूक्ष्मतम अवस्थाओं में प्रवेश करना है,” वह बोलते गये। ‘यदि आप अपने साथ भारीपन, विवाद और पीड़ा लेकर आयेंगे तो क्या होगा? हमें उन सबको पीछे छोड़ना होगा। ऐसी चीज़ें हमें नीचे धकेलती हैं। लेकिन सफाई पद्धति से उन्हें आसानी से हटा दिया जाता है।”

“अन्य मनोवृत्तियाँ भी हैं जो सूक्ष्म तरीके से बाधा डालती हैं। ‘उम्मीद’ इनमें से एक है। कई लोग किसी नतीजे की उम्मीद लेकर ध्यान करने आते हैं। मान लीजिए एक दिन आपको ध्यान में बेहतरीन अनुभव हुआ। अगली बार जब आप ध्यान करते हैं तो आप वही अनुभव फिर से करना चाहते हैं। ऐसा करने से आप अपने ध्यान में एक शर्त लगा देते हैं। ‘मुझे आज शान्ति महसूस होनी चाहिए!’ हो सकता है कि कुछ बेहतर चीज़ आपकी प्रतीक्षा कर रही हो लेकिन फिर भी आप शान्ति चाहते हैं। तो फिर आप उस चीज़ से वंचित रह जाते हैं।”

“इससे यह देखने को मिलता है कि एक सर्वोत्तम अनुभव भी एक झाँसा बन सकता है। अनुभवों से ही चिपके रहने की हमारी प्रवृत्ति होती है। इसके बजाय हमें पार जाने के लिए और आगे बढ़ने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए। यहाँ तक कि उस उच्च अवस्था पर भी जहाँ अन्तः आनन्द की स्थिति आ जाती है, आपको आगे बढ़ते रहना चाहिए। अन्यथा आनन्द की उस स्थिति में बने रहने की आपकी इच्छा आपको वहाँ पर रोके रखती है। आपको यह इतनी अच्छी लगती है कि आप इसे बार-बार दोहराना चाहते हैं। आप इसे पार नहीं करना चाहते। भरोसा रखें कि जो भी आप अनुभव करते हैं उससे आगे भी हमेशा कुछ रहता है।”

“हमें इसकी दूसरी चरम सीमा से भी बचना चाहिए जो कि आगे आने वाली अवस्था के लिए बेसब्री है। हमें आगे बढ़ने की किसी जल्दबाजी में नहीं रहना चाहिए। यह रवैया भी हमें वहाँ पर रोके रखता है।”

“मुझे लगता है कि अनुभव से चिपके रहने और जल्दबाजी में होने के बीच भी एक महीन अन्तर है,” मैंने कहा।

“नहीं, बिलकुल नहीं,” दाजी ने कहा, “यह एक सामान्य बात है। बस प्रक्रिया को स्वाभाविक रूप से खुलने दें। इस पर कोई शर्त न लगायें। किसी चीज़ पर जोर न दें। कोई माँग न रखें। सबसे अच्छा ध्यान तभी होता है जब हमारी कोई उम्मीद न हो—यहाँ तक कि ध्यान के अनुभव की भी! यदि कुछ होता है तो ठीक है। यदि कुछ अनुभव नहीं होता तो भी ठीक है।”

“सचमुच ध्यान एक तरह का इन्तज़ार है। लेकिन ऐसी बेसब्री से नहीं जैसे कि आप बस के इन्तज़ार में इधर से उधर चक्कर लगा रहे हों। यह आराम से इन्तज़ार करने की तरह है। आप निश्चिन्त हैं। आप आराम से हैं।

बेचैन होने से कुछ फायदा नहीं। हर चीज़ अपने समय से होती है। उदाहरण के लिए आप तितली के कोकून को परिपक्व होने से पहले काट कर नहीं खोल सकते। इससे तो तितली मर जायेगी। इसी प्रकार हम समय से पहले आध्यात्मिक अवस्थाओं के मुखरित होने की अपेक्षा नहीं कर सकते। वे आयेंगी!”

मैंने कहा, “कभी-कभी हमें अप्रिय अनुभव भी होते हैं। फिर क्या करें?”

“ध्यान में तो कई चीजें होती हैं,” दाजी ने कहा। “लेकिन हर अनुभव आखिर में अच्छा ही साबित होता है क्योंकि हर अनुभव का एक उद्देश्य होता है भले ही हम उसे न समझ पायें। और हमें समझने की ज़रूरत भी नहीं है। आगे बढ़ते रहने के लिए हमारी समझ आवश्यक नहीं है। बस अपने अनुभवों को हल्के में लें और आगे बढ़ते जायें। हममें से अधिकांश आध्यात्मिक यात्रा की बारीकियों को नहीं समझते। यहाँ तक कि अगर लक्ष्य के बारे में हमारे अन्दर धुँधली-सी कोई छवि है तब भी हम मार्ग में आने वाली सभी अवस्थाओं को नहीं जानते। अवस्थाएँ असंख्य हैं। कभी ऐसा लगता है कि रास्ता पीछे की ओर जा रहा है तो कभी कोई रास्ता होता ही नहीं है। फिर भी हम चेतना से होती हुई अपनी यात्रा पर आगे बढ़ रहे होते हैं। तो अनुभव धोखा दे सकते हैं। उदाहरण के लिए समाधि के बारे में हमारी बातचीत।”

“गहरे ध्यान वाली बात,” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी ने कहा, “लेकिन हर ध्यान समाधि में जाकर खत्म नहीं होता। किसी दिन तो कोई गहराई अनुभव ही नहीं होती। किसी दिन हमारे ध्यान का अनुभव हमारी पसन्द के हिसाब से बहुत ही सांसारिक होता है। फिर हम चिन्ता करते हैं कि कुछ गलत हो गया है। इसी से मालूम पड़ता है कि इस मार्ग के प्रति हम कितने अनजान हैं। कई मामलों में असुविधाजनक ध्यान का कोई अच्छा कारण भी होता है। समय-समय पर हम असुविधा के दौर से भी गुजरते हैं। सबसे बड़ा कारण यह है कि हमने अपनी यात्रा में एक बड़ी छलांग लगा ली है, हमने एक बड़ा कदम आगे बढ़ा लिया है। कुछ आन्तरिक परिवर्तन हो चुका है और अब हमें अपनी नयी अवस्था का आदी होना पड़ेगा।”

“आपका क्या मतलब है?” मैंने पूछा।

“यह एक नये अपार्टमेंट में जाने की तरह है। आप एक कमरे में जाते हैं और बायीं ओर लाइट का स्विच खोजते हैं लेकिन अब वह दायीं तरफ है। आपको नये माहौल का आदी होने में समय लगता है। सबसे अच्छा तरीका यह है कि हम अपने अनुभवों और उनसे उत्पन्न होने वाली अस्तित्व की विभिन्न अवस्थाओं का आंकलन करने से बचें और ट्रेन के यात्री की तरह गुजरते हुए दृश्यों को बस देखते हुए यात्रा करें।”

“इस यात्रा में कई दृश्य हमारी खिड़की से गुजरते हैं। हमने पहले बात की थी कि हमारे अनुभव कैसे हमारी आन्तरिक अवस्था को प्रतिबिम्बित करते हैं, कैसे हमारा गुस्सा और अहंकार हमें बुरे अनुभव देते हैं और कैसे हमारी दयालुता और नम्रता हमें आनन्दपूर्ण अनुभव देती हैं। परन्तु हम सभी में इससे भी अधिक गहरी एक प्रकृति है—दिव्य प्रकृति। वह हमारी छिपी हुई प्रकृति है। और वह एक अपरिवर्तनशील प्रकृति भी है। ज्यों-ज्यों हम प्रगति करते हैं, हमारी बाहरी प्रकृति धीरे-धीरे विकसित होती जाती है जिससे कि वह उस अपरिवर्तनशील अवस्था के अनुरूप नहीं हो जाते, हमें लगातार बदलाव का सामना करना होगा। उस मूलभूत अवस्था तक पहुँचने से पहले हमें अपने अस्तित्व की इतनी सारी अवस्थाओं से होकर गुजरना होगा। इस पूरे समय के दौरान हमें अनुभव होते रहते हैं जो इन आन्तरिक परिवर्तनों को प्रतिबिम्बित करते हैं। परिवर्तन झाकझोर भी सकते हैं क्योंकि परिवर्तन एक जैसे नहीं रहते। यद्यपि ये परिवर्तन सकारात्मक हैं तथा हमारे व्यक्तित्व में और ज्यादा समग्र सन्तुलन दर्शाते हैं फिर भी उनका अभ्यस्थ होने में थोड़ा समय लग जाता है। और जब तक हम अपरिवर्तनशील अवस्था में नहीं पहुँच जाते, हमारे भीतर कुछ बेचैनी बनी ही रहती है।”

“राह में कहीं पर अपने इन्हीं अनुभवों के बीच, हम इन अनुभवों के स्रोत, अपने परिवर्तन के भीतरी कारण से भी टकरा जाते हैं। वह क्षण एक महत्वपूर्ण क्षण होता है। आपका हृदय कृतज्ञता से पिघल-सा जाता है। आप अत्यन्त द्रवित हो जाते हैं। आपको अपने भीतर विद्यमान परम् तत्व से प्यार हो जाता है।”

“और अब आपके ध्यान की दिशा पलटती है। अनुभवों की अब आप परवाह नहीं करते। अब आप शान्ति या खुशी या किसी भी गुजरती स्थिति की परवाह नहीं करते। भला तब आप शान्ति क्यों चाहेंगे जब आप शान्तिदाता को ही प्राप्त कर सकते हों? परिवर्तन की भी अब आप परवाह नहीं करते। अब ध्यान शुद्ध और सरल प्रेम की एक क्रिया बन जाता है। अब कुछ प्राप्त करने को या अनुभव करने को नहीं रह जाता—केवल प्रेम ही प्रेम रहता है।”

“इसके लिए मजबूर नहीं किया जा सकता। यह स्वाभाविक रूप से स्वयं ही हो जाता है। अक्सर आपको यह पता भी नहीं चलता कि यह हो चुका है। यात्रा के दौरान पता नहीं कब आप इसे महसूस किये बिना ही प्यार में पड़ जाते हैं। यह एक ऐसी लड़की की तरह है जिसे एहसास होता है कि वह तो अपने मित्र से वर्षों से प्यार करती रही है और इस बात का उसे पता भी नहीं।”

“और जब भी प्रेम होता है, तो तड़प भी होती है—साथ रहने की तड़प। उस तड़प में एक सूक्ष्म कसक होती है। यह जुदाई की टीस है। यह प्रेमी का प्रियतम से दूर रहने का दर्द है। यह तड़प प्रबल हो सकती है। यह भक्ति की पहली अवस्था है।”

“कृपया यह बतायें कि भक्ति क्या है,” मैंने कहा।

“इसके कई पहलू हैं, सबसे प्रमुख तो भक्ति की गुणवत्ता है, जिसका अर्थ है कि आप उच्चतम आदर्श के लिए प्रेमपूर्वक समर्पित हैं। आपको दिव्य से प्रेम है। ऐसा तब तक नहीं हो सकता जब तक कि आपको दिव्य का कुछ अनुभव न हो। लेकिन फिर भी वह अनुभव एक और अधिक पूर्ण और स्थाई अनुभव के लिए तड़प पैदा करता है। जो सिद्ध करता है कि कहीं कोई अद्भुत चीज़ भी है। भौतिक वास्तविकता से भी परे कुछ है। ऐसा अनुभव होने के बाद भी, आप फिर से स्वयं को नीरसता में वापस फेंका हुआ पाते हैं। अनुभव गुजर चुका है और अब आप दिव्यता की उपस्थिति इतने स्पष्ट रूप से महसूस नहीं करते। यह केवल एक झालक थी, इसलिए अब आप में इसके लिए एक सच्ची तड़प आरम्भ हो जाती है। परिणामस्वरूप आप स्वयं को फिर से अपने आध्यात्मिक अभ्यास में लगा देते हैं। इसके लिए आप स्वयं को समर्पित कर देते हैं। उद्देश्य के प्रति एक नया भाव अब आपको चलाने लगता है।”

मैंने कहा, “तड़प के जिस दर्द का आप वर्णन कर रहे हैं, वह कोई उम्मीद न रखने व खुलेपन के उस रवैये से उल्टा प्रतीत होता है जिसकी चर्चा आपने पहले की थी। मेरे कहने का मतलब है कि तड़प रखना और कोई उम्मीद न रखना, ये तो विरोधाभासी दृष्टिकोण प्रतीत हो रहे हैं।”

“यह सबसे सुन्दर विरोधाभास है,” दाजी ने कहा।

“लेकिन यह काम कैसे करता है?” मैंने कहा। “इसका क्या रास्ता है?”

दाजी ने कहा, “मैं एक उदाहरण दूँगा। दुनिया में कुछ ऐसी जगह भी हैं जहाँ अगर कोई लड़का किसी लड़की से शादी करना चाहता है तो उसके परिवार के लोग लड़की के बदले में कुछ देने का सौदा करते हैं। यदि लड़की का परिवार फिर भी मना कर देता है तो लड़के का परिवार उसका अपहरण भी कर सकता है। अब इसकी तुलना उस लड़के से करें जो एक घुटने पर झुककर फूल और अँगूठी लिए पूछता है, ‘डार्लिंग, क्या तुम मुझसे शादी करोगी?’ अपने पूरे दिल से, वह उससे शादी करना चाहता है लेकिन फैसला वह लड़की पर ही छोड़ देता है। उसके प्रेम में कोई माँग नहीं है। उसके प्रेम ने प्रेम की जाने वाली वस्तु के प्रति समर्पण कर दिया है।”

“तड़प होना तो ठीक है लेकिन इसमें कोई जोर-जबरदस्ती नहीं होनी चाहिए। यह सम्मानपूर्वक होना चाहिए। यहाँ तक कि श्रद्धापूर्वक भी। यह स्वीकार्य होना चाहिए। प्रेम कभी मजबूर नहीं करता।”

“हृदय में अगर तड़प न हो तो कोई माँग न करना आसान होता है। क्या आप किसी ऐसी चीज़ की माँग करेंगे जिसकी आपको परवाह भी नहीं है? उम्मीद न रखने की महिमा तो तब है जब आप उससे भी कोई उम्मीद न रखें जिसके लिए आप पूरे हृदय से तड़पते हों! यह भक्ति की दूसरी अवस्था है। पहले चरण में प्यार और तड़प थी। दूसरे चरण में प्यार और तड़प अब भी है, लेकिन अपनी परिस्थिति के प्रति आपकी एक शालीन स्वीकृति भी है। वह परिस्थिति चाहे कुछ भी हो।”

“स्वीकार्यता एक खुशनुमा चीज़ है। बेमन से स्वीकार्यता जैसी कोई चीज़ नहीं होती। आप या तो स्वीकार करते हैं या नहीं। आप दोनों नहीं कर सकते। स्वीकार्यता दिल से होती है। आप स्वयं को ऐसी स्थिति स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं कर सकते जिसे आपका हृदय भीतर से नकार रहा हो। सच्ची स्वीकार्यता में खुशी होती है। यहाँ तक कि वह लड़की जिसे आप प्यार करते हैं, अगर मना भी कर दे तब भी आप खुश रहेंगे। प्रेम बदले में कुछ प्राप्त करने के लिए नहीं होता। यह तो प्रेम का अनादर होगा। प्रेम का अस्तित्व तो बल्कि स्वयं के लिए ही होता है। आप प्रेम की खातिर प्रेम करते हैं। यह बिना शर्त का प्रेम है और यही एकमात्र प्रेम है जो होता है। प्रेम कुछ भी नहीं माँगता। प्रेम में उम्मीद के लिए कोई जगह नहीं होती लेकिन कृतज्ञता के लिए होती है। यही कारण है कि प्रेम मनुष्य की श्रेष्ठता का शिखर है।”

“जब हमारे कार्यों के पीछे प्रेम होता है तो हमें कभी गुस्सा नहीं आता। हम कभी सताया हुआ महसूस नहीं करते। ज़िन्दगी को नीरस नहीं समझते। ध्यान के सन्दर्भ में तो यह ख़ास तौर पर सच है। हमारे दिल से इसके लिए पुकार निकलनी चाहिए। ध्यान का अभ्यास कभी भी अनुशासन या इच्छा का विषय नहीं होना चाहिए। यह ठीक है कि किसी दिन आपका मन ध्यान करने को नहीं करता। यह स्वाभाविक है। उस स्थिति में तो ध्यान न करना ही बेहतर है। मान लीजिये आप अपनी पत्नी से कहते हैं, ‘डार्लिंग आपके साथ बैठने के लिए मैं अपनी पूरी इच्छाशक्ति लगा रहा हूँ’, तो इसे विवाहित जीवन का अन्त समझो। कोई भी प्रेमी अपनी प्रेयसी से उस पर कृपा करने की भावना से नहीं मिलता। उन दिनों की सोचें जब आप एक प्रेमिका से मिलने के लिए स्कूल छोड़ दिया करते थे। अगर वह कहती थी कि ‘मैं आपको फ़िल्म थिएटर में 11:00 बजे मिलूँगी’, तो आप वहाँ 10:30 पर ही पहुँच जाते थे। शायद वह आपको परखने के लिए 10:00 बजे ही आ जाती हो। कुछ लोग

ध्यान को एक अनुशासन के रूप में मानते हैं। वे बिस्तर से उठ कर ध्यान करने के लिए इच्छाशक्ति का उपयोग करते हैं। इच्छाशक्ति बेकार की चीज़ है। इसका मतलब यह है कि इसमें आपकी रुचि नहीं है। जब आप सचमुच में ध्यान के लिए उत्सुक होते हैं, तो आप स्वयं ही जाग जाते हैं। आपको अलार्म लगाने की आवश्यकता नहीं होती। यदि आप अलार्म लगाते भी हैं तो आप इसके बजने से पहले ही उठ जाते हैं। जब आप सोते हैं तो एक आनन्दमयी लहर पूरी रात आपके अवचेतन में चलती रहती है और सुबह होते-होते आपका दिल पहले से ही हिलोरें ले रहा होता है। आप ध्यान में बैठने से पहले ही ध्यान की स्थिति में होते हैं।”

“बेशक, शुरुआत में हम ऐसे रखैये की उम्मीद नहीं कर सकते। इसे विकसित होने में कुछ समय लगता है। इसके लिए जागरूक होने में समय लगता है। भक्ति जन्मजात होती है लेकिन पहले यह सुप्त अवस्था में रहती है। हालाँकि एक निश्चित बिन्दु पर आकर यह हमारी चेतना की जागरूक सतह पर आ जाती है। यह एक भावुकतापूर्ण मनोभाव बन जाती है। लेकिन यह हमेशा इसी तरह नहीं रह सकती। यह एक व्हेल मछली की तरह हो जाती है जो सतह पर बस एक पल के लिए ही प्रकट होती है। वह एक साँस लेती है और फिर से सागर की लहरों के नीचे डुबकी लगा देती है।”

मैंने पूछा, “यह एक चेतन अहसास के रूप में क्यों नहीं रहती?”

“प्रेम सम्बन्ध में दो लोग होते हैं,” उन्होंने कहा, “प्रेमी और प्रेमिका। और जहाँ दो होते हैं, वहाँ जुदाई भी होती है। वे एक दूसरे से भिन्न हैं—भिन्न वस्तुएँ। यह ‘भक्ति’ शब्द में निहित है। ‘भक्ति’ की व्युत्पत्ति संस्कृत धारु ‘भज्’ से हुई है। इस शब्द के कई अर्थ हैं, लेकिन एक सटीक अर्थ है—‘अलग’। अलग-अलग हुए बिना, प्रेमी और प्रेमिका में भेद के बिना कोई सम्बन्ध हो ही नहीं सकता। लेकिन अगर प्रेमी और प्रेमिका अलग-अलग बने रहते हैं तो प्रेम भी एक ऐसे वादे की तरह रह जाता है जो निभाया न जा सका। जो चरम सीमा तक न पहुँच पाया, जिसमें मिलन न हो पाया।”

“उस तड़प की दशा का कुछ लोग आनन्द लेते हैं। उस तड़प में भावुकता होती है। शायद वे हमेशा के लिए वहीं रहना बेहतर समझेंगे। हालाँकि, हमें वहीं नहीं रहना चाहिए। तड़प का कोई फायदा नहीं अगर वह मिलन में नहीं बदल जाती। और मिलन में कोई रिश्ता नहीं रह जाता क्योंकि अब तो दो रहे नहीं। प्रेमी और प्रेमास्पद अब एक हो गये। यहीं प्रेम की परिणति है।”

“तो इसका मतलब यह हुआ कि रिश्ते में कोई मिलन नहीं होता और मिलन में कोई रिश्ता नहीं होता,” मैंने कहा।

“यह एक विरोधाभास है!,” दाजी ने हँसते हुए कहा, “जब प्रेमी और प्रेमिका एक हो जाते हैं, तो वे अपनी व्यक्तिगत पहचान खो देते हैं। उनके बीच फिर कोई अन्तर नहीं रह जाता। तो मुझे बताओ कि जब कोई प्रेमी ही नहीं है तो फिर प्रेम कौन करेगा? और जब कोई प्रेमास्पद ही नहीं है तो प्रेम प्राप्त कौन करेगा?”

“तो देखें कि प्रेम कुछ ऐसी चीज़ है जो वास्तव में कभी आता नहीं है। हम उसकी ओर बढ़ते हैं और वहाँ तक पहुँचने से पहले ही हम उसको पार कर चुके होते हैं। लेकिन इसमें से होकर हम कभी गुजरते नहीं हैं। इससे हमारी दूरी कम, और कम होती जाती है और जब यह और ज्यादा कम नहीं हो सकती तो हमें पता लगता है कि उसे तो हमने पीछे छोड़ दिया! एक रहस्यमय चीज़ है यह।”

“यही वह लक्ष्य है जहाँ हमें इस यात्रा में जाना होता है। हम इसे एकत्व कहते हैं लेकिन असल में यह एकत्व से भी परे है।”

“एकत्व से परे यह कैसे है?” मैंने पूछा।

“क्योंकि एकत्व में एक सूक्ष्म अहसास रहता है कि दो मिलकर एक हो गये हैं,” उन्होंने कहा, “लेकिन अगर दो होने का कोई अहसास है तो फिर यह एकत्व कहाँ? वास्तविक एकत्व में, जहाँ दो सचमुच एक हो गये हों तो दो का कोई विचार या अहसास ही नहीं रहता और हम भी कभी यह नहीं जान पाते कि हम अपने प्रियतम में मिल गये हैं। हम स्वयं को और प्रियतम को भी भूल जाते हैं। यही है वह अवस्था जो एकत्व से भी परे है। क्योंकि ‘योग’ का अर्थ एकत्व है इसलिए यह योग से भी परे है।”

“लेकिन योग तो वह मार्ग है जो हमें वहाँ तक ले जाता है,” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी बोले। “और योग कोई एक मार्ग नहीं है। इसमें कई स्कूल और दर्शन शामिल हैं। यह एक बेहद विस्तृत प्रणाली है। इसके तीन मार्गों पर तो विशेष रूप से बहुत लोग चलते हैं। ये मार्ग हैं—कर्म योग, ज्ञान योग और भक्ति योग। यद्यपि इन्हें योग के अलग-अलग मार्ग समझा जाता है पर वे एक दूसरे से बिलकुल भी अलग नहीं हैं। असल में वे एक ही मार्ग के तीन पहलू हैं। उस एक मार्ग को ‘राजयोग’ कहा जाता है। ‘राज’ का अर्थ है—राजा। इसलिए राजयोग का अर्थ हुआ, ‘योगों का राजा’। बाकी तीनों इसी में शामिल हैं।”

“हमने भक्ति के अर्थ को खोजना शुरू कर दिया है। अब जरा कर्म और ज्ञान योग पर एक संक्षिप्त नज़र डाल लें। कर्म एक व्यापक शब्द है। यदि शाब्दिक अर्थ लें तो जो कुछ भी हम करते हैं उसे हम कर्म कह सकते हैं। अपने जूते के फीते बाँधना कर्म है। सैंडविच खाना कर्म है। लेकिन ये चीज़ें

कर्म योग नहीं हैं। कर्मयोग कर्म का योग है। यह वह कर्म है जो हम योग के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए करते हैं।”

“एक पुरानी कहावत है : ‘कोई जानवर सोए हुए सिंह के मुँह में नहीं कूदता’। कुछ प्राप्त करने के लिए हमें कर्म करना पड़ता है। हमें करना ही पड़ता है। क्यों करना पड़ता है कुछ? कर्मयोग का मार्ग परम्परागत रूप से इच्छा रहित कर्म यानी ‘निष्काम कर्म’ के गुण को विकसित करने पर ही केन्द्रित रहा है। निष्काम कर्म में आपसे आशा की जाती है कि आप किसी भी परिणाम के बारे में सोचे बिना कर्म करें। परन्तु मन में फल के बारे में सोचे बिना आप कर्म करेंगे ही क्यों? कर्म तभी होता है जब आपके मन में कोई ध्येय हो। योग का ध्येय भली-भाँति परिभाषित है और इसकी प्राप्ति के लिए कर्म की आवश्यकता होती है। आपके चाहने मात्र से ही यह नहीं होने वाला। कोई भी कर्म जो हम ध्येय की प्राप्ति के लिए करते हैं कर्म योग बन जाता है। इसीलिए ध्यान कर्म योग है।”

“अब एक नज़र ज्ञान योग पर डालते हैं। ज्ञान योग ज्ञान का मार्ग है। लेकिन क्या सिर्फ़ पुस्तकें पढ़ लेना या दार्शनिक दृष्टिकोण अपना लेना पर्याप्त होगा? एक कठोर बौद्धिक प्रक्रिया पर्याप्त नहीं होती। यह तो खुद ही हमें इस लायक नहीं बना पायेगी कि हम परम् वास्तविकता का अनुभव कर सकें। केवल ध्यान से ही इसे प्राप्त किया जा सकता है। ध्यान के अभ्यास के द्वारा मन एक ऐसा माध्यम बन जाता है जिसमें से होकर केवल सत्य ही गुजर सकता है। तब हमारी सोच हमें और गुमराह नहीं करती बल्कि हमें सही निष्कर्ष पर ले आती है। इसीलिए ध्यान ज्ञानयोग भी है।”

“ध्यान के माध्यम से हम उन सभी लोगों के ज्ञान को बेहतर ढंग से समझ पाते हैं जो हमसे पहले इस मार्ग पर चल चुके हैं। जब तक हम ध्यान नहीं करते ऐसा ज्ञान हमारे सिर के ऊपर से ही निकल जाता है। यह हमारे अनुभव के साथ मेल नहीं खाता, इसलिए हम उसे किसी से जोड़ कर नहीं देख पाते। प्रायः ऐसा हो सकता है कि ध्यान करने वाले नये अभ्यासी आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ते हों लेकिन अधिकतर बातें उनकी समझ में न आती हों। कुछ समय ध्यान करने के बाद यदि वे फिर से इन्हें पढ़ें तो उन्हें ऐसे रूप मिलने लगेंगे जो उन्हें पहली बार पढ़ने पर नहीं मिले थे। कुछ पुस्तकों में, जैसे बाबूजी की पुस्तकों में इतनी गहराई है कि आप उन्हें कितनी ही बार पढ़ें आपको हमेशा उनमें कुछ नया मिल ही जायेगा। चार दशकों के बाद अब भी उनके लेख मेरे सामने नयी-नयी चीज़ें प्रकट करते हैं।”

मैंने कहा, “जिस प्रकार से आप कह रहे हैं, उससे तो ऐसा लगता है कि जैसे ध्यान दोनों ही तरीकों को आसान बनाता है। ज्ञान और कर्म दोनों को आसान बना देता है।”

“यह दोनों तरीकों का सार है,” दाजी ने कहा, “यह ध्यान ही है जिसके माध्यम से ज्ञान और कर्म फलित होता है। भक्ति भी। तो ध्यान एक कुँजी है। ये तीनों विषय यानी कर्म, भक्ति और ज्ञान सार्वभौमिक हैं। किसी भी आध्यात्मिक जागृति में इनमें से कम से कम एक या दो विषय तो होते ही हैं। हो सकता है कि उन्हें उनके संस्कृत नामों से न भी बुलाया जाये लेकिन होते तो वे हैं ही। लगभग हर धर्म में हमें ज्ञान और भक्ति का मिश्रण दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, लगभग हर धर्म में कोई शास्त्र होता है। वह ज्ञान है। धर्मों में एक भक्ति का तत्व भी होता है जो भक्ति है। लेकिन हर धर्म कोई ऐसा अभ्यास प्रदान नहीं करता जिससे कोई जिज्ञासु उन ग्रन्थों के सत्य का अनुभव स्वयं कर सके तथा अपनी पूजा की वस्तु का वास्तविक और कल्पना से रहित अनुभव भी कर सके। दूसरे शब्दों में यदि ज्ञान और भक्ति मौजूद भी हों तब भी कर्मयोग का कारगर तत्व हमेशा नहीं दिखाई देता। बेशक प्रत्येक धर्म के अपने कर्मकाण्ड हैं और अपने व्यापक अर्थ में वे कर्म ही हैं। आखिरकार वे कर्मकाण्ड साधक द्वारा देवता के करीब आने के लिए किये गये कर्म हैं। परन्तु दिव्यता के प्रति जागरूक होने के लिए चेतना को पहले एक दिव्य स्तर तक विकसित होना चाहिए। ध्यान का जो अभ्यास इसे सम्भव कर सकता है उसके गहन अभ्यास के बिना दिव्यता एक कल्पना की चीज़ ही रह जायेगी।”

“तो वह अभ्यास ही है जिसके माध्यम से हम ज्ञान प्राप्त करते हैं और यह अभ्यास ही है जिसके माध्यम से हम भक्ति को पोषित करते हैं। यदि आप परम् स्रोत के वास्तविक सम्पर्क में ही नहीं आये तो वह भक्ति कैसी? आपने कुछ अनुभव ही नहीं किया। आप दिव्य को वास्तव में जान ही नहीं पाये। अभ्यास के बिना भक्ति अपने उद्देश्य से अलग रहती है। यह बाह्य हो जाती है। जैसे ही हम भगवान के बारे में सोचते हैं हमारी कल्पनाएँ काम करना शुरू कर देती हैं। शायद हम दिव्य सिंहासन पर बैठे एक यशस्वी अस्तित्व की कल्पना करते हैं। या फिर हम शक्ति और ऊर्जा के एक निराकार स्रोत के बारे में सोचते हैं। ईश्वर है लेकिन जब तक हम भीतर नहीं जाते और उसकी उपस्थिति महसूस नहीं करते, तब तक ईश्वर एक अवधारणा ही रह जाता है —एक मानसिक जोड़-तोड़।”

“कल्पना से आप कई चीज़ें बना सकते हैं जो वास्तविक नहीं हैं। असल में आप केवल वे ही चीज़ें बना सकते हैं जिनमें वास्तविकता नहीं है। आप अनोखे भ्रम पैदा कर सकते हैं। आप भयावह भ्रमजाल बना सकते हैं। वे आपके बनाए हुए हैं इसलिए वास्तविक नहीं हैं।”

“ध्यान कुछ भी नहीं बनाता। ध्यान प्रकट करता है। क्या प्रकट करता है यह? वह जो वास्तविक है, वह जो असली है, वह जो सत्य है। झूठ बनाए

जाते हैं। असत्य बनाया जाता है। वास्तविकता को कभी नहीं बनाया जा सकता। यह जैसी है वैसी ही है।”

“ध्यान स्वयं ही भक्ति है। अपने विभिन्न रूपों में ‘भक्ति’ शब्द पूजा का पर्याय बन गया है। कुछ लोगों के लिए यह ईश्वर को कुछ अर्पण करना है। दूसरों के लिए यह भक्ति गीत हो सकता है। ये प्रेम की बाह्य अभिव्यक्तियाँ हैं। परन्तु जब ये बाह्य अभिव्यक्तियाँ आन्तरिक अहसास से रहित होती हैं तो पूजा यान्त्रिक हो जाती है। तब यह केवल एक रस्म रह जाती है—केवल रूप लेकिन सार कुछ नहीं। यह एक छिलके या निर्जीव शरीर की तरह है। और जब भीतरी अहसास, भक्ति की वह मनोदशा सचमुच विद्यमान हो तो क्या फिर किसी बाहरी दिखावे की ज़रूरत रह जायेगी?”

“यही कारण है कि ध्यान एक मौन गतिविधि है। यह पूजा तो है लेकिन एक आन्तरिक पूजा। गहरे ध्यान में पूजा एक कर्म नहीं रह जाती बल्कि अस्तित्व की एक अवस्था, हृदय का एक आन्तरिक गुण बन जाती है। यह केवल तभी सम्भव है जब पूजा की वस्तु आन्तरिक हो।”

दाजी थोड़ा रुके।

“और हाँ, इसका यह मतलब नहीं कि आप अपनी पूजा करने लग जायें!,” हँसते हुए उन्होंने कहा। “यह तो केवल एक दम्भ होगा। कुछ लोग तो इसे ईशनिन्दा भी कहेंगे। इसका मतलब तो बल्कि यह है कि आप अपने हृदय में मौजूद दिव्य उपस्थिति के साथ सदा गहराते हुए सम्पर्क में आ जाते हैं।”

“दिव्यता हर जगह है। यदि ऐसा है तो यह आपके भीतर भी है। तो फिर बाहर क्यों देखना? जब दिव्यता भीतर पायी जाती है तो हम इसे ‘स्व’ कहते हैं। हम इसे तब पाते हैं जब हम चेतना की पूर्ण गहराइयों में उतर जाते हैं। वहाँ आपको पता चलता है कि कोई ऐसी चीज़ है जिस पर चेतना टिकी हुई है। आप पाते हैं कि चेतना की भी एक नींव है। तब आप और गहराई में जाते हैं और पाते हैं कि उस नींव की भी अपनी नींव है और इस नींव के नीचे एक अनन्त नींव है। यह अनन्त नींव ही स्व है, सभी चीज़ों सजीव या कुछ और की आधारभूत वास्तविकता। फिर भी, इसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है। यह अस्तित्व और अनस्तित्व से परे है। फिर भी यह सभी अस्तित्वों का मूल है। उनका आधार है। और फिर, उससे भी परे कुछ है। लेकिन सार्वभौमिकता की नींव की अनुभूति अपने दिल में करके आप उन सबसे पार चले जाते हैं जिनकी पहचान व्यक्तिगत है, उन सबसे जो सीमित हैं।”

“हालाँकि, यह शब्द ‘स्व’ अत्यधिक भ्रामक हो सकता है। जब हम यह शब्द पढ़ते हैं या सुनते हैं तो हमारे मन में इसका अर्थ अहं की भावना या अलग व्यक्तित्व की भावना हो सकता है। फिर भी स्व की योग सम्बन्धित

अवधारणा में यह एक सार्वभौमिक चीज़ है। यह स्व सभी में निहित है, एक ऐसा स्व जो अव्यक्तिगत और अत्यन्त व्यक्तिगत दोनों है। यह प्रत्येक चीज़ का दिल और आत्मा है।”

मैंने पूछा, “अगर इस शब्द को इतनी आसानी से ग़लत समझ लिया जाता है तो इसका प्रयोग ही क्यों करें?”

“मैं अक्सर नहीं करता,” दाजी ने कहा। “इसी कारण से। साथ ही साथ यह हमें कुछ महत्वपूर्ण चीज़ भी दिखाता है। यह हमें दिखाता है कि स्वयं से बाहर उस सार्वभौमिक नींव को खोजना असम्भव है। इसे खोजने के लिए आपको अन्दर जाना ही होगा। अपने अस्तित्व की नींव पर जाकर आपको उस साझा नींव का पता चलता है, समस्त अस्तित्व का एक घटक। इस प्रकार व्यक्तिगत के द्वारा आप सार्वभौमिक की खोज करते हैं। उसके विचार से शुरू करके हम उस तक पहुँच जाते हैं।”

मैंने पूछा, “आपको कैसे पता पड़ता है कि आप का सामना स्व से हो गया है?”

“आप नहीं जान सकते,” उन्होंने उत्तर दिया, “स्वयं को खोजने का मतलब है स्वयं को पूरी तरह से भूलना। इसे पा लेने की चेतना आपमें नहीं हो सकती। यदि आपमें चेतना है तो आप असली स्व नहीं ढूँढ़ पाये हैं। तब तो यह केवल आपका अहंकार है। असली ध्यान तब शुरू होता है जब आपको पता ही नहीं चलता कि आप ध्यान कर रहे हैं। यह तब शुरू होता है जब आप अनुभव से परे चले जाते हैं।”

मैंने कहा, “लेकिन बजाय केवल इसके बारे में सोचने के या इसमें विश्वास करने के आप तो इस बारे में बहुत कुछ बता रहे हैं कि हमें दिव्यता का अनुभव कैसे करना चाहिए।”

“हाँ,” दाजी ने कहा, “लेकिन सच तो यह है कि हम दिव्य को कभी अनुभव नहीं करते बल्कि केवल इसका असर जो हम पर पड़ता है उसे अनुभव करते हैं। दिव्य स्व हमारे ऊपर कार्य नहीं करता लेकिन इसके कारण हमारा परिवर्तन हो जाता है। स्व हमें प्रेरित नहीं करता। लेकिन इसके माध्यम से हम प्रेरित हो जाते हैं। स्व हमें कुछ प्रदान नहीं करता। इसके पास देने के लिए कुछ नहीं है। लेकिन इसके कारण हम प्राप्त करते हैं। हमें इन सबसे परे जाना चाहिए। कुछ प्राप्त करने के लिए ध्यान करना शिष्टाचार के खिलाफ़ है। सबसे अच्छा रवैया तो प्रेम और कृतज्ञता वाला रवैया होता है, जो समय के साथ हमारे अन्दर के स्रोत के साथ हमारे अधिक गहन होते सम्पर्क के परिणामस्वरूप विकसित होता है। मैं फिर से कहूँगा कि यौगिक प्राणाहुति से यह बहुत जल्दी हो जाता है। परिणामस्वरूप ध्यान पूजा का असली सार बन जाता है।”

“ऐसी पूजा किसी भी दिखावे से रहित होती है। यह शब्दों, रूपों और विचारों से भी रहित होती है। सरल शब्दों में कहें तो यह उस प्रेममय सार में गायब हो जाना है। तब दो एक हो जाते हैं और पूजा का विचार भी चला जाता है। भक्ति अब अपनी उच्चतम सीमा पर होती है और यह सब ध्यान के अभ्यास से होता है।”

“बिलकुल,” दाजी ने कहा, “ध्यान के अभ्यास के कई उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जो भक्ति की ओर नहीं ले जाते। मैं उसे एक यान्त्रिक पूजा कहूँगा। यह एक तकनीकी दृष्टिकोण है जिसमें केवल अनुशासन होता है, दिल नहीं।”

“इसलिए, जैसा कि मैंने पहले कहा था, तीनों दृष्टिकोण—कर्म, भक्ति और ज्ञान, आवश्यक हैं। वे एक ही स्तूल की तीन टाँगें हैं। किसी एक को निकाल दें तो यह काम नहीं आता। तीनों को अगर एक साथ मिला दें तो इसका परिणाम उनके व्यक्तिगत प्रभाव के जोड़ से भी अधिक होगा। कितनी शानदार बात है यह। राजयोग तीनों को जोड़ता है, जिसका असर यह होता है कि हम तुरन्त ही स्व के सम्पर्क में आ जाते हैं। यह हमारे ध्यान के पहले ही सत्र में हो जाता है। गोरखनाथ का ‘अमनस्क योग’ एक बहुत पुराना लेख है जो स्व का वर्णन हमारे भीतर बैठे एक राजा के रूप में करता है।”

“इसीलिए इस मार्ग को राजयोग कहते हैं,” दाजी ने कहा।

“और यही है जिसे हार्टफुलनेस कहते हैं,” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी ने कहा, “यह राजयोग का एक सरल रूप है। सरल इस अर्थ में कि यह उन आधुनिक जिज्ञासुओं के लिए बनाया गया है जो बहुत-सी चीज़ों को छोड़ नहीं पाते और जागृत अवस्था का हर क्षण ध्यान में नहीं लगा पाते।”

मैंने पूछा, “योग के ये सभी तरीके जिनके बारे में आपने अभी बताया है, उनमें से हमारा मुख्य ध्यान किस पर होना चाहिए?”

“अभ्यास पर ध्यान दें,” दाजी ने कहा, “हार्टफुलनेस अभ्यास के तीन तत्वों पर ध्यान दें : ध्यान, सफाई और प्रार्थना। उनका अभ्यास बड़ी बारीकी से करें। अभ्यास सबसे महत्वपूर्ण चीज़ है क्योंकि अभ्यास के माध्यम से ही बाकी सब कुछ आता है। अभ्यास के बिना कोई कर्म, भक्ति या ज्ञान नहीं है। अभ्यास के बिना कोई योग नहीं है। यह अभ्यास ही है जो हमें योग में पारंगत करता है, और योग में पारंगत होने का केवल यही मतलब है कि अपने स्व का मालिक बन जाना। इसीलिए मालिक वह है जो स्वयं का मालिक बन गया हो। जैसा कि बाबूजी ने कहा था, ‘मैं शिष्य बनाने नहीं आया हूँ। मैं मालिक बनाने आया हूँ।’ इसलिए अभ्यास करें।”

“हालाँकि,” उन्होंने जोड़ा, ‘यह यौगिक प्राणाहुति ही है जो हार्टफुलनेस अभ्यास को इतना परिवर्तनकारी बनाती है। कथाओं में प्रचलित पारस के पत्थर की तरह जो सीसे को भी सोना बना देता है, प्राणाहुति भी एक पत्थर दिल को अन्ततः भगवान के एक पवित्र मन्दिर के रूप में बदल सकती है।”

यौगिक प्राणाहुति

एक नये ध्यानकर्ता के रूप में मुझे यौगिक प्राणाहुति का विचार रहस्यमय-सा लगा। आरम्भ में मेरी बुद्धि ने इस विचार को नकार दिया क्योंकि जो कुछ भी मैंने सुन रखा था या जो कुछ भी मैं सही समझता था, यह उसके दायरे से बाहर था। परन्तु दूसरी ओर प्राणाहुति का मेरा अपना अनुभव यह था कि यह सबसे अच्छी चीज़ थी जो मेरे साथ कभी हुई। इसीलिए मुझे अपने सांसारिक नज़रिए को अपने अनुभव से जोड़ने के लिए संघर्ष करना पड़ा। लेकिन किसी व्यक्ति के सांसारिक नज़रिए को बदलने में अनुभवों का भी एक रोचक तरीका है। पिछले कुछ वर्षों से प्राणाहुति के बिना ही ध्यान करने के बाद मैं स्पष्ट रूप से समझ सकता था कि ये दोनों अनुभव मूलतः एक दूसरे से मिल थे। प्राणाहुति के द्वारा ध्यान में जान-सी आ गयी। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह कि इससे बदलाव आने लगे। मैंने शीघ्र ही अपने आप में गहरे बदलाव महसूस किये जो कि वर्षों तक होते रहे। जब मैं एक हार्टफुलनेस प्रशिक्षक बन गया तो मैंने यह भी सीखा कि प्राणाहुति के साथ दूसरों को ध्यान कराने में कैसे मदद की जाती है। फिर भी प्राणाहुति रहस्यमय ही रहती है जैसा कि सभी पवित्र चीज़ों के साथ होना ही चाहिए। इसीलिए मैं यह सुनने को उत्सुक था कि दाजी इस बारे में क्या प्रकट करेंगे।

“यौगिक प्राणाहुति ही हमारी पद्धति की पहचान है,” दाजी ने कहा, “अकेले तो ध्यान की हमारी तकनीक भी किसी अन्य तकनीक की तरह ही है —न किसी से अच्छी न किसी से बुरी। लेकिन प्राणाहुति बिल्कुल अद्वितीय चीज़ है। सारा अन्तर इसी से आता है। प्राणाहुति ही हार्टफुलनेस पद्धति की कुँजी है। यही चीज़ है जो इस विधि को इतना शक्तिशाली बनाती है।”

मैंने कहा, “कई आध्यात्मिक प्रशिक्षणों में ‘प्राणाहुति’ शब्द उन साधनों के लिए प्रयुक्त होता है जिनके द्वारा शिक्षा दी जाती है। लेकिन यहाँ हार्टफुलनेस के सन्दर्भ में इसका अर्थ मिल है।”

“ईश्वरीय ज्ञान कभी सिखाया नहीं जाता,” दाजी ने कहा, “बल्कि इसे तो पाया जाता है। इसे तो एक सच्चे साधक द्वारा किसी उचित क्षण पर आत्मसात कर लिया जाता है। आध्यात्मिकता के क्षेत्र में तो शिक्षण भी एक विरोधाभास बन जाता है। जब तक आप जागृत नहीं हो जाते, किसी

भी शिक्षा से आपके कानों पर जूँ तक नहीं रेंगेगी। और जागृत हो जाने के बाद शिक्षा की ज़रूरत नहीं रह जायेगी। असली जागृति प्रेरणा भरे शब्दों को सुनने से नहीं आती और न ही पुस्तकें पढ़ने से आती है। आ ही नहीं सकती। आध्यात्मिक रूप से जागृत स्थिति का कैसा भी विवरण दूसरे व्यक्ति में वैसी ही स्थिति उत्पन्न नहीं कर सकता, वर्णन चाहे कितना भी सटीक क्यों न हो। गुरु और जिज्ञासु के दिलों के बीच अनुनाद (Resonance) होता है। जागृत अवस्था ऐसे ही संचरित की जाती है जैसे कि एक मोमबत्ती से दूसरी मोमबत्ती को लौ दी जाती है। गुरु उस अनुनाद को उद्दीप्त करते हैं और इसके द्वारा शिष्य के हृदय में आध्यात्मिक जागृति की स्थिति पैदा कर देते हैं।”

“प्राणाहुति वास्तव में है क्या?” मैंने पूछा।

“इस दुनिया में प्राणाहुति की अवधारणा से हम पहले से ही परिचित हैं,” दाजी ने कहा। “उदाहरण के लिए हम ध्वनि का संचार कर सकते हैं, हम भाषण का संचार कर सकते हैं और हम अन्य कई चीज़ों का भी संचार कर सकते हैं। यौगिक प्राणाहुति में हम आध्यात्मिकता के सार का संचार करते हैं। प्राणाहुति मूल स्रोत से निकलने वाला एक पवित्र उत्सर्जन है। इससे कम कुछ भी नहीं। हम इसे ईश्वर का सार कह सकते हैं और यह सही भी होगा।”

मैंने कहा, “तो प्राणाहुति का मूल उस व्यक्ति में नहीं है जो प्राणाहुति देता है।”

“एक पंखा जो आपकी ओर हवा फेंकता है, उस हवा को क्या वह बनाता है?,” उन्होंने उत्तर दिया, “हवा हर समय हमारे चारों ओर है लेकिन हम उस पर ध्यान नहीं देते जब तक वह चलने न लगे। उसी तरह, हम अपने जीवन में ईश्वर की निरन्तर उपस्थिति पर ध्यान नहीं देते, हालाँकि यह हमारे चारों ओर रहती है और हममें व्याप्त है। लेकिन प्राणाहुति के द्वारा वह उपस्थिति सूक्ष्म रूप में जीवन्त हो उठती है। दिव्य ऊर्जा गतिमान हो जाती है। यह हमारी ओर चलती है और फिर हमारे भीतर भी। हवा में झूलते पत्तों की तरह हमारा दिल भी उस दिव्य प्रवाह के साथ स्पन्दित होने लगता है।”

मैंने पूछा, “इसमें गुरु की क्या भूमिका होती है?”

“गुरु एक पंखे की तरह है,” दाजी ने कहा, “उसकी भूमिका उसे गति प्रदान करना है। प्राणाहुति उनमें नहीं रहती। यह उनकी नहीं है। किसी की भी नहीं है। प्राणाहुति तो प्रकृति का सार है। यह संस्कृत का शब्द है। आइए इस शब्द की जाँच करें। प्राणाहुति दो मूल शब्दों से बनती है, ‘प्राण’ और ‘आहुति’। ‘प्राण’ का अर्थ है—‘जीवन-शक्ति’, लेकिन लोग ‘प्राण’ को प्रायः ‘साँस’ समझते हैं। यह समझ तब ठीक मानी जा सकती है जब आप इसे ईश्वर की साँस के रूप में देखें।”

वे थोड़ा रुके।

“प्राणाहुति प्राण के सूक्ष्मतम सार को प्रयोग में लाती है,” उन्होंने कहा, “और आगे बढ़कर हम प्राणाहुति को सार का भी सार कह सकते हैं। इसकी सूक्ष्मता बयान नहीं की जा सकती। यह केवल दिव्यता के ही बराबर है।”

“हालाँकि अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हमारे भीतर पहले से ही यह सार मौजूद नहीं है? हमारे अन्दर पहले से ही एक ऐसी चीज़ मौजूद है, जो हमें लगातार अस्तित्व की ऊर्जा देती रहती है।”

“आत्मा,” मैंने कहा।

दाजी ने हामी भरी और कहा, “आप जानते हैं कि भारत में ग्रीष्मकाल के दौरान बहुत गर्मी पड़ती है। धरती झुलस जाती है और पेड़ों की पत्तियाँ मरने लगती हैं। असल में पूरा पेड़ ही ऐसा लगता है मानो यह मरने वाला हो। फिर भी इसकी जड़ें इसे जीवित रखने लायक पर्याप्त नमी और पोषक तत्व धरती से सोख लेती हैं। लेकिन अन्ततः जब मानसून आता है तो पेड़ सचमुच जी उठते हैं। वे ऐसे भी दिखने लगते हैं मानो नाच रहे हों। उनमें इतनी ताज़गी भर जाती है। वे इतने जीवन्त दिखते हैं।”

“जिस प्रकार एक वृक्ष अपनी जड़ों के द्वारा नमी और पोषक तत्व खींचता है, हम भी आत्मा से लगातार जीवन की खुराक खींचते रहते हैं। लेकिन जब प्राणाहुति की पहली खुराक हमें मिलती है तो हम भी मानसून की बारिश में झूमते हुए एक पेड़ की भाँति हो जाते हैं। हमारे जीवन में एक नयी ताज़गी आ जाती है—एक अकल्पनीय ताज़गी! सच कहें तो एक नया जीवन हमारे भीतर फूँक दिया जाता है।”

“अब हम “प्राणाहुति” शब्द के दूसरे संस्कृत मूल ‘आहुति’ पर आते हैं। आहुति का अर्थ है ‘भेट’। इसका अर्थ बलिदान भी लिया जा सकता है। यह याद रखते हुए कि प्राण एक आवश्यक मौलिक जीवन शक्ति है, हम यह भी समझ जाते हैं कि प्राणाहुति उसी पवित्र सार तत्व की भेट है।”

“यह भेट किसे दी जाती है? यह हमें दी जाती है। परम् स्रोत हम सब के लिए स्वयं को भेट करता है। इस बात से हमें ईसाई धर्म की याद आती है, जहाँ ईश्वर सभी की खातिर अपना बलिदान करता है और स्वयं की भेट दे देता है। इसलिए प्राणाहुति को हम एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में समझ सकते हैं जिसमें ईश्वर अपने ही सार से हमें सराबोर करता है। परिणामस्वरूप हमारा काम आसान हो जाता है। हमें जंगल जाने की ज़रूरत नहीं, जैसा कि बहुत से आध्यात्मिक जिज्ञासु युगों से करते रहे हैं। हमें खड़े पहाड़ों पर भी नहीं चढ़ना, जैसी एक कहावत भी है कि ‘अगर पहाड़ मोहम्मद के पास नहीं आता तो मोहम्मद को पहाड़ पर जाना चाहिए’। अनन्त काल से ही जिज्ञासु

पहाड़ों पर जा रहे हैं। उन्होंने वहाँ कष्ट झेले हैं। उन्होंने बलिदान दिये हैं। दिव्यता की खातिर उन्होंने बहुत दर्द सहे हैं और महान् त्याग किये हैं। लेकिन प्राणाहुति में तो ईश्वर ही बलिदान करता है। पहाड़ स्वयं ही आपके पास आ जाता है। एक असाधारण आध्यात्मिक विस्तार के लिए यह एक प्रेरक-शक्ति बन जाता है।”

“वह कैसे?” मैंने पूछा।

“जब एक उच्च शक्ति हम पर कार्य करती है, तो हमें अपनी सीमित क्षमताओं पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं होती,” दाजी ने कहा, “एक स्कूबा गोताखोर द्वारा पहने जाने वाले ऑक्सीजन टैंक के बारे में ज़रा सोचें। इससे उसे पानी के नीचे साँस लेने में मदद मिलती है जो सामान्य तौर पर वह नहीं कर सकती थी। इससे उसे सागर में और गहराई से गोता लगाने तथा लम्बी अवधि के लिए जल-मान रहने में सहायता मिलती है। इसी तरह, प्राणाहुति हमें चेतना के उन स्तरों तक पहुँचने योग्य बनाती है, जहाँ पहुँचने के लिए हमारे स्वयं के प्रयासों द्वारा सामान्यतया कई साल या दशक लग सकते हैं। कुछ रास्ते ऐसे भी हैं जहाँ तक पहुँचना लगभग असम्भव है। प्राणाहुति उन सभी रास्तों से होकर हमारा आगे बढ़ना जारी रखती है।”

“आध्यात्मिक यात्रा की अवस्थाएँ जिज्ञासु के लिए बेहद आकर्षक हो सकती हैं। क्योंकि वे अत्यन्त उल्लास, शान्ति और आनन्द से परिपूर्ण होती हैं। असल में वे इतनी मोहक होती हैं कि हम वहाँ ठहर जाने और आध्यात्मिक यात्रा का पूर्णतः त्याग करने के लिए प्रलोभित हो जाते हैं। लेकिन यह उसी विद्यालय की उसी कक्षा में हर साल बने रहने जैसा होगा। कोई विकास नहीं होगा। दुर्भाग्यवश कई जिज्ञासु इसी तरह अपना मार्ग खो देते हैं। हालाँकि प्राणाहुति ऐसा कभी होने नहीं देती।”

“कुछ स्थितियाँ इतनी अद्भुत होती हैं कि हमें लगता है कि अब और कुछ हासिल करने के लिए नहीं रह गया है। मैंने यह कर दिखाया, ऐसा हम सोचने लग जाते हैं। लेकिन कुछ और तो हमेशा ही रहता है। आखिर यह एक अनन्त यात्रा है। एक अनन्त यात्रा में मार्ग ही लक्ष्य बन जाता है। यह एक कदम के आगे दूसरा कदम रखना है और विकास करते जाना है। विकास की शक्ति हमें प्राणाहुति से मिलती है। सही वक्त आने पर यह सचमुच हमें एक आध्यात्मिक स्थिति से उठा कर दूसरी आध्यात्मिक स्थिति पर रख देती है। उस मायने में यह हमें यात्रा के किसी भी स्तर पर ठहर जाने से बचाकर हमारी सुरक्षा का भी ख़याल रखती है। अन्यथा कुछ स्थानों पर तो हम बहुत लम्बे समय तक टिके रह सकते हैं। असल में हम वहाँ हमेशा के लिए भी रह सकते हैं।”

“हमेशा के लिए?” मैंने पूछा।

“देखो, हर अवस्था अनन्त हो सकती है,” दाजी ने कहा। “उदाहरण के लिए गणित में रेखा होती है जिसका न तो कोई आरम्भ होता है और न ही कोई अन्त। यह दोनों दिशाओं में अनन्त तक फैली होती है। लेकिन क्या यह सचमुच अनन्त है? यह केवल एक रेखा है। यह एकरेखीय है। इसी प्रकार, एकरेखीय तरीके से अनन्त तक विस्तार सम्भव है। ऐसा ही होता है जब हम आगे बढ़ा बन्द कर देते हैं या जब हम उससे सन्तुष्ट हो जाते हैं जो हमें मिल चुका है।”

“इस ठहराव का हम पर क्या असर पड़ेगा?” मैंने पूछा।

“आप असन्तुलित हो जायेंगे,” दाजी ने कहा, “जिस प्रकार हर देश के अपने रीति-रिवाज होते हैं, आध्यात्मिक यात्रा में भी प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषताएँ होती हैं। इसकी अपनी ही खासियत होती है। जितना अधिक हम किसी बिन्दु पर रहेंगे, उतना ही अधिक हम उस बिन्दु की विशेषताओं को शोषित करेंगे। किसी अवस्था पर कुछ समय के लिए रहना और उस स्थिति का सार स्वयं में शोषित करना अच्छा है लेकिन एक सीमा तक ही। यदि हम वहाँ बहुत लम्बे समय तक टिके रहते हैं तो हमारा विकास एकतरफा हो जायेगा। यह तो ऐसा होगा जैसे हम विद्यालय तो जाते हों लेकिन केवल एक ही विषय सीखने। यदि आप खगोल भौतिकी जानते हों लेकिन पढ़ा नहीं जानते तो यह किस काम की? तो जब हम कहीं पर ठहर जाते हैं तो उस समय भी हमारा विकास हो रहा होता है। लेकिन उस दशा में हम केवल एक ही दिशा में आगे बढ़ते हैं। यह सम्पूर्ण विकास नहीं है। इसमें फैलाव नहीं है, केवल छोर है।”

“तो प्राणाहुति ऐसा होने से रोकती है,” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी बोले, “सभी परिस्थितियों में यह हमें गतिशील बनाये रखती है। यह हमारी यात्रा को तेज़ भी करती है। प्राणाहुति के बिना, एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक आगे बढ़ने के लिए आपको बहुत लम्बे समय तक बहुत ही कड़ी मेहनत करनी पड़ेगी। यही कारण है कि परम्परागत रूप से आध्यात्मिक यात्रा को इतना लम्बा और कठिन समझा जाता है। भारत की पौराणिक कथाओं में ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें लोगों को हज़ारों साल तक ध्यान करते दिखाया गया है! उन कहानियों पर यदि आपको विश्वास हो तो क्या आप यात्रा शुरू करना चाहेंगे? फिर भी, कई लोग करते हैं। आध्यात्मिक इतिहास ऐसे सच्चे साधकों की कहानियों से भरा पड़ा है जो आध्यात्मिक जागृति के लिए सब कुछ त्याग कर जंगलों, गुफाओं और पहाड़ की चोटियों पर चले जाते थे। भारत में यह व्यापक स्वीकृति है कि उच्चतम अवस्थाओं को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को कठिनाइयाँ झेलनी होंगी।”

“मैंने एक बार ऐसा ही सोचा था। किशोरावस्था में मैं रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द से प्रेरित था। उनींसवीं सदी के अन्त में स्वामी विवेकानन्द सम्पूर्ण भारतवर्ष में अधिकतर पैदल ही घूमे थे। वे जहाँ भी जाते, अपने प्रेरणादायक सन्देश फैलाते। मई, 1976 की बात है जब मैं उनींस वर्ष का था। मैंने विवेकानन्द के नक्शेकदम पर चलने का फैसला किया और घर छोड़कर संन्यासी हो गया। लेकिन विवेकानन्द की तरह मेरे पास कोई सन्देश नहीं था। मैं अभी भी आध्यात्मिक जागृति की खोज में था। मैं पूरी तरह से एक जिज्ञासु था।”

“गुजरात में नर्मदा नदी के तट पर, एक पुराने मन्दिर के बरामदे में मुझे संन्यासियों का एक समूह मिला। उनकी जीवन शैली के बारे में मुझे कुछ पता नहीं था। मैंने एक बूढ़े आदमी को, जो उनका मुखिया प्रतीत होता था, उलझे हुए बालों में देखा। उसके तपस्वी जीवन ने उसे दुबला और कमजोर बना दिया था। आखिरकार उसने मुझे बुलाया और पूछा कि मैं वहाँ पर क्या कर रहा हूँ? मैंने उससे कहा कि जो कुछ भी इस दुनिया में है मैं उसके भी पार देखना चाहता हूँ।”

उसने कहा, “आप ईश्वर को पायेंगे लेकिन इस तरह नहीं!”

“यह बूढ़ा संन्यासी सरल और गम्भीर था। असल में उसने अपने दिल की सारी बातें मुझसे कह डालीं। जीवन में इस मार्ग को अपनाने के कारण वह पश्चाताप से भरा हुआ था। उसने मुझे बताया कि उसने जवानी में कैसे अपना घर छोड़ दिया था। उसने किसी को बताया भी नहीं था। कोई नहीं जानता था कि उसके साथ क्या हुआ। वह बस गायब हो गया था।”

‘मैंने अपने परिवार को फिर कभी नहीं देखा’, उसने कहा, ‘मेरी पत्नी... मुझे नहीं पता कि उसका क्या हुआ। मुझे नहीं पता कि मेरे बच्चों का क्या हुआ।’

“इन सब बातों से वह त्रस्त था। अपने मार्ग से भी उसका मोहमंग हो गया था। कई वर्षों तक भटकने और भीख माँगने के बाद भी उसका आध्यात्मिक लक्ष्य उससे दूर था और वह जानता था कि वह ग़लत मार्ग पर चला गया है। खोज तो उसकी सच्ची थी पर दिशा ग़लत थी। और वह समझ भी गया था कि वह ग़लत मार्ग पर चला गया है। वास्तव में, उसने दशकों पहले घर वापस लौटने का मन बना भी लिया था लेकिन अपने परिवार का वह सामना नहीं कर सकता था।”

“मैं अब भी उससे विदा होने वाले क्षणों के शब्दों को सुन सकता हूँ : “आप ईश्वर को पायेंगे लेकिन इस तरह नहीं!”

मैंने पूछा, “कितने समय तक आप इस तरह रहे।”

“लगभग छः घण्टे।”

यह सुनकर मेरी हँसी छूट गयी, मैंने यह सोचा था कि दाजी ने प्रामीण भारत में इधर-उधर भटकते हुए कुछ हफ्ते या महीने का समय बिताया होगा।

“पहली बार प्राणाहुति का अनुभव आपने कब किया?” मैंने पूछा।

“12 अगस्त, 1976 को,” दाजी ने कहा, “उस समय मैं अपने फार्मेसी कॉलेज के छात्रावास में रह रहा था। कभी-कभी, मैं ध्यान करने की कोशिश करता था, लेकिन मुझे पता ही नहीं था कि इसे कैसे करना है। मैं अपने बिस्तर पर बैठकर गहन विचारों को सोचने की कोशिश करता था। मेरे साथी विद्यार्थियों में से एक ने मुझे काफी समय से यह करते हुए देखकर कहा, ‘अरे कमलेश, क्यों न मैं तुम्हें किसी ऐसे शख्स के पास ले जाऊँ जो तुम्हें सही ढंग से ध्यान करना सिखा सके।’ असल में उसने यह बहुत ही भद्दे तरीके से कहा था। ‘आई नो अ चिक डैट कैन पुट यू इन अ ट्रांस’, उसने कहा। जब वह मुझे उससे मिलाने के लिए ले गया तो वो ‘लड़की’ एक ‘बुजुर्ग महिला’ निकलीं। और ‘ट्रांस’? यह तो समाधि ही थी। पतंजलि के योग सूत्र का आठवाँ चरण। प्रायः लोग समाधि को एक ऐसी अत्यन्त उच्च उपलब्धि समझते हैं जहाँ पहुँचने में कई साल लग जाते हैं। लेकिन प्राणाहुति से यह तुरन्त मिल गयी।”

“मुझे याद है जब हम उनके घर पहुँचे थे तो कितनी गर्मजोशी से उस महिला ने मेरा स्वागत किया था। जब उन्होंने पूछा कि मैं क्यों आया हूँ तो मैंने संन्यासियों के साथ हुआ अपना पिछला अनुभव उन्हें बताया। उन्होंने कहा, “यह सच है कि भगवान जंगलों और पहाड़ों में हैं जहाँ वे भिक्षु घूमते हैं। ईश्वर सर्वत्र है। लेकिन अगर ईश्वर हर जगह है तो वह आपके भीतर भी होगा। तो फिर उसे किसी अन्य जगह क्यों ढूँढ़ा जाये?”

“उनके इस कथन से मैं चकित रह गया था। उन्होंने मुझे अपने साथ ध्यान करने के लिए कहा और इस ध्यान में पहली बार मुझे प्राणाहुति मिली। इस अनुभव ने तो मुझे कहीं का नहीं छोड़ा! इससे पहले कभी भी मैंने ऐसा अनुभव नहीं किया था। मैं बहुत प्रभावित हो गया था। उन्होंने मुझे एक बार फिर प्रभावित किया। जब ध्यान समाप्त हुआ तो उनकी आँखों में आँसू थे। वे बहुत आभारी थीं कि मैं उनसे मिलने आया। कल्पना कीजिए, एक प्रशिक्षक का जिज्ञासु के प्रति आभारी होना! मुझे अहसास हुआ कि ऐसी विनम्रता तो पहले मैंने कभी देखी ही नहीं थी। यही विचार मेरे अन्दर तब भी आया था जब मैं पहली बार बाबूजी से मिला, जो उनके भी गुरु थे।”

“अब मेरे जैसा नौसिखिया पहले ही ध्यान में इस तरह का अनुभव कैसे कर सकता था? यह केवल प्राणाहुति के कारण ही था। प्राणाहुति के बिना

तो हम अपने दैनिक जीवन की सांसारिक चेतना पर काबू पाने के लिए भी संघर्ष करते रहते हैं। मैं ऐसे कई अनुभवी ध्यान करने वालों से भी मिल चुका हूँ जिन्हें वर्षों के अभ्यास के बाद भी ध्यान करने में परेशानी होती है। उनके लिए मेरी यही इच्छा है कि वे अपने जीवन में कम से कम एक बार प्राणाहुति का अनुभव ज़रूर करें। इससे हमें सांसारिक चेतना से परे जाने में सहायता मिलती है। हमारी चेतना का स्तर उठ जाता है। वह दिव्य हो जाती है।”

तब दाजी हँसे और बोले, “बेशक, अब आपको अपनी दिव्य चेतना को सँभालना सीखना होगा। यह अलग कहानी है।”

फिर वे थोड़ा रुके।

“हम भी प्राणाहुति का उपयोग जिज्ञासु में उत्कृष्ट गुण पैदा करने के लिए करते हैं। यहाँ मुझे पतंजलि के योग सूत्र की फिर से याद आ रही है। उनके आठ चरणों में से दूसरे को ‘नियम’ कहा जाता है। लालाजी (हार्टफुलनेस परम्परा के प्रथम गुरु) की ‘नियम’ में खास दिलचस्पी थी। उन्होंने इसे ‘उत्कृष्ट गुणों का समावेश’ के रूप में परिभाषित किया है। ठीक यही है जो हम प्राणाहुति के दौरान करते हैं।”

“और जब हम ‘योग सूत्र’ के बारे में बात कर रहे हैं तो इस बात का भी उल्लेख किया जाना चाहिए कि प्राणाहुति इसके चौथे चरण को भी पूरा कराने में हमारी मदद करती है।”

“प्राणायाम,” मैंने कहा।

“अधिकतर लोग सोचते हैं कि प्राणायाम में केवल साँस के व्यायाम ही होते हैं,” दाजी ने कहा। “इसीलिए ‘प्राण’ शब्द को आम तौर पर साँस के साथ जोड़ा जाता है। लेकिन प्राणायाम का अर्थ गहरा है। यह शब्द दो धातुओं, ‘प्राण’ और ‘आयाम’ से मिलकर बना है। प्राण शब्द के परम्परागत अर्थ ‘प्राण-शक्ति’ पर हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं। आयाम का अर्थ है, ‘फैलता हुआ’।”

मैंने कहा, “तो प्राणायाम का अर्थ हुआ ‘जीवन शक्ति का विस्तार करना।’”

“ठीक है,” दाजी ने कहा। “दरअसल इसका साँस लेने के साथ स्वयं कुछ लेना-देना नहीं है। जब भी हम प्राणाहुति प्राप्त करते हैं तो हम अपने हृदय में सर्वोच्च शक्ति प्राप्त करते हैं। वहाँ से यह हमारी पूरी प्रणाली में फैल जाती है। ‘फैलती हुई जीवन-शक्ति’। तो इस तरह से यौगिक प्राणाहुति प्राणायाम के उद्देश्य को पूरा करती है।”

“और यही कारण है कि साँस के व्यायाम हार्टफुलनेस अभ्यास का हिस्सा नहीं है,” मैंने कहा।

“हाँ, जब प्राणाहुति तक हमारी पहुँच है तो प्राणायाम से हमारा क्या लेना-देना,” दाजी ने कहा, “लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि प्राणाहुति और प्राणायाम समतुल्य हैं।”

मैंने कहा, “मैंने पढ़ा है कि रामकृष्ण ने अपनी आध्यात्मिक सम्पदा स्वामी विवेकानन्द को संचारित कर दी थी।”

“हाँ!” दाजी बोले, “यह सच है। स्वामी विवेकानन्द भी प्राणाहुति में सक्षम थे लेकिन इसके बारे में उन्होंने कभी बोला नहीं। ऐसे अन्य उदाहरण भी हैं। जैसे सूफीवाद के कुछ मतों में प्राणाहुति मौजूद है। वहाँ इसे **तवज्जोह** कहा जाता है। इसका उल्लेख तिब्बती बौद्ध धर्म में भी है और कुछ योग ग्रन्थों में भी, जैसे **योग वशिष्ठ**। जिस प्रकार ईश्वर का सम्बन्ध किसी विशेष धर्म से नहीं है प्राणाहुति भी किसी मार्ग विशेष से सम्बन्धित नहीं है। यदि कोई व्यक्ति पूरी तरह से स्रोत में विलीन है तो वह उसके दिव्य सार को प्रहण कर दूसरों में वितरित कर सकता है।”

“लेकिन ऐसा व्यक्ति बहुत ही दुर्लभ है। मेरे गुरु जैसे महान व्यक्तित्व शायद ही कभी पूरे इतिहास में मौजूद रहे हों। लेकिन यदि कोई गुरु मूल स्रोत में पूरी तरह से लय नहीं है तब भी वह प्राणाहुति में सक्षम हो सकता है। लेकिन उस स्थिति में वह क्या संचारित करता है? केवल अपने ही अस्तित्व की सीमित अवस्था। ऐसा व्यक्ति स्वयं से उच्चतर किसी भी स्रोत से जुड़ा नहीं होता। और यदि जुड़ा भी हो तब भी उसकी प्राणाहुति सीमित होगी, क्योंकि उसने स्वयं को ईश्वर में लय नहीं किया है।”

“और यह सीमा प्राणाहुति की प्रभावोत्पादकता में रुकावट डालेगी,” मैंने कहा।

“बिलकुल,” दाजी ने कहा, “समाधि के गहनतम स्तरों पर, हमारी स्थिति उस मूल अवस्था से मेल खाती है जो कि हमारे अस्तित्व में आने के पूर्व थी। उस समय कोई हरकत नहीं थी, केवल स्थिरता थी। लेकिन उस स्थिरता में असीम क्षमता थी। असीम ऊर्जा थी। जब उस ऊर्जा को गति प्रदान कर दी जाती है तो हम इसे मूल शक्ति या आदि शक्ति कहते हैं। यौगिक प्राणाहुति वही मूल शक्ति या **आदि शक्ति** है। केवल मूल शक्ति ही हमें मूल स्थिति में ला सकती है।”

“असल में ‘आदि शक्ति’ से भी बेहतर एक शब्द ‘शक्तिहीन शक्ति’ होगा। प्राणाहुति का प्रभाव तो होता है पर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। बल की प्रायः प्रतिक्रिया होती है, प्रभाव नहीं होता। जब आप किसी को डाँटते हैं तो वे प्रतिक्रिया करते हैं। लेकिन क्या उसका कोई प्रभाव होता है? क्या वह तीखी डाँट-फटकार उन्हें बदल देती है? बल की सदैव प्रतिक्रिया होती है। केवल प्रेम ही है जो प्रतिक्रिया के बिना प्रभाव पैदा कर सकता है। प्राणाहुति

के कारण, इस प्रेमपूर्ण, शक्तिहीन शक्ति के कारण हम स्रोत के साथ अपने ऐक्य की मूल अवस्था फिर से हासिल कर पाते हैं और यही योग की असल परिभाषा भी है।”

“इसलिए, अन्तिम अवस्था तक पहुँचने के लिए हमें मिलने वाली प्राणाहुति भी उस अन्तिम स्तर से आनी चाहिए?” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी ने कहा, “और केवल वही व्यक्ति, जिसने उस अन्तिम अवस्था के जैसा होने तक विकास कर लिया हो, यौगिक प्राणाहुति के रूप में केन्द्र को सक्रिय करने में सक्षम होगा। यहाँ लालाजी एक नयी चीज़ लेकर आये। उन्होंने एक ऐसी विधि की खोज की जिसके द्वारा एक व्यक्ति जो पूरी तरह से स्रोत में विलीन हो गया हो, दूसरों को तैयार कर सकता है ताकि वे उनकी प्राणाहुति के लिए साधन या माध्यम बन सकें। यही वह खोज है जिसके कारण आज हमारे पास दुनिया भर में हजारों हार्टफुलनेस स्वयंसेवक प्रशिक्षक उपलब्ध हैं और जिनमें से हर कोई अपने गुरु की ओर से प्राणाहुति प्रदान करता है।”

“तो गुरु की प्राणाहुति संचारित करने के लिए हार्टफुलनेस प्रशिक्षक एक माध्यम है,” मैंने कहा।

“हाँ!” दाजी बोले, “गुरु उन्हें तैयार करता है और उनके माध्यम से कार्य करता है। ध्यान करने वाला एक नौसिखिया भी प्रशिक्षक बन सकता है। उसकी प्राणाहुति भी उस व्यक्ति के आध्यात्मिक स्तर के बराबर होती है जिसने उसे तैयार किया और उसे प्राणाहुति देने के काबिल बनाया।”

“मेरे विचार में, आध्यात्मिकता के इतिहास में यह एक उल्लेखनीय कदम है, क्योंकि ध्यान की मात्र शुरुआत करने वाला एक व्यक्ति अब आध्यात्मिक रूप से विकसित व्यक्ति की तरह ही आध्यात्मिक कार्य कर सकता है। और तो और, गुरु भी इस प्रक्रिया में एक माध्यम है क्योंकि यह प्रक्रिया तो वास्तव में प्रकृति की है। गुरु भी एक मोहरा है। प्राणाहुति मानवता के लिए प्रकृति के विकास कार्य का एक पहलू है।”

मैंने पूछा, “अगर यह बात है तो क्या हमें ध्यान किये बिना ही प्राणाहुति स्वतः प्राप्त नहीं होनी चाहिए?”

“एक किसान को यदि वर्षा का कोई लाभ उठाना है तो उसे अपने खेतों को तैयार करना चाहिए,” दाजी ने उत्तर दिया, “प्रकृति तो जैसी है, वैसी ही है, इसलिए हम स्वयं को इसके अनुकूल बनाते हैं। इसीलिए हम अभ्यास करते हैं।”

मैंने पूछा, “हमारे दिलों में दिव्य-प्रेरणा किस माध्यम से संचारित की जाती है?”

“क्या मतलब है आपका?” दाजी ने पूछा।

मैंने कहा, “जैसे ध्वनि है। इसे एक माध्यम की आवश्यकता होती है। जैसे हवा या पानी जो कम्पन कर सकें। तो क्या प्राणाहुति को हम तक पहुँचने के लिए किसी माध्यम की आवश्यकता होती है?”

“योग-वशिष्ठ में यह कहा गया है कि दृष्टि के माध्यम से, शब्द के माध्यम से, स्पर्श के माध्यम से जो दिव्यता को शिष्य में प्रविष्ट कर सकता हो और उसे जागृत कर सकता हो वही वास्तव में असली गुरु है,” दाजी ने कहा, “कई यौगिक कथाओं में हम ऐसी परिस्थितियों के बारे में सुनते हैं जिनमें गुरु शिष्य पर एक दृष्टि डाल कर उसे जागृत कर देता है। सूफी परम्परा में यह सामान्य है कि एक शेख किसी जिज्ञासु के हृदय को आध्यात्मिक ऊर्जा से भरने के लिए उसकी छाती को हल्का-सा स्पर्श करता है। लेकिन हमारी पद्धति में इन विधियों में से किसी का इस्तेमाल नहीं होता। हम शारीरिक स्पर्श का इस्तेमाल नहीं करते। यहाँ ऐसा गुरु या प्रशिक्षक भी नहीं होता जो हमारी ओर देखे या हमसे बात करे। प्राणाहुति का प्रवाह तो नहीं दिखाई देता पर असर ज़रूर महसूस होता है। इसका माध्यम ‘विचार’ है। प्रशिक्षक केवल प्राणाहुति के बारे में सोचता है और यह प्रवाहित होने लगती है। लेकिन कई बार यह अपने आप, प्रशिक्षक के सोचे बिना भी बहती है। तब इसका माध्यम क्या होगा? खैर, किसी वस्तु को कहीं पहुँचने के लिए माध्यम की आवश्यकता तभी होती है जब उसे वहाँ चल कर जाना पड़े। लेकिन प्राणाहुति अपने लक्ष्य पर तत्क्षण पहुँचती है। यहाँ तक कि प्रकाश भी तुरन्त नहीं पहुँच सकता। अगर प्राणाहुति कोई भी दूरी शून्य समय में तय कर सकती है तो इसका वेग अनन्त होगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह सीधे अनन्त स्रोत से आती है। अनन्त जो सभी जगहों पर एक साथ होता है किसी एक विशेष जगह पर नहीं।”



“जिज्ञासु के हार्टफुलनेस अभ्यास की शुरुआत एक हार्टफुलनेस प्रशिक्षक के साथ ध्यान करने से होती है। हार्टफुलनेस प्रशिक्षक जिसे प्रीसेप्टर भी कहा जाता है, उनके लिए प्राणाहुति को सक्रिय करता है। ध्यान के इन सत्रों को ‘सिटिंग’ कहा जाता है। सिटिंग को आमने-सामने बैठ कर लिया जा सकता है। ये दूर बैठ कर भी ली जा सकती है जिसमें प्रशिक्षक और जिज्ञासु अलग-अलग स्थानों पर एक ही समय ध्यान करते हैं।”

“प्रारम्भिक सिटिंग के बाद प्रशिक्षक की भूमिका समाप्त नहीं होती। वे तो आगे होने वाली सिटिंग के लिए भी उपलब्ध रहते हैं। आदर्श रूप में साधक एक प्रशिक्षक से प्रतिमाह कुछ सिटिंग लेते हैं। प्रशिक्षकों से सिटिंग लेते रहने का मुख्य उद्देश्य हमें प्राणाहुति प्राप्त करने का अवसर प्रदान करना है। यह हमारे दैनिक व्यक्तिगत अभ्यास का पूरक है। हमारा दैनिक अभ्यास हमें सिटिंग के दौरान प्राप्त होने वाली प्राणाहुति को पचाने और अवशोषित करने में भी सहायक होता है।”

“प्रशिक्षकों का चयन उनकी प्रगति के स्तर को देख कर नहीं किया जाता। सेवा करने की उनकी इच्छा और हार्टफुलनेस अभ्यास के बारे में उनकी जानकारी के आधार पर उन्हें चुना जाता है। ज़रूरी नहीं कि वे उन जिज्ञासुओं की तुलना में आध्यात्मिक दृष्टि से अधिक उन्नत हों। वे तो एक विशेष प्रकार की सेवा करने वाले स्वयंसेवक हैं। किसी भी जिज्ञासु की तरह प्रशिक्षकों को भी ध्यान का दैनिक अभ्यास करना चाहिए और दूसरे प्रशिक्षकों से नियमित सिटिंग लेनी चाहिए।”



“मैं तो कहूँगा कि प्राणाहुति की क्षमता से सम्पन्न इतने सारे प्रशिक्षकों का होना आध्यात्मिकता के इतिहास में अभूतपूर्व है,” दाजी ने कहा, “अतीत में प्राणाहुति को गुप्त रखा जाता था। यह कला कुछ लोगों तक ही सीमित थी। अब यह खुल कर उपलब्ध है। प्राचीन काल में इसके गोपनीय रहने का कारण यह नहीं था कि जिन लोगों के पास प्राणाहुति की क्षमता थी, वे स्वार्थी थे। बल्कि यों कह सकते हैं कि आज की विचारधारा अलग है। मानवता के विकास का स्तर अब अलग है। समय की माँग अब यह है कि प्राणाहुति चारों ओर व्याप्त हो। यहीं पर हार्टफुलनेस, इस ज़रूरत को पूरा करने की अपनी भूमिका में सही बैठता है। सभी की सेवा करना इसके अस्तित्व का मकसद है।”

“आध्यात्मिक सेवा निःस्वार्थ होनी चाहिए। प्राणाहुति की कोई कीमत ली जाये, ऐसा हम सोच भी नहीं सकते। यह तो उस पर दाग लगाना होगा। बाबूजी का कहना था कि जो भी उन्हें मिला वह मुफ्त में मिला इसलिए जो कुछ भी उनके पास था उसे उन्होंने खुल कर बाँटा। ईश्वर बिक्री के लिए नहीं हैं। उसकी कोई कीमत नहीं है। अगर होती और आप वह दे सकते तो फिर आपको ईश्वर की ज़रूरत ही कहाँ रह जाती! यदि आपसे कभी कोई

आध्यात्मिक सेवा के बदले कुछ देने के लिए कहे तो आप उससे यही प्रश्न करें।”

“मेरा सपना है कि सभी आध्यात्मिक धाराएँ एक हो जायें और इस प्राणाहुति का लाभ उठायें। यह मैं हमेशा कहता हूँ कि आपको अपनी धार्मिक या आध्यात्मिक परम्परा को छोड़ने की कोई ज़रूरत नहीं है। प्राणाहुति तो समस्त मानवता के लिए है। किसी भी धर्म या संस्कृति का होने के बावजूद भी आप प्राणाहुति के साथ ध्यान कर सकते हैं। इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि आप ईसाई हैं या मुस्लिम, यहूदी हैं या बौद्ध। प्राणाहुति तो केवल आपकी आस्था को बढ़ायेगी। आस्था हमारे अनुभवों का परिणाम है और उस अनुभव को देने वाली यह प्राणाहुति है।”

“प्राणाहुति के बारे में हम चाहे कितनी भी बड़ी-बड़ी बातें कर लें परन्तु इसके प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अनुभव से ही आप वास्तव में इसकी सराहना कर पायेंगे। शब्द इसके सार तक कभी नहीं पहुँच सकते। बौद्धिक रूप से प्राणाहुति को समझने का प्रयास, बौद्धिक रूप से आडू के स्वाद को समझने जैसा होगा। क्या आडू खाने के अनुभव को आप उसे बता सकते हैं जिसने कभी आडू ही न खाया हो? आप इसकी आकृति, रंग, स्पर्श और खुशबू का वर्णन कर सकते हैं, पर जब तक आप इसे खा नहीं लेंगे, इसके बारे में आप कुछ नहीं जान पायेंगे।”

“इसलिए मैं आपको एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए इस प्राणाहुति की जाँच स्वयं करने की सलाह दूँगा। इस पर एक प्रयोग करें।”

“उदाहरण के लिए औषधि-विज्ञान शोध के प्रयोगों में स्वयंसेवकों को दो समूहों में बाँट दिया जाता है। शोधकर्ता एक समूह को असली दवा देते हैं, जबकि दूसरे समूह को जो नियन्त्रक समूह कहलाता है असली दवा जैसी कोई हानिरहित चीज़ ‘प्लेसिबो’ देते हैं। इस प्रक्रिया से शोधकर्ताओं को नकली दवा के मुकाबले नयी दवा की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने में सहायता मिलती है।”

“हमारे प्रयोग में, प्राणाहुति के बिना ध्यान ‘प्लेसिबो’ या नियन्त्रक है। प्राणाहुति के बिना ध्यान करने से हम, केवल अकेले ध्यान ही के प्रभाव का अनुभव करते हैं। इस प्रयोग में अगला चरण एक हार्टफुलनेस प्रशिक्षक से सम्पर्क करके, यौगिक प्राणाहुति प्राप्त करते हुए ध्यान करना है। पहले प्राणाहुति के बिना और फिर प्राणाहुति के साथ ध्यान करने के बाद हम दोनों अनुभवों की तुलना कर पाते हैं।”

“मैं नहीं चाहता कि जो कुछ मैंने प्राणाहुति के बारे में कहा है उसे लोग यूँ ही मान लें। इसे स्वयं आजमाएँ और अपने स्वयं के निष्कर्ष पर पहुँचें।”

भाग दो

हार्टफुलनेस का अभ्यास



3.

ध्यान



हार्टफुलनेस में हम रोज एक निर्धारित समय और एक निर्धारित स्थान पर आराम से बैठते हैं और हृदय में दिव्य प्रकाश की उपस्थिति पर ध्यान करते हैं। मेरे लिए तो हार्टफुलनेस स्पष्टता, हल्केपन, प्रेरणा और महसूस होने वाले भीतरी आनन्द का एक दैनिक स्रोत है। हालाँकि 15 वर्षों से मैंने इसी तरह लगभग रोज ही ध्यान किया है लेकिन दाजी के साथ मेरी बातचीत ने मेरी समझ में नये आयाम जोड़ कर मेरे अभ्यास को भारी उन्नति प्रदान की।

कब और कहाँ ध्यान करें

पहली बार जब मैंने हार्टफुलनेस शुरू किया था तो उस समय मैं कभी भी और कहीं भी ध्यान कर लेता था। ध्यान के समय और स्थान को मैंने कोई महत्व नहीं दिया था। बाद में जब मेरा जीवन और व्यस्त हो गया तो मैंने अपनी दिनचर्या में ध्यान का समय निर्धारित करना शुरू किया। किसी भी समय पर ध्यान करने और एक ही समय पर ध्यान करने में स्पष्ट अन्तर था। उसके कुछ ही समय बाद मुझे अपना ध्यान तड़के सुबह करना पड़ा। तब जाकर ध्यान के मेरे अभ्यास ने सचमुच उड़ान भरी!

वर्षों बाद अब मेरी आशा जगी कि इन अनुभवों के पीछे जो कारण हैं, उनको दाजी स्पष्ट करेंगे।

मैंने पूछा, “ध्यान का सर्वोत्तम समय क्या है?”

“अभी,” उन्होंने कहा।

“ठीक है पर क्या कोई समय किसी अन्य समय से बेहतर भी होता है?”
मैंने पूछा।

उनका जवाब था, “क्या ध्यान के लिए कोई खराब समय भी होता है? आप जानते हैं कि इस मामले में मैं कोई वक्तव्य देने से बचता हूँ। इस विषय पर मैं कोई कटृता खड़ी नहीं करना चाहता। ऐसा करने पर लोग उस आनन्द से वंचित रह जायेंगे जो सच्चाई को खुद मालूम करने से मिलता है।”

“मैं यह समझता हूँ,” मैंने कहा, “लेकिन मेरा सोचना है कि कुछ सर्वोत्तम अभ्यासों की जानकारी पाकर हम उनका लाभ उठा सकते हैं।”

“ठीक है बॉस,” उन्होंने हँसते हुए कहा। “लेकिन ध्यान के समय के बारे में तो हमारे बुजुर्ग काफी ज्ञान छोड़ गये हैं। पर क्योंकि मैं एक व्यावहारिक आदमी हूँ अतः मैं कहूँगा कि आपको ध्यान तब करना चाहिए जब आपके लिए व्यवधान की सम्भावना कम से कम हो। जरा समझें कि इस व्यस्त दुनिया में आदर्श समय पर ध्यान करना हमेशा सम्भव नहीं है। बहुत से घरेलू कार्य होते हैं, जैसे बच्चे पालना, काम पर जाना इत्यादि। बहुत सारी माँगें होती हैं। अतः हमें अपने समय का चुनाव सोच-समझ कर करना होगा। एक रास्ता तो यह है कि सुबह ही जल्दी ध्यान कर लिया जाये जब आपके पास ऐसा कोई काम भी नहीं होता कि उस पर आप अपना समय और ध्यान लगायें। लेकिन यदि आपको इसमें रुचि है तो चाहे जो हो जाये, आप इसे करके ही रहेंगे।”

एक गम्भीर ध्यानकर्ता यह कभी नहीं कहेगा, “ओह, आज मेरे लिए ध्यान करना सुविधाजनक नहीं है।” मान लीजिए आप अपने मित्र से कहते हैं, “मैं तुमसे तभी मिलूँगा जब मुझे सुविधाजनक लगेगा।” इसका अर्थ यह हुआ कि आपके लिए आपकी सुविधा आपकी दोस्ती से ज्यादा महत्वपूर्ण है। ध्यान एक दूसरी तरह का मिलन है। यह हमारे ‘स्व’ से एक पावन मिलन है। ‘स्व’ जो हमारे भीतर स्थित हमारा मित्र है।”

“लेकिन फिर भी आजकल लोग अत्यधिक व्यस्त हैं,” मैंने कहा, “बहुत से लोग तो मुझसे यह कहते हैं कि उनके पास ध्यान के लिए समय ही नहीं है।”

“इससे मुझे एक घटना की याद आ गयी,” दाजी बोले, “भारत सरकार के एक वरिष्ठ अधिकारी एक बार बाबूजी से मिलने आये। उस अधिकारी की ध्यान में तो रुचि थी लेकिन उनका कहना यह था कि इसके लिए उनके पास कोई समय नहीं है। बाबूजी ने प्रश्न के रूप में उत्तर दिया कि क्या कोई ऐसा व्यक्ति भी होगा जो उनसे ज्यादा व्यस्त हो?”

“हाँ,” अधिकारी ने जवाब दिया। “प्रधानमन्त्री ज्यादा व्यस्त हैं।” उस समय इन्दिरा गांधी प्रधानमन्त्री थीं।

बाबूजी का जवाब था, “तो उनकी व्यस्तता और अपनी व्यस्तता का अन्तर मुझे दे दें और वह समय ध्यान में लगायें।”

यदि ध्यान सचमुच प्राथमिकता होती तो उन्हें अपनी इतनी व्यस्तता से शिकायत न होती। उन्होंने समय निकाल ही लिया होता। इसके विपरीत वह महिला जिसने मुझे ध्यान करना सिखाया ध्यान के लिए अत्यन्त आतुर रहती थी। यद्यपि अपने परिवार की ओर से उसने बहुत विरोध का सामना किया। तीव्र विरोध! तो फिर उसने कैसे यह सब सँभाला? वह रोज़ सभी से पहले उठ जाती और बिस्तर में ही सोने का बहाना करके ध्यान करती। कभी-कभी वह स्नानघर जाने के बहाने वहाँ भी ध्यान कर लेती। उसका जीवन ध्यान के चारों ओर घूमता रहा। अगर आप कुछ करने को आतुर हैं तो कोई रास्ता आप ढूँढ़ ही लेंगे। जैसी कि कहावत भी है, “प्रेम अपना रास्ता ढूँढ़ ही लेता है।”

व्यस्त लोगों को यह भी समझना चाहिए कि ध्यान जीने के कई छोटे रास्ते भी दिखाता है। हम विभिन्न क्रिया-कलापों में प्रायः अत्यधिक समय और ऊर्जा लगा देते हैं। कभी तो वे फलित होते हैं और कभी नहीं भी। उदाहरण के लिए, कोई वर्षों से प्रेम का राग अलाप रहा हो पर आखिर में दूसरा व्यक्ति ही पीछे हट जाये, या किसी व्यापारिक सबन्ध को बनाने में आप अत्यधिक समय लगा दें पर अन्त में हासिल कुछ न हो। तो क्या शुरू में ही यह हकीकत समझ लेना बेहतर नहीं होगा? ध्यान हमें अन्तर्दृष्टि का एक स्तर प्रदान करता है जिससे हम परिस्थितियों का उनकी उपयोगिता के अनुसार सही मूल्यांकन कर पाते हैं। इससे हमारे कई वर्षों का समय बच सकता है।”

“इसलिए ध्यान समय की बचत का बहुत बड़ा साधन है। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि जितना कम समय आपके पास होता है, यह ध्यान उतना ही जानदार बन जाता है। अगर आप पाँच मिनट के लिए भी रोज़ निश्चित समय पर ध्यान कर पायें तो यह बहुत फायदेमन्द होगा। तो ध्यान ज़रूर करें, खास तौर पर तब, जब आपके पास पर्याप्त समय न हो!”

मैंने कहा, “तो आपका यह कहना है कि ध्यान एक निश्चित समय पर किया जाये।”

“देखिए, हमें अपने अभ्यास में स्वचालित दशा लानी है। इसका अर्थ यह है कि हमें रोज़ एक ही समय और एक ही स्थान पर ध्यान करना चाहिए, समय चाहे कोई भी हो। यह हमारा दूसरा स्वभाव बन जाना चाहिए। यह इतना स्वचालित होना चाहिए कि इसके बारे में हमें कभी सोचना न पड़े।”

“नियमित होना इतना ज़रूरी क्यों है?” मैंने पूछा।

दाजी बोले, “प्रकृति को देखो कि वह कैसी है। इसमें कभी असफल न होने वाली एक लय है। सूर्य उदय होता है और अस्त होता है, मौसम बदलते हैं, ज्वार उठते हैं और गिरते हैं। ये सब बिलकुल नपे-तुले ढंग से, पूरी लय और नियमितता से होता है। हमारा जीवन भी प्रकृति की लय से संचालित है। जब हम उसके साथ लयबद्ध होते हैं तो हमारे जीवन की नौका चलती है। नहीं तो यह बहाव के विरुद्ध तैरने जैसा हो जाता है और हमें संघर्ष करना पड़ता है।”

“उदाहरण के लिए नींद के चक्रों को ही लें। अगर आप हर रात एक ही समय पर सोने जाते हैं तो तकिए पर सिर रखते ही आप सो जायेंगे। आपको सोने का प्रयत्न करने जैसी कोई समस्या नहीं होगी। इसी प्रकार यदि आप रोज़ एक ही समय पर ध्यान करें तो ध्यान अपने आप होगा। यह इतने प्राकृतिक ढंग से होगा कि आपको गहरा ध्यान करने के लिए कभी कोई प्रयत्न करना ही नहीं पड़ेगा।”

“हमारे पूर्वजों ने यह भी खोज की है कि दिन के कुछ समय ध्यान के लिए खास तौर से उपयुक्त हैं। इस समय को वे ‘सन्ध्या’ कहते थे क्योंकि इस समय दिन के एक भाग की सन्धि दूसरे भाग से होती है। ऐसा माना जाता है कि ऐसे मौकों पर प्रकृति सन्तुलन की अवस्था प्राप्त करती है। सन्तुलन की इस अवधि में ध्यान करने से हम उस सन्तुलन को अपने भीतर ले आते हैं। यह हमारी प्रकृति का अंग बन जाता है। ये सन्धिकाल हैं—सूर्योदय से पहले का समय, दोपहर और सूर्यास्त के तुरन्त बाद का समय। मेरे लिए तो दोपहर का समय सबसे अच्छा है। ये रॉकेट की तरह काम करता है!”

मैंने पूछा, “दोपहर से आपका मतलब सूर्य के अनुसार है या घड़ी के अनुसार?”

दाजी ने हँसते हुए कहा, “मेरा मतलब दोपहर से है!”

मैंने कहा, “मेरे लिए तो सूर्योदय से पहले का ध्यान काफी ज्यादा अच्छा है!”

“इसीलिए मैं लोगों को इन समयों की जाँच खुद करने के लिए प्रोत्साहित करता हूँ,” वह बोले। “सूर्योदय से पहले ध्यान करो, दोपहर में ध्यान करो। क्या कोई फ़र्क है? अब इसकी तुलना बिलकुल अलग समय पर किये हुए ध्यान के प्रभाव से करो। आपके लिए सबसे अच्छा क्या है यह आपको ही मालूम करना है।”

“इनमें से किसी को भी बहुत कड़ाई से न लें। उदाहरण के लिए यदि आप आर्कटिक वृत्त से ऊपर रहते हैं जहाँ 6 महीने रात और 6 महीने दिन रहता

है तो भोर के समय आप ध्यान कैसे कर पायेंगे? या स्कैंडिनेविया के उन भागों में भी जहाँ सूर्य इतनी जल्दी उदय होता है और अस्त भी बहुत देर से होता है? सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण जो चीज़ है, वह है नियमितता। इन प्रस्तावित समयों में किसी एक समय पर ध्यान करना आदर्श स्थिति तो है लेकिन ध्यान में हमारी नियमितता की तुलना में इसका महत्व दूसरे स्थान पर ही है।”

“और ध्यान के लिए नियत स्थान भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि नियत समय। उदाहरण के लिए जब आप रसोई में घुसते हैं तो आप भोजन के बारे में सोचते हैं। आप भूखे न भी हों तब भी आपका मन खाने की कोई चीज़ उठाने को करता है। तब क्या होगा जब हम पूरा एक कमरा ही ध्यान के लिए समर्पित कर दें? जब तक आप अपनी ध्यान वाली जगह पर बैठ पायेंगे उससे पहले ही आप लगभग ध्यान में चले जायेंगे। दूसरी ओर, यदि आप हर रोज अलग-अलग स्थान पर ध्यान करेंगे तो आपको आरामदायक स्थिति में आने में ही कुछ समय लग जायेगा। उस जगह का नयापन आपका ध्यान भटकायेगा, यहाँ तक कि सूक्ष्म रूप से भी। परिणामस्वरूप आप उस गहराई से ध्यान नहीं कर पायेंगे जैसा कि आप अन्यथा कर पाते।”

“इसके अतिरिक्त हमारे विचार, हमारी भावनाएँ और हमारी गतिविधियाँ वातावरण में कुछ निशान छोड़ जाते हैं। किसी भी जगह प्रवेश करने पर हम वहाँ के अहसास के साथ अनुनाद करने लगते हैं। उदाहरण के लिए जब आप किसी अस्पताल में जाते हैं तो कुछ प्रभाव आपको तुरन्त ही महसूस होते हैं। आपको दुःख भरा माहौल लगेगा। अपने चारों ओर आप भारीपन महसूस करेंगे। हवा में चिन्ताएँ तैर रही होंगी।”

“कई साल पहले की बात है। मैं न्यूयार्क शहर में एक फ़ार्मेसी खोलना चाहता था। मेरे एक कर्मचारी ने एक बहुत अच्छी जगह तलाश ली। यह एक अस्पताल के बिलकुल बगल में ही थी। (ऐसा स्थान फ़ार्मेसी के लिए प्रायः अच्छा होता है)। उसका मालिक भी उसे बेचने को तैयार था और कम दाम में भी। मैं भी इस जगह को देखे बिना ही खरीदने के लिए लगभग तैयार था। लेकिन मैं उसे देखने चला गया और जैसे ही मैंने वहाँ प्रवेश किया मुझे लगा कि कुछ तो गड़बड़ है। घूमते-घूमते मैं आराम वाले कमरे में चला गया। जैसे ही मैं कमरे में घुसा मैंने वातावरण में काफी अशान्ति महसूस की। एक प्रकार की असहायता और गहरा दुःख था वहाँ। मैंने महसूस किया कि कोई आत्मा उस स्थान पर मँडरा रही थी। मैं वापस मुड़ा और चल दिया। लेकिन जब मैं बाहर निकला तब भी उसने मेरा पीछा किया जिसे मैं केवल मदद की एक कराह कह सकता हूँ। बाद में मैंने अपने एक कर्मचारी को यह मालूम करने के लिए कहा कि उस जगह पर क्या हुआ था। मालूम पड़ा कि वहाँ पर हाल ही में एक हत्या हुई थी।”

“विचारों और क्रियाओं का प्रभाव किसी जगह पर बना रहता है। बार-बार एक ही जगह पर ध्यान करने से हम वहाँ एक विशेष वातावरण निर्मित कर लेते हैं—ध्यान का वातावरण। ऐसे वातावरण में शान्ति और पवित्रता व्याप्त रहती है। यह हल्का, सूक्ष्म और शुद्ध होता है। असल में यह एक पवित्र स्थान बन जाता है। यूँ तो सभी जगह पवित्र होती हैं। हर वातावरण दिव्य होता है, जब तक कि हम उसे अपने विचारों, भावनाओं व गतिविधियों से भ्रष्ट न कर दें। यही कारण है कि हमें उस जगह पर जहाँ हम ध्यान करते हैं, कोई और गतिविधि करने से बचना चाहिए।”

मैंने कहा, “हर कोई तो अपने मकान में पूरा एक कमरा ध्यान के लिए नहीं रख सकता।”

उनका जवाब था, “इस कार्य के लिए आप एक कोना भी रख सकते हैं जैसे कि बिल्लियाँ, जो एक ही जगह पर सोती हैं।”

मैंने पूछा, “ठीक उसी प्रकार जैसे ध्यान के लिए आदर्श समय होते हैं, क्या ध्यान के लिए कोई आदर्श जगहें भी होती हैं?”

“ऐसी परिस्थितियाँ चुनें जो आपके अभ्यास में बाधा न डालें।” वह बोले, “उदाहरण के लिए आप ऐसा माहौल नहीं चाहेंगे जो भटकावों से भरा हो। यदि आपका माहौल अफरा-तफरी का हो तो वह आपकी चेतना में झ़लकेगा। बाहरी उथल-पुथल की उपस्थिति में भीतरी अशान्ति और तीव्र होने लगती है। जब आप किसी अव्यवस्थित या अस्वच्छ कमरे में बैठते हैं तो इसका प्रभाव आप पर पड़ता है। अगर चारों ओर कपड़े बिखरे पड़े हों, किताबें खुली पड़ी हों और सिंक में गन्दे बर्तन पड़े हों तो आप कितना अच्छा ध्यान कर पायेंगे? एक अलग और खुला वातावरण सर्वोत्तम है। आदर्श रूप में आपके ध्यान की जगह पर बैठने के लिए केवल एक चटाई या कुर्सी होनी चाहिए। यह ध्यान में रखते हुए कि ध्यान एक आन्तरिक प्रक्रिया है हमारी बाहरी परिस्थितियाँ भी हमारे ध्यान में सहायक होनी चाहिएँ। हमारे वातावरण में ऐसा कुछ नहीं होना चाहिए जो हमें बाहर की ओर खींचे। लेकिन जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते हैं हम अपने चारों ओर के वातावरण से अप्रभावित रहना भी सीख जाते हैं। उदाहरण के लिए आरम्भ में यदि कोई चीज़ हमारे ध्यान में बाधा डालती है तो हमें गुस्सा आ जाता है। समय बीतने पर यही बाहरी भटकाव हमें अपनी ही और अधिक गहराइयों में ले जाते हैं।”

“और हाँ, समय और स्थान ही दो परिवर्तनशील चीज़ें नहीं हैं जो हमारे ध्यान को प्रभावित कर सकती हैं। रोज़ ही हम स्वयं को कई प्रभावों के बीच पाते हैं। ये प्रभाव हमारी मनोदशा को प्रभावित करते हैं। ‘आज मुझे अच्छा महसूस क्यों नहीं हो रहा?’ इसका कारण आपकी परिस्थितियाँ, किसी से आपकी मुलाकात, आपका कोई स्वप्न, आपके द्वारा खायी गयी कोई चीज़

या आपका स्वास्थ्य हो सकता है। एक उथल-पुथल भरे दिन के पश्चात आप उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। उस समय यदि आप घर में आकर ध्यान करते हैं तो आपका ध्यान करना उतना आसान नहीं होता जितना कि उदाहरण के तौर पर पहली बार, सुबह के वक्त था। सुबह-सुबह ऐसा कुछ नहीं होता जो आप पर प्रभाव डाल सके। आप खाली स्लेट की तरह होते हैं।”

“तो मुझे आशा है कि लोग इन सब चीज़ों की जाँच स्वयं करेंगे। खाने से पहले ध्यान करें। खाने के बाद ध्यान करें। क्या आपको कोई अन्तर लगता है? नहाने से पहले ध्यान करें। नहाने के बाद ध्यान करें। क्या इसका प्रभाव मिल्न है? इन विषयों पर लोगों ने काफी कुछ कहा और सुना है। कुछ का कहना है कि हमें नहाने के बाद ही ध्यान करना चाहिए। ठीक। तो फिर मुँह पर पानी के कुछ छोटे मार कर ध्यान करने के बारे में क्या कहें? क्या वह काफी है? तो इन चीज़ों को स्वयं आजमाएँ और देखें। आप सही नतीजे पर पहुँचेंगे।”

ध्यान का आसन

हार्टफुलनेस मेडिटेशन की जानकारी होने से पहले मैंने ध्यान के कुछ अन्य तरीके भी आजमाए थे। अन्तर उनमें कुछ भी रहे हों पर एक बात सबमें समान थी कि सभी शारीरिक मुद्रा को अत्यन्त महत्व देते थे। ध्यान की मेरी यात्रा के उन आरम्भिक दिनों में मेरा यह मानना था कि गहरा ध्यान तभी हो पायेगा जब मैं ध्यान मुद्रा में पारंगत हो जाऊँगा। इसलिए मैंने अपनी अत्यधिक ऊर्जा और ध्यान अपनी मुद्रा में लगा दिया। उस दिन का भी मुझे इन्तज़ार था जब मुद्रा मेरी दूसरी प्रकृति बन जायेगी और इसके बारे में मुझे कभी सोचना नहीं पड़ेगा।

हार्टफुलनेस ट्रेनर से आरम्भिक सिटिंग लेने से पहले मैंने पूछा था कि मैं कौन-सी मुद्रा अपनाऊँ। उन्होंने मेरी ओर देखा और कहा, “आराम से रहो!” मुझे कुछ आश्वर्य-सा हुआ। कुछ समय पश्चात मैं कुछ स्थानीय लोगों से मिला जो हार्टफुलनेस मेडिटेशन कर रहे थे। वहाँ एक बार फिर मुझे आश्वर्य हुआ। उस समूह में किसी विशेष मुद्रा को अपनाने के लिए कोई जोर नहीं था। अधिकतर लोग आलथी-पालथी मार कर बैठे थे और अन्य लोग कुर्सियों पर। कोई भी दृढ़ नहीं दिखाई दे रहा था। हर कोई इस तरह से बैठा था जैसा उसके लिए स्वाभाविक था। तब से मैंने हार्टफुलनेस ध्यान करने वाले को शायद ही कभी मुद्रा के विषय में बोलते सुना हो। अतः मैंने इस बात को दाजी के समक्ष रखने का निश्चय किया।

“ध्यान की आदर्श मुद्रा क्या है?” मैंने पूछा।

उन्होंने कहा, “मुद्रा को ध्यान के वृहद् उद्देश्य के सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए।”

“हम ध्यान में क्या करते हैं? हम भीतर जाते हैं। हम अपने अस्तित्व के केन्द्र की ओर बढ़ते हैं। गहरे ध्यान में हम अपने स्रोत के सम्पर्क में आ जाते हैं। इसमें विलय होकर, इसमें मिलकर और इसमें डूबकर हम इसके साथ एक हो जाते हैं। यह मिलन योग की वास्तविक स्थिति को दर्शाता है। यह उस स्रोत की ओर वापसी है जहाँ से हमारी उत्पत्ति हुई है। इस प्रकार देखें तो योग विलय के सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करता है। यह हमारी सृष्टि के सृजन से पहले के क्षण में वापसी है। तब सब कुछ एक में समाया हुआ था। उस ‘एक’ में कोई हलचल नहीं थी। इसी कारण योग की स्थिति पूर्ण शान्ति और आन्तरिक स्थिरता की स्थिति होती है।”

“जीवन में हम एक और विपरीत गति देखते हैं। यह वह गति है जो आपको आपके केन्द्र से दूर, बाहर की ओर खींचती है। यह बाहरी गति सृजन के सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करती है जो एक सक्रिय सिद्धान्त है।”

“फिर हमें यह भी समझना चाहिए कि सृजन का क्षण बिछड़ने का क्षण भी है। यही वह समय है जब हम स्रोत से अलग हुए थे। उदाहरण के लिए, क्या होता है जब एक माँ अपने बच्चे को जन्म देती है? यह एक सृजनात्मक कार्य है लेकिन यह बिछड़ने का क्षण भी है। पहले माँ और बच्चा एक थे। जब माँ खाती थी तो बच्चा भी खाता था। उनके अस्तित्व आपस में गुँथे थे। बच्चे के जन्म के बाद वे दो अलग-अलग चीज़ें हो गये। एक के दो हो गये।”

“इसी प्रकार आत्मा का सृजन वह क्षण है जब वह अपने स्रोत से अलग होती है। पहली बार एकता बिखर जाती है। पहली बार हम अधूरापन महसूस करते हैं, हम असन्तोष महसूस करते हैं। कुछ ब्रह्म-शास्त्र इसे ‘गिरना’ कहते हैं। ध्यान करके हम एकता और स्थिरता की उस अवस्था में पुनः प्रवेश करते हैं। हम अपनी मूल अवस्था व अपनी सार्वभौमिकता को पुनः प्राप्त करते हैं।”

“कई लोगों का मानना है कि मृत्यु के बाद ही हम स्रोत पर लौट सकते हैं। फिर एक आवाज़ तर्क की भी है जो कहती है कि एकमात्र तरीका जिससे हम स्रोत पर वापस लौट सकते हैं, वह है समय में वापस लौटना! सच कोई भी नहीं है। ध्यान के द्वारा हम उस महा-मिलन को जीते जी ‘यहीं और अभी’ प्राप्त कर लेते हैं। योग में पारंगत होने का मतलब है मृत्यु और समय के बन्धनों से पार निकल जाना। योग की स्थिति में हम सृजन और विलय के सिद्धान्तों का एक साथ प्रदर्शन करते हैं। हम उस द्वन्द्व से परे चले जाते हैं।

हम एक ही साथ सक्रिय और निष्क्रिय, समय-बद्ध और शाश्वत, दोनों हो जाते हैं।”

“यह सब गहरे ध्यान से होता है। आपको आश्र्य हो सकता है कि इनमें से किसी का मुद्रा से क्या लेना-देना। लेकिन गहरे ध्यान की हालत का आरम्भ मुद्रा से ही होता है। हमारी ध्यान मुद्रा हमारे भीतर की ओर मुड़ने और केन्द्र की ओर चलने में सहायक हो सकती है। या फिर यह हमारे आड़े भी आ सकती है।”

“पतंजलि योगसूत्र के आठ चरणों में से कई पर हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं। अन्तिम चार चरण—प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि हमारे गहरे ध्यान में डूबने का वर्णन करते हैं। प्रत्याहार अर्थात् भीतर की ओर मुड़ने से शुरू कर, हम धारणा और ध्यान से होते हुए हृदय में शरण लेने की ओर बढ़ते हैं। अन्ततः हम समाधि में प्रवेश करते हैं जिसमें हम स्रोत में विलय होना आरम्भ कर देते हैं।”

“पतंजलि का तृतीय चरण है ‘आसन’ जिसका अर्थ है ‘मुद्रा’। सर्वोत्तम आसन चुनने के लिए हमें इस बात का ख्याल रखना होगा कि कौन-सी मुद्रा, सबसे अच्छी तरह से हमें प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की ओर ले जायेगी। ध्यान में सबसे पहली चीज़ जो हम करते हैं, वह है स्वयं को भीतर की ओर मोड़ना। यह प्रत्याहार है। हमारी शारीरिक दशा यहाँ पर सहायक हो सकती है। अगर हमारी आँखें पूरी खुली हैं, अगर हमारा शरीर पसरा हुआ है, और हमारी टाँगें सामने की ओर फैली हुई हैं तो इससे हमें भीतर जाने में कोई मदद नहीं मिलेगी। ऐसी मुद्राएँ तो स्वतः ही और भी बाहर की ओर मोड़ देती हैं। प्रत्याहार प्राप्त करने के लिए हमारे शरीर को संकुचित रूप अपनाना चाहिए।”

“बेशक यह व्यक्तिगत अनुभव का मामला है। अतः दोनों ही तरीके अपना कर देखें। अपने हाथ-पाँव फैलाकर ध्यान करें, उन्हें मोड़ कर ध्यान करें और फिर स्वयं अन्तर देखें।”

मैंने कहा, “यह प्रयोग तो मैंने पहले ही कर लिया है।”

“फिर क्या देखा आपने?” उन्होंने पूछा।

“ठीक वैसा ही जैसा आपने कहा। जब मेरे हाथ-पैर बाहर की ओर फैले थे तो अपने भीतर जाना मेरे लिए सचमुच कठिन था।”

“इसीलिए ध्यान की परम्परागत मुद्रा टाँगें मोड़कर बैठी हुई मुद्रा होती है,” दाजी ने कहा। “हाथों की स्थिति भी महत्वपूर्ण है। आदर्श रूप में वे आपस में बँधे हुए और अंगुलियाँ भी आपस में बँधी हुई होनी चाहिए। या

आप एक के ऊपर दूसरा हाथ रख सकते हैं। इसके आलावा ध्यान में हम आँखें बन्द रखते हैं।”

मैंने कहा, “कुछ तरीके ऐसे हैं जिनमें लोग आँख खोलकर ध्यान करते हैं।”

दाजी ने बताया, “पुराना साहित्य इन्द्रियों का वर्णन ‘द्वार’ के रूप में करता है, जिनसे होकर जागरूकता का बहाव होता है।” दृष्टि सबसे प्रमुख इन्द्रिय है। हम जो कुछ भी देखते हैं उस पर ध्यान देने लगते हैं अतः दृष्टि के उस द्वार को बन्द करने से हमें अपनी जागरूकता को पुनः भीतर की ओर मोड़ने में मदद मिलती है, जो कि प्रत्याहार है। आसन और प्रत्याहार से फिर हम बाकी चरणों धारणा, ध्यान व समाधि से होते हुए आगे बढ़ते हैं।”

“समाधि में हम स्रोत से मिलन की स्थिति में प्रवेश करते हैं। स्रोत से हम ऊर्जा की सूक्ष्म धारा खींचते हैं। हाथ-पैरों को मोड़ कर बैठने से हम एक प्रकार का सर्किट बना लेते हैं। यह सर्किट उस धारा को हमारे पूरे तन्त्र में बहाने में मदद करता है। हाथ-पैरों से होकर बहती हुई यह धारा बार-बार घूमती रहती है। अगर हमारे हाथ-पैर आपस में जुड़े न हों तो सर्किट टूट जाता है और धारा निकल कर व्यर्थ चली जाती है।”

मैंने पूछा, “यदि स्रोत अनन्त है तो कुछ ऊर्जा के बेकार चले जाने से क्या फ़र्क पड़ता है?”

दाजी ने कहा, “देखो, एक बार चारीजी (हार्टफुलनेस परम्परा के तीसरे गुरु) से मेरा व्यक्तिगत विचार-विमर्श हुआ था। उन्होंने कहा, “कमलेश, जितना चाहो पैसा कमा लो। खूब कमाओ। लेकिन खर्च उसे बुद्धिमानी से करना!” तो देखिए, चारीजी के कथन में एक छिपा हुआ प्रश्न था कि, यदि आप बुद्धिमानी से खर्च करते हैं तो आपको इतना अधिक कमाने की ज़रूरत ही क्या है? यदि आप किसी स्रोत की सच्ची कीमत समझते हैं तो आप उसका अधिकतम उपयोग करना चाहेंगे। आप उसे संरक्षित रखेंगे। ध्यान में जो हम प्राप्त करते हैं वह उच्चतम है। वह दिव्यता का सार है! तो मैं समझता हूँ कि हम इसे बेकार नहीं जाने देना चाहेंगे। कृतज्ञता का सबसे सच्चा स्वरूप यह है कि आपको जो मिलता है उसका सदुपयोग करें। शारीरिक मुद्रा एक छोटी चीज़ प्रतीत हो सकती है लेकिन इस दृष्टि से देखें तो यह स्रोत के साथ हमारा सम्बन्ध मजबूत करती है।”

“लेकिन चिन्ता की कोई बात नहीं अगर आप पैर मोड़ कर नहीं बैठ पाते। उस स्थिति में आप कुर्सी पर बैठें और पैर ज़मीन पर रखें लेकिन टखनों पर पैर एक दूसरे के ऊपर रखें। इससे आप मुँड़ी हुई टाँगों का कुछ प्रभाव ला पायेंगे। यदि आपके घुटनों में समस्या है तो इसे न आजमाएँ। इसके बजाए

आप एक छोटी चटाई अपने पैरों के नीचे रख लें। अगर यह कुचालक पदार्थ की बनी होगी तो इससे ऊर्जा की बरबादी रोकी जा सकेगी।”

मैंने कहा, “यह विचार तो मेरे लिए बिलकुल नया है।”

दाजी ने बताया, “प्राचीन काल के लोग जानवरों की खाल पर बैठ कर ध्यान किया करते थे क्योंकि खाल कुचालक होती है। लेकिन दूसरी चीज़ें भी अच्छी हैं। आप ऊनी कपड़े पर बैठ सकते हैं या रेशम से ढके कपड़े पर भी बैठ सकते हैं, यदि ऐसा ज्यादा सुविधाजनक हो तो। लकड़ी का तख्ता, चटाई या गद्दा सभी ठीक रहेंगे।”

“सोफ़ा कैसा रहेगा,” मैंने पूछा।

“हाँ, सोफ़ा या कुर्सी भी पर्याप्त होंगे,” उन्होंने कहा, “जब तक पदार्थ कुचालक है, सब ठीक है।”

“क्या ध्यान के समय पीठ के लिए किसी चीज़ का सहारा लेना ठीक है?” मैंने पूछा।

“हाँ,” दाजी बोले, “कई लोग इसी तरह बैठते हैं और अच्छी तरह ध्यान करते हैं। लेकिन ध्यान करते समय हमें सिर को सहारा बिलकुल नहीं देना चाहिए। इससे आप सो जायेंगे। यही कारण है कि हमें लेटकर भी ध्यान नहीं करना चाहिए।”

“फिर भी यदि आप अनिद्रा से पीड़ित हैं तो यह एक उपचार भी है। बिस्तर पर लेटें और ध्यान शुरू कर दें। आप एकदम सो जायेंगे!”

“अभी हमें एक और बात पर चर्चा करनी है जिसे मैं मुद्रा का सबसे महत्वपूर्ण पहलू समझता हूँ। आपकी मुद्रा ध्यान में आड़े नहीं आनी चाहिए। यदि आपकी मुद्रा आपको ध्यान से भटकाती है तो यह अपने उद्देश्य में सफल नहीं है। मैंने अभी-अभी आपको बताया कि पैर मोड़कर बैठना एक आदर्श स्थिति है। लेकिन क्या यह आपके लिए आदर्श है? हर देह अलग किसी की होती है। कुछ लोग धरती पर बैठना पसन्द करते हैं जबकि अन्य लोग बिना कुर्सी के बैठ ही नहीं पाते। अब क्योंकि शरीरों में इतना अन्तर है इसलिए हम समानता की आशा कभी नहीं रख सकते। सभी लोगों से हम ध्यान की एक ही मुद्रा अपनाने की कभी आशा नहीं कर सकते। पैर मोड़ने की मुद्रा कुछ लोगों के लिए तो काम की है लेकिन बाकी लोग उस तरह से ध्यान नहीं कर पाते। यदि कोई मुद्रा आपके लिए कारगर नहीं है तो आपको इसे जबरदस्ती नहीं अपनाना चाहिए। यह हिप्पोक्रेटिक प्रतिज्ञा के सामान है: ‘प्रथम, हानि मत पहुँचाओ।’ असल में पतंजलि यही बात कहते प्रतीत होते हैं: **स्थिर सुखम् आसनम्।** (मुद्रा स्थिर और आरामदायक होनी चाहिए।)”

“पतंजलि इस बात पर जोर नहीं देते कि हम पूर्ण पद्मासन की स्थिति में ही बैठें। न ही वे हमें जमीन पर बैठने के लिए कहते हैं। वे सिर्फ़ इतना कहते हैं, “स्थिर रहो और आराम से रहो।” आखिर हम स्थिर क्यों रहें? यदि आप लगातार अपनी स्थिति बदलेंगे या हिलेंगे-डुलेंगे तो आप ध्यान नहीं कर पायेंगे। शारीरिक स्थिरता ज़रूरी है।”

“अब, इस स्थिरता को कैसे प्राप्त किया जाये? दो तरीके हैं। पहला तरीका तो है इसे जबरदस्ती करना। पर हम ऐसा नहीं कहते। फिर भी, बहुत प्रयास के द्वारा, अपने शरीर की दर्द भरी संवेदनाओं को नज़रअन्दाज कर स्वयं को जबरदस्ती स्थिर बना देना सम्भव है। निसन्देह हर चीज़ चोट पहुँचायेगी और आप ज़ख्मी भी हो सकते हैं परन्तु आप चट्टान की भाँति ढूढ़ बने रहेंगे। क्या आपका मन भी उतना ही स्थिर रहेगा? ज्यादा सम्भावना तो इस बात की है कि वह शरीर के दर्द और उसकी असुविधाओं के अहसास में लगा रहेगा। और तब यही आपके ध्यान की वस्तु हो जायेगी। इस तरीके से आप मन को तो ध्यान करने से रोकते ही हैं, साथ ही शरीर के भी खिलाफ़ हो जाते हैं।”

“मन और शरीर दोनों ही स्थिर कब रह सकते हैं? तभी जब आप आराम से हों। यह दूसरा तरीका है—पतंजलि का तरीका। आराम न मिलने पर आप हिलते-डुलते रहते हैं। आप अपनी स्थिति कभी इस तरफ़ तो कभी उस तरफ़ बदलते रहते हैं। आप लगातार आराम की तलाश में रहते हैं। और तब कोई स्थिरता नहीं रहती। दूसरी ओर जब आप आराम से होते हैं तो आपके पास हिलने-डुलने का कोई कारण नहीं होता। शरीर हिलना ही नहीं चाहता। आप जैसे हैं वैसे ही ठीक हैं। तब शरीर आपका ध्यान नहीं भटकाता।”

“अत्यधिक आराम से भी हमें बचना चाहिए। इससे भी हमारा ध्यान शरीर की ओर लगा रहता है। अब ऐसा नहीं है कि हम शरीर के खिलाफ़ हों। असल में हमें तो शरीर को धन्यवाद देना चाहिए क्योंकि वह चेतना में गोता लगाने के लिए एक तख्ते की तरह कार्य करता है। अब क्योंकि हमें तो कूदना है, तख्ते से चिपकना नहीं है, इसलिए हम किसी भी ऐसी अति से बचते हैं जो हमारा ध्यान शरीर की ओर खींचे। ‘मध्यस्थ-भाव’ ही हमारा सिद्धान्त होना चाहिए। इसीलिए ध्यान के दौरान हम असुविधाओं और अत्यधिक आराम दोनों से बचते हैं।”

“अब हम पतंजलि के अगले पद ‘प्रयत्न शैथिल्यानन्त समाप्तिभ्याम्’ पर आते हैं। “प्रयत्न को ढीला छोड़ देने से और अनन्त पर ध्यान करने से मुद्राओं में पारंगत हुआ जा सकता है।”

“आइए अब जरा इसे समझ भी लें। किसी चीज़ में पारंगत होने से क्या तात्पर्य है? जब किसी चीज़ में हम पारंगत हो जाते हैं तो वह हमारी दूसरी प्रकृति बन जाती है। उसके बारे में हमें सोचना नहीं पड़ता। उसके लिए हमें

प्रयत्न नहीं करने पड़ते। तो पारंगत होने का मतलब है प्रयासहीन होना। अगर मुद्रा धारण करने के लिए आपको प्रयास करना पड़ता है तो आप इसमें पारंगत नहीं हुए हैं और जब तक आप इसमें पारंगत नहीं होंगे आप उसके आधीन रहेंगे। तो हमें उन कठिन मुद्राओं में ध्यान नहीं करना है जिन्हें इतनी अधिक ऊर्जा और ख़्याल की ज़रूरत होती है। वो हमें ध्यान से भटकाती ही हैं। अपनी मुद्रा में जब हम आराम से होते हैं तभी अपना ध्यान हम असल चीज़ की ओर मोड़ सकते हैं जिसे पतंजलि ने ‘अनन्त’ कहा है।”

“समाधि की हालत में आप अपने भीतर इतने गहरे डूब जाते हैं कि आपको अपने शरीर का अहसास ही नहीं रहता। आपका सिर लटक जाता है। यहाँ तक कि आपका शरीर भी आगे की ओर झुक सकता है। आप शरीर को भूल चुके होते हैं और इसी भूलने में आप इसके पार चले जाते हैं। केवल तभी हम कह सकते हैं कि हम मुद्रा में पारंगत हो गये हैं। लेकिन यह सब स्वाभाविक रूप से होना चाहिए।”

मैंने कहा, “तो हम जानबूझ कर नहीं झुकते।”

“ऐसा करना तो बनावटी होगा,” दाजी ने कहा, “ध्यान का आरम्भ तो आपको आरामदायक व सुविधाजनक स्थिति में सीधी मुद्रा से ही करना चाहिए। जैसे-जैसे आप ध्यान में गहरे उत्तरते जायेंगे आप अपनी मुद्रा का अहसास खोने लगेंगे और ऐसा ही होना भी चाहिए। आखिरकार यह ध्यान है कोई कसरत तो नहीं!”

रिलैक्सेशन

रिलैक्सेशन की विधि हार्टफुलनेस के तीन मूलभूत अभ्यासों की पूरक है। उन अभ्यासों की तुलना में इसे अभी हाल ही में जोड़ा गया है। इसके अतिरिक्त रिलैक्सेशन की विधि पूरी तरह से आध्यात्मिक अभ्यास नहीं है क्योंकि इसका मुख्य उद्देश्य शरीर को आराम की स्थिति में लाना है। हालाँकि शारीरिक रिलैक्सेशन हमें मानसिक और भावनात्मक रूप से भी शान्ति प्रदान करता है जिससे ध्यान में गहराई आती है। यही कारण है कि हम प्रायः ध्यान से ठीक पहले रिलैक्सेशन विधि का उपयोग करते हैं। इस विधि को हम अपनी प्राथमिकता के अनुसार केवल तनाव-मुक्ति के सरल साधन के रूप में भी प्रयोग कर सकते हैं।

मुझे स्पष्ट रूप से याद है जब रिलैक्सेशन विधि से मेरा परिचय हुआ था। दाजी के साथ जब मैं उनके ऑफिस में बैठा था तो वह मेरी ओर मुड़े और बोले, “आओ मैं तुम्हें रिलैक्स होना सिखाता हूँ।” वो मुझे इस विधि के

विभिन्न चरणों से होते हुए ले गये। हर एक के बीच में थोड़ा रुकते हुए जिससे कि उसका प्रभाव भी जम जाये।

जब उन्होंने बोलना बन्द किया तो मुझे अपने भीतर इतनी स्थिरता प्राप्त हुई कि मैंने किसी मांसपेशी को ज़रा हिलाना भी उचित नहीं समझा। आँख खोलने को भी मेरा मन नहीं किया। मुझे नहीं लगा कि मेरे भीतर कोई विचार भी होगा। मेरे रिलैक्सेशन की हालत असल में इतनी गहरी थी कि ऐसा लग रहा था मानो मैं ध्यान में ही हूँ।

अब एक साल के बाद हमने इस बात पर चर्चा की कि क्यों उन्होंने हार्टफुलनेस अभ्यास में रिलैक्सेशन की विधि को जोड़ा।

“मुझे लगता है कि पुराने समय में रिलैक्सेशन ज्यादा आसानी से हो जाया करता था।” उन्होंने कहा, “हमारी जीवनशैली तब अलग थी। आजकल हमें जागरूक रहते हुए रिलैक्स होना पड़ता है। देखिए, क्या दशा हो गयी है हमारी। अब हमें प्रयास रहित सहज स्थिति में पहुँचने के लिए प्रयास करना पड़ता है!”

“ध्यान के लिए सहजता ज़रूरी है। परन्तु होता क्या है कि हम शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रयास करने की कोशिश करते हैं। जब हम ध्यान में बैठते हैं तो स्वयं को लगातार ठीक करते रहते हैं। हम अपने शरीर को, अपने विचारों को और अपनी जागरूकता को व्यवस्थित करते रहते हैं। अपनी बिखरी हुई चेतना को स्थिर करने के लिए हम बार-बार प्रयास करते हैं। इस सारे अभियान में क्या हम स्थिरता ला पाते हैं?”

“इससे तो हम और अधिक अस्थिर ही होंगे।” मैंने कहा, “स्थिरता की खोज उल्टा हमें अस्थिर कर देगी।”

“और तब हम तनाव में आ जाते हैं,” दाजी बोले, “हम दबाव महसूस करने लगते हैं। हो सकता है कि मैं आपको प्रयासरहित होने के लिए कहूँ। या मैं आपको खुलापन अपनाने के लिए या फिर कोई माँग या हठ छोड़ने के लिए कहूँ। और आप मान भी जायें और कहें, “हाँ, मैं ध्यान में कोई प्रयास नहीं करूँगा। मैं किसी चीज़ की तलाश या माँग नहीं करूँगा।” लेकिन क्या होता है जब आप सचमुच ध्यान करते हैं?”

उन्होंने प्रश्न को कुछ देर के लिए ऐसे ही छोड़ दिया।

फिर बोले, “हिमालय की तलहटी में एक छोटा लड़का रहता था। एक सुबह जब वो उठा तो उसने एक योगी को आकाश में उड़ाने देखा। छोटा लड़का बड़ा प्रभावित हुआ। जितना ही वह उस उड़ने वाले योगी के बारे में सोचता, उतनी ही उसकी इच्छा उस योगी की भाँति उड़ने की होती। उसने उसे खोज लेने का निश्चय किया। उसने एक छोटा झोला भरा और सुबह-

सुबह निकल पड़ा। चारों ओर मालूम करने और कुछ उल्टा-सीधा घूमने के पश्चात कुछ गाँव वालों ने उसे उस आदमी की झोंपड़ी की ओर भेज दिया। ‘मैं आपकी तरह उड़ना चाहता हूँ,’ लड़के ने कहा।”

“योगी ने कहा, ‘ठीक है, क्यों नहीं? मैं तुम्हे सिखाऊँगा लेकिन इसके बदले तुम्हें मेरे साथ कई वर्षों तक मेरा नौकर बनकर रहना होगा। तुम्हारे पन्द्रहवें वर्ष की पहली पूर्णिमा को मैं तुम्हें यह तरीका सिखाऊँगा।’”

“इसलिए वह लड़का उसी के साथ रहा। वह कुएँ से पानी लाता, जलाने की लकड़ियाँ इकट्ठी करता, योगी का सारा खाना पकाता। इस कठिन कार्य से उसे बिलकुल भी परेशानी नहीं होती। वह बड़ा उत्तेजित था कि बड़ी जल्दी वह उड़ने लगेगा।”

“अन्ततः वह दिन भी आ गया। खुशी से भरा वह युवक दौड़ता हुआ अपने गुरु के कमरे में घुस गया। ‘गुरुवर! आज पूर्णिमा की रात है। कृपया मुझे उड़ना सिखायें।’ ‘ज़रूर, मैं तुम्हारी मदद करूँगा,’ योगी ने कहा। ‘आज मध्यरात्रि को ध्यान करना लेकिन कुछ भी हो जाये बन्दरों के बारे में मत सोचना। हो सकता है कि मन में तुम्हें लगे कि वे कूद रहे हैं, नाच रहे हैं या तुम पर झपटने आ रहे हैं पर उनके बारे में सोचना मत। तभी तुम्हें शिक्षा मिलेगी।’”

“तो वह लड़का बोला अरे, ये तो बहुत आसान है। कोई बन्दर नहीं। ये तो मैं कर सकता हूँ।”

“आधी रात को वह छत के ऊपर बैठ गया और उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं। सबसे पहली चीज़ जो उसके मन में आयी वो था एक बन्दर! मुझे तो बन्दरों के बारे में सोचना ही नहीं है! उसने सोचा। उसने उनके बारे में न सोचने का प्रयास किया लेकिन बन्दर आते ही रहे। सारी रात वह बन्दरों से लड़ता रहा। सुबह होने पर वह वापस योगी के पास गया और बोला, “यह तरीका तो बेकार है। आपको मुझे बन्दरों के बारे में कुछ बताना ही नहीं चाहिए था!”

“तो देखें कि उस लड़के का उड़ने का सपना धूमिल हो गया क्योंकि बन्दरों के बारे में न सोचने पर ही उसका सारा ध्यान था। सिखाने के बावजूद भी बन्दरों के बारे में न सोचने के प्रयास से बन्दर आते ही रहे। कुछ न करने का प्रयास उल्टे ही नतीजे देता है। और किसी तरह यदि आप जागरूक रह कर अपना प्रयास छोड़ने में सफल हो भी जायें तब भी आप अनजाने में प्रयास करते ही हैं। आप अचेतन रूप से प्रयास करते हैं। आपके वश में कुछ नहीं रहता। तो देखें कि प्रयास को रोकना बड़ा मुश्किल है। अपने ऊपर प्रयास रहित स्थिति थोपने के लिए आपको जिस प्रयास की ज़रूरत होती है, उससे

बड़ा कोई प्रयास आपके लिए नहीं हो सकता। इसका उल्टा प्रभाव होता है।”

मैंने पूछा, “हमारा स्वभाव इतना प्रयासरत रहने का क्यों है?”

दाजी ने बताया, “प्रयास की जड़ें बेचैनी की हमारी मूल अवस्था से जुड़ी हुई हैं। यह आत्मा की मूल अवस्था में लौट कर स्रोत से मिलन की स्वाभाविक ज़रूरत पर आधारित है। वास्तव में बेचैनी इसी को कहते हैं और यही वह चीज़ है जो हमें आध्यात्मिक जिज्ञासु भी बनाती है। इस सारी बेचैनी में आप कुछ तलाश रहे होते हैं। वर्तमान क्षण में जो असन्तोष और अस्थिरता आप महसूस कर रहे होते हैं उससे आप भागने की कोशिश करते हैं। इससे भी ज्यादा, आप यह आशा रखते हैं कि अगला क्षण आपके लिए सन्तोष और शान्ति लेकर आयेगा। इस बीच आप अपने भूतकाल को दोहराने से भी डरते हैं। वह भूतकाल जिसने आपको अस्थिरता की वर्तमान दशा में लाकर रख दिया है। ऐसे में आप वर्तमान की असीमित सम्भावनाओं से चूक जाते हैं। आप शान्ति महसूस नहीं कर पाते। आपको कोई प्रेरणा महसूस नहीं होती।”

“तो देखें कि हम अपने प्रयास तभी छोड़ते हैं जब हम सन्तुष्ट हो जाते हैं। लेकिन सन्तुष्ट हम तभी होते हैं जब अपने प्रयास हम सदा के लिए छोड़ दें।”

“तो यह एक विरोधाभास है,” मैंने कहा।

“यह कैच-22 है,” दाजी बोले। “इस नीरस दुनिया में हम कुछ परिणाम प्राप्त करने के लिए प्रयास करने के आदी हैं। वास्तव में बिना प्रयास के कोई परिणाम आता भी नहीं है। एक भूखा आदमी खाने की तलाश तभी छोड़ता है जब वह खाना खा लेता है। भूखा रहकर उसका पेट नहीं भर सकता। लेकिन आध्यात्मिकता में अलग नियम लागू होते हैं। आध्यात्मिकता में भूख को छोड़ देना ही वह एकमात्र क्रिया है जो आपको खाना खिलाती है। वास्तविक स्थिति तभी प्रकट होती है जब हम अपनी खोज, अपने प्रयास और स्वयं सहित, हर चीज़ को छोड़ चुके होते हैं। तब ‘स्व’ अपने अनुभवातीत सौन्दर्य, वास्तविक सौन्दर्य में प्रकट होता है। अपनी खोज को छोड़ देने पर आप उस चीज़ के प्रति खुल जाते हैं जो आप खोज रहे होते हैं। और स्वयं को छोड़ देने पर आप वही बन जाते हैं जो आप खोजते हैं।”

दाजी रुके। “निस्सन्देह सारे प्रयासों को छोड़ने का यह मतलब नहीं कि आप ध्यान करना छोड़ दें!” वह बोले, “असल में ध्यान ज्यादा से ज्यादा करें। अपनी खोज छोड़ने से तात्पर्य यह है कि ध्यान के दौरान आप अपनी खोजने की प्रवृत्ति छोड़ दें। प्रयासरत रहने का अपना दृष्टिकोण त्याग दें। कुछ भी प्राप्त करने के लिए कर्म ज़रूरी होता है।”

“और कर्मयोग में कर्म ही मूल-मन्त्र है,” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी बोले। “इसलिए ध्यान तो हमें करना ही है। अध्यास हमें करना ही है। कर्म हमें करना ही है। लेकिन हमारे कर्म प्रयासरहित होने चाहिए। उन्हें आसानी से होते रहना चाहिए।”

“सच्चे प्रयासरहित कर्म तभी होते हैं जब हम भीतर से बाहर की ओर रूपान्तरित हो गये हों। रिलैक्सेशन का तरीका इसे अकेले प्राप्त नहीं कर सकता। फिर भी, वह मानसिक स्थिरता जो इससे उत्पन्न होती है, हमें उस दिव्य स्फुरण के प्रति कहीं अधिक प्रहणशील बना देती है जो वास्तव में हमारे रूपान्तरण के लिए जिम्मेदार है। जब हम तनाव व चिन्ताओं से भरे होते हैं तो वह उच्च सहायता जो प्राणाहुति के माध्यम से आती है, हमसे टकरा कर वापस जाने लगती है। लेकिन रिलैक्स होकर हम ज्यादा लाभ बटोर लेते हैं।”

“तो रिलैक्सेशन विधि एक प्रकार की लुब्रिकेन्ट है जो वास्तविक आध्यात्मिक कार्य को बेरोकटोक होने देती है,” मैंने कहा।

“बिलकुल,” दाजी बोले। “ध्यान से पहले शरीर को रिलैक्स करने का उद्देश्य केवल दिव्य कार्य को आसान बना देना है। जब हम गहरी रिलैक्स स्थिति में होते हैं तो इस प्रक्रिया में हमारा हस्तक्षेप न्यूनतम हो जाता है और हम अधिक प्रहणशील हो जाते हैं। हम प्राणाहुति की उन सूक्ष्म फुहारों के सामने खुल जाते हैं जो ध्यान में मग्न हमारे हृदय को ठण्डक पहुँचाती हैं।”



रिलैक्सेशन विधि क्रमिक सुझावों की एक शृंखला है जो हमें रिलैक्स होने में मदद करती है। सबसे अच्छा तो तब होगा जब इसे ध्यान के ठीक पहले किया जाये। लेकिन हम इसे कभी भी, जब भी ज़रुरत महसूस हो, कर सकते हैं। आप भी दूसरों को यह सुझाव बोल कर रिलैक्स होने में उनकी मदद कर सकते हैं, जैसा कि दाजी ने मेरे साथ किया। इन सुझावों को अक्षरशः याद करने की ज़रुरत नहीं है। रिलैक्सेशन विधि के सार को समझ लेने के बाद आपके अपने शब्द अन्तर्बोध से स्वयं निकलेंगे। कुछ समय के बाद तो आपको इस विधि की ज़रुरत भी नहीं पड़ेगी। पूरी प्रक्रिया से आपको इतने विधिवत तरीके से नहीं गुजरना पड़ेगा। एक ही साँस में आप स्वयं को पूरी तरह से रिलैक्स कर पायेंगे।

रिलैक्सेशन

- अपनी आँखें अत्यन्त कोमलता से और हल्के से बन्द कर लें।
- आइए पैरों की उँगलियों से आरम्भ करते हैं। पैरों की उँगलियों को थोड़ा हिलाएँ और महसूस करें कि वे शिथिल हो रही हैं।
- अपने टखनों और पैरों को ढीला होता हुआ महसूस करें। महसूस करें कि धरती माता से ऊर्जा निकल कर पैरों के तलों में प्रवेश कर रही है। महसूस करें कि यह पैरों से होकर घुटनों की ओर बढ़ती हुई टाँगों को शिथिल कर रही है।
- अपनी जाँधों को शिथिल करें। ऊर्जा ऊपर की ओर बढ़ती हुई टाँगों को शिथिल कर रही है।
- अब अपने कूल्हे, कमर और पेट को गहराई से शिथिल होने दें।
- अपनी पीठ को रिलैक्स करें। ऊपर से लेकर नीचे तक पूरी पीठ रिलैक्स हो गयी है।
- अपनी छाती और कन्धों को शिथिल करें। अपने कन्धों को पिघलता हुआ महसूस करें।
- अपनी बाँहों के ऊपरी भाग को ढीला छोड़ दें। बाँहों के निचले भाग की सभी मांसपेशियों को तथा हथेली व उँगलियों को उनके सिरे तक शिथिल होने दें।
- अपनी गर्दन की मांसपेशियों को शिथिल करें। अपना ध्यान अब चेहरे की ओर ले आयें। जबड़े, मुँह, नाक, आँख व पलकें, कान, चेहरे की मांसपेशियाँ, माथा और उससे आगे सिर की चोटी तक सब शिथिल होने दें।
- महसूस करें कि किस प्रकार आपका पूरा शरीर पूर्ण रूप से शिथिल हो चुका है। सिर की चोटी से लेकर पैरों की उँगलियों तक मुआयना करें कि किसी भाग को आपके ध्यान की ज़रूरत तो नहीं है? पुनः उस जगह तक जायें और उसे रिलैक्स करें।
- अपना ध्यान अपने हृदय की ओर ले आयें। कुछ देर वहीं रहें। अपने हृदय में विद्यमान प्रेम व प्रकाश में स्वयं को डूबा हुआ महसूस करें।
- स्थिर व शान्त बने रहें और धीरे-धीरे स्वयं में डूब जायें।
- जब तक आपको यह न लगने लगे कि आप बाहर आने के लिए तैयार हो गये हैं, इसी में डूबे रहें।

ध्यान कैसे करें

समय व स्थान नियत कर लेने तथा आरामदायक मुद्रा में आ जाने के बाद अब हम ध्यान करने के लिए तैयार हो गये हैं। हल्के से हम अपनी आँखें बन्द करते हैं और यह सोच कर कि हृदय में मौजूद दिव्य प्रकाश हमें भीतर की ओर आकर्षित कर रहा है हम अपनी चेतना को हृदय में केन्द्रित कर देते हैं।

मैंने पूछा, “हृदय में दिव्य प्रकाश की मौजूदगी मानने का क्या अर्थ है?”

“यह एक परिकल्पना है,” दाजी ने कहा। “शुरू में हम नहीं जानते कि हृदय में क्या है। हम इसे खोजने की प्रतीक्षा करते हैं। ध्यान एक प्रयोग है जिसमें हम हृदय में मौजूद दिव्य प्रकाश की इस परिकल्पना का सत्यापन करते हैं। यह प्रयोग तब सिद्ध होता है जब हम अहसास के द्वारा वास्तव में इसका अनुभव करते हैं।”

“ध्यान का यह प्रयोग हम कैसे करते हैं?” मैंने पूछा।

“हम रिलैक्स होकर धीरे से अपनी चेतना को हृदय में ले आते हैं।” दाजी ने कहा। “दिव्य प्रकाश कोई विचार नहीं बल्कि एक अहसास है। इस अहसास का निर्माण नहीं किया जा सकता। अतः हमें इसके बारे में सोचने या इसे अनुभव करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। ध्यान वास्तव में प्रतीक्षा का एक रूप है। बिना किसी अपेक्षा के, आराम से, धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा। इसलिए हम स्वयं को बार-बार याद नहीं दिलाते कि ‘दिव्य प्रकाश मेरे हृदय में मौजूद है और वह मुझे भीतर की ओर आकर्षित कर रहा है।’ इस विचार को हमें बार-बार ताजा नहीं करना पड़ता। यह कोई मन्त्र नहीं है कि हम दोहराते रहें : ‘मेरे हृदय में दिव्य प्रकाश है, मेरे हृदय में दिव्य प्रकाश है।’ इससे तो हमें परेशानी ही होगी। यह बनावटी और मेहनत का काम होगा। दिव्य प्रकाश का विचार तो हमारे मन से निकल ही जाना चाहिए जिससे कि हृदय में प्रकाश का वास्तविक अनुभव हो सके। ध्यान की वस्तु एक ऐसी चीज़ है जिसका हमें अहसास करना है, न कि ऐसी चीज़ जिसके बारे में हमें सोचना हो।”

“लेकिन ध्यान की परिभाषा तो किसी एक चीज़ के बारे में लगातार सोचना ही है,” मैंने कहा।

“हाँ” दाजी बोले, “और हम इस विचार के प्रति लगातार और पूरी तरह सचेत भी रहते हैं। लेकिन यह गहरे स्तर पर होता है, करीब-करीब अवचेतन स्तर पर। लोग इसे ग़लत समझ लेते हैं। यदि आप इसे जागृत विचार के रूप में पकड़े रहते हैं तो आप केवल एकाग्र हो रहे होते हैं और यह ध्यान नहीं है।”

मैंने पूछा, “वो कौन-सी चीज़ है जो हमें गहराई में भी सचेत बनाये रखती है?”

“ध्यान करने का आपका इरादा,” दाजी बोले। “यही काफी है। चेतना तो विशाल होती है। इसका अधिकांश भाग हमारी जागरूक चेतना से परे होता है। चेतना का वह भाग जिसके प्रति हम जागरूक हैं, उस पूर्णता का केवल एक छोटा-सा हिस्सा है। दिव्य प्रकाश का विचार चेतना की उन गहराईयों में व्याप्त रहता है जो हमारी जागरूकता से परे है। अतः आपको

जागरूकता के किसी भी स्तर पर दिव्य प्रकाश के विचार से उलझने की ज़रूरत नहीं है। यहाँ तक कि अगर यह विचार आपके चेतन मन में कभी आता ही नहीं, तब भी भरोसा रखें कि आप ध्यान में ही हैं।”

“तो ध्यान में हम वास्तव में करते क्या हैं?” मैंने पूछा।

“बस, जागरूकता को हृदय की ओर केन्द्रित करके उसमें आराम से प्रतीक्षा करते हैं।” दाजी ने दोहराया।

मैंने कहा, “यह तरीका तो बहुत ही सरल है।”

“सचमुच सरल है!” उन्होंने कहा। “और सरल चीज़ को प्राप्त करने के लिए हमें सरल तरीके ही अपनाने चाहिएँ। बाबूजी कहा करते थे कि एक सुई को क्रेन की अपेक्षा अपनी ऊँगलियों से उठाना ज्यादा आसन है।”

“काश, जब मैंने शुरू किया था तभी मुझे यह मालूम पड़ गया होता कि ध्यान कितनी सरल चीज़ है!” मैंने कहा।

“लेकिन आपने अनुभव से सीखा,” वह बोले, “यही तरीका सबसे अच्छा तरीका है।”

मैंने कहा, “जब मैंने शुरू किया था तो मेरी समझ में यह बिलकुल भी नहीं आया कि हृदय में दिव्य प्रकाश के इस विचार को कैसे लिया जाये। मैं जब भी पूछता था तो लोग मुझे इतना ज्यादा न सोचने के लिए कहते! इसलिए अधिकांश समय मैं दिव्य प्रकाश के इस विचार को नज़रअन्दाज करता रहा। पर इस विचार के बिना भी मैं ध्यान में गहरा चला जाता था। लेकिन कभी-कभी मैं सोचता कि ठीक है, आज मैं ठीक से ध्यान करूँगा। मैं लगातार दिव्य प्रकाश के बारे में ही सोचूँगा। और उस दिन ध्यान बिलकुल नहीं हो पाता ! केवल एक संघर्ष रहता।”

“दिव्य प्रकाश की अवधारणा अत्यन्त सूक्ष्म है,” दाजी बोले। “बाबूजी इसे चमकरहित प्रकाश कहते थे। अब इस परिभाषा में बहुत बड़ा इशारा है! पहली नज़र में यह हमें सिर खुरचने पर मजबूर कर सकता है। क्या चमक प्रकाश को परिभाषित करने वाला गुण नहीं है? फिर भी चमक को हटाकर देखने से हम कुछ महत्वपूर्ण बात सीखते हैं। हम सीखते हैं कि किसी भी प्रकार से दिव्य प्रकाश की कल्पना नहीं की जा सकती। यह विद्युत-प्रकाश नहीं हो सकता। यह मोमबत्ती का प्रकाश नहीं हो सकता। यह दिन का प्रकाश, नियॉन का प्रकाश या किसी भी भौतिक स्रोत का प्रकाश नहीं हो सकता। यह कोई ऐसी चीज़ नहीं जिसे हम देख सकते हों। तो फिर यह क्या है? यह कुछ ऐसी चीज़ है जिसे हम महसूस करते हैं।”

“इसीलिए इस प्रक्रिया में हम हृदय को शामिल करते हैं। आखिर हृदय महसूस करने वाला एक अंग है। दिव्य प्रकाश के बारे में सोचने का प्रयत-

इसे महसूस करने में आड़े आता है। यह हमें मानसिक पटल पर बाँधे रखता है और गहराई में जाने से रोकता है।”

“अतः इस विचार को हमें अत्यन्त सूक्ष्म ढंग से लेना पड़ता है। अधिक से अधिक हम स्वयं को हल्के से याद दिला सकते हैं कि हृदय में दिव्य प्रकाश मौजूद है और वह हमको भीतर, स्रोत की ओर आकर्षित कर रहा है। हम इसे शुरू में, एक बार करते हैं। असल में इतना करना भी अनावश्यक ही है। यह इतनी स्वाभाविक प्रक्रिया है कि हर चीज़ अपने आप होती है।”

मैंने पूछा, “ऐसा क्यों नहीं कि स्रोत पर ही ध्यान कर लिया जाये? दिव्य प्रकाश को भी बीच में क्यों लाया जाये?”

“स्रोत की धारणा आप मन में बनाओगे कैसे?” दाजी का जवाब था।

मेरे पास कोई जवाब नहीं रहा।

“स्रोत तो अनन्त है,” उन्होंने कहा। “विचार भी वहाँ नहीं पहुँचते। यहाँ तक कि अचेतन विचार भी नहीं। उसकी धारणा आप कैसी भी बनायें वह वास्तविक नहीं हो सकती।”

“दूसरी ओर, दिव्य प्रकाश समझ में तो आता है। यह सूक्ष्म हो सकता है लेकिन कम से कम हम इसे अनुभव तो कर सकते हैं। हम इसे अपने हृदय में महसूस कर सकते हैं। यह सूक्ष्म अहसास हमें और भीतर की ओर खींचता है। असल में यह हमें प्रकाश से परे ले जाकर स्वयं स्रोत पर ही ले आता है।”

मैंने कहा, “यानि दिव्य प्रकाश पर हमारे ध्यान करने का कारण यह है कि हम सीधे स्रोत पर ध्यान नहीं कर सकते।”

“बिलकुल,” दाजी बोले। “लेकिन वह प्रकाश स्रोत से आता है और साथ ही हमें स्रोत की ओर खींचता भी है। स्रोत की ओर बढ़ने की इस प्रक्रिया में हम गहरे, और गहरे ध्यान में डूबते जाते हैं। हम समाधि की गहरी से गहरी अवस्था प्राप्त करते जाते हैं।”

मैं बोला, “लेकिन एक सेकण्ड के लिए ज़रा पीछे चलें। ऐसा हमेशा नहीं होता कि हम अपनी आँखें बन्द करें और तुरन्त ही समाधि में चले जायें। इन दोनों के बीच प्रायः समय लगता है। और यही वह समय है जब लोग सबसे अधिक दिक्कत महसूस करते हैं क्योंकि भटकाने वाले अनेक विचारों से उन्हें निबटना पड़ता है। तो मेरा प्रश्न यह है कि अपने विचारों से हम कैसे निबटें?”

“हाँ, सबसे पहली शिकायत तो विचारों की ही है,” उन्होंने चुटकी ली। “लेकिन यह सोच कर आना कि मैं विचारहीन हो जाऊँ एक ग़लत दृष्टिकोण है। हम इन प्रचलित धारणाओं से बहक जाते हैं। जिस प्रकार कान का काम सुनना है, आँखों का काम देखना है, उसी प्रकार मन का भी काम सोचना है

जो प्राकृतिक है। कोई फ़िल्म देखने में जब आप लीन रहते हैं तो उस समय तो आप अपने विचारों से परेशान नहीं होते। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि आपको विचार नहीं आ रहे।”

“आप उन पर बस ध्यान नहीं देते,” मैंने कहा।

“सही कहा,” दाजी बोले। “क्योंकि आपका ध्यान पर्दे पर होने वाली गतिविधि पर अधिक है। ध्यान में भी यही होता है। जब हमारा ध्यान अपने विचारों की अपेक्षा हृदय पर अधिक होगा तो वे हमें परेशान नहीं करेंगे। ये और भी आसान हो जाता है जब आप अपने भीतर प्रकाश की उपस्थिति महसूस करने लगते हैं। हो सकता है कि आप यह न जान पायें कि जो आप महसूस कर रहे हैं वह दिव्य प्रकाश है। ठीक उसी तरह जैसे आपको अपने सोने के क्षण का भान नहीं होता, इसका भान भी आपको न होने पाये। यह बस हो जाता है। फिर आप विचारों से प्रभावित नहीं होते।”

“विचार और भावनाएँ समुद्र की सतह पर लहरों की तरह होती हैं। यह उस नाविक को परेशान कर सकती हैं जो सतह के ऊपर है लेकिन व्हेल को नहीं जो गहराई में तैरती है। गहरे ध्यान में हम उन्हीं गहराइयों में डूब जाते हैं। यहाँ तक कि जब तूफ़ान भी आता है तो वह सतह के ऊपर ही रहता है और हम अप्रभावित बने रहते हैं।”

मैंने फिर से पूछा, “लेकिन जब तक हम गहरे ध्यान में नहीं डूबते तब तक हम क्या करें? उस दौरान हम अपने विचारों से कैसे निबटें?”

“उन्हें स्वीकार कीजिए,” उन्होंने कहा। “यहाँ तक कि उनसे प्रेम भी कीजिए। विचार आपके दुश्मन नहीं हैं। यदि आप विचारों से लड़ेंगे तो निश्चित रूप से हार जायेंगे! आप जितना अपने विचारों से लड़ेंगे उतने ही शक्तिशाली वे हो जायेंगे। असल में यहाँ पर हम न्यूटन का तीसरा नियम लगा सकते हैं। भौतिक जगत् में हर क्रिया की बराबर और विपरीत प्रतिक्रिया होती है। मानसिक स्तर पर यह नियम अप्रत्याशित रूप से लागू होता है। विपरीत प्रतिक्रिया तो अभी भी होती है लेकिन बराबर नहीं। यह उसी अनुपात में नहीं होती। यह समुद्र में पत्थर फेंक कर सुनामी ले आने की तरह होती है। अतः विचारों से लड़ें नहीं। उन्हें बस रहने दें।”

“इसका यह भी मतलब नहीं है कि आप उन्हें खुली छूट दे दें। अक्सर हम कुछ विचारों से, जो हमें प्रभावित करते हैं अत्यन्त उत्तेजित हो जाया करते हैं। अपने नकारात्मक विचारों से हम चिन्तित भी हो जाते हैं। सोचना तो ठीक है लेकिन इसमें शामिल हो जाना बिलकुल ठीक नहीं है। सचमुच, विचार तो कमरे में लगे वॉलपेपर की तरह होने चाहिएँ। इसकी सुन्दर छपाई आपको पसन्द आ भी सकती है और नहीं भी। पर दोनों ही स्थितियों में यह आपके मन पर हावी नहीं होती। यह आपको अपनी गतिविधियाँ जारी रखने

से रोकती नहीं है। इसी तरह आपके विचार भी आपके ध्यान में बाधक नहीं होने चाहिए।”

“लेकिन कभी-कभी ऐसा लगता है कि विचार घात लगा कर हमला करते हैं,” मैंने कहा। “तब शान्त बने रहना मुश्किल हो जाता है।”

दाजी बोले, “बाबूजी कहा करते थे, “जब आप बोतल से शराब उड़ेलते हैं तो यह उसी रस्ते बाहर आती है जहाँ से यह अन्दर गयी थी। ध्यान में हमारे विचार भी बोतल से निकलती शराब के समान हैं। उनकी उपस्थिति का अहसास हमें भले ही न रहता हो पर साथ तो वे हमारे ही रहते हैं। अहसास हमें तभी होता है जब हम ध्यान कर रहे हों और उनका बाहर आना शुरू हो जाये। विचार निकलने के लिए ही आते हैं। इसलिए उन्हें आने दें।”

“कभी-कभी ध्यान में हम अत्यन्त भावुकता व तीव्र विचारों का अनुभव करते हैं। वे हमें हिला कर रख सकते हैं। कारण यह है कि सामान्य जीवन के चलते ऐसे विचारों और ऐसी भावनाओं को हम दबाते रहते हैं। जब आपको ऐसे विचार आते हैं जो आपके अनुसार ख़राब हैं तो आप कहते हैं, न, न, न!” और आप उन्हें अपने अवचेतन के खालीपन में धकेल देते हैं हालाँकि आपको उनसे छुटकारा नहीं मिलता। वे सूक्ष्म रूप से आपके अनुभवों में अपनी झलक दिखलाते हुए और आपके व्यवहार को ढालते हुए आपके ही भीतर बने रहते हैं। ध्यान के दौरान यह विचार पुनः सतह पर आ जाते हैं। ये हवा के उन बुलबुलों के समान होते हैं जो उबलते पानी के बर्तन में ऊपर आ जाते हैं। यह समझ कर कि वे आपको छोड़ने की प्रक्रिया में हैं, उन पर ध्यान न दें।”

“मुझे बड़ी खुशी होती है जब कोई अत्यन्त झाकझोर देने वाले ध्यान की शिकायत करता है क्योंकि इससे यह ज्ञात होता है कि उन्होंने कोई ऐसी चीज़ बाहर निकाल दी है जिसे उन्होंने भीतर पनाह दे रखी थी। इसलिए मैं समझता हूँ कि हमें अपने ध्यान के अनुभवों के मूल्यांकन से दूर रहना चाहिए। जो ज्यादा महत्वपूर्ण है वो वह अहसास है जो आप ध्यान पूर्ण होने के पश्चात् करते हैं न कि ध्यान के दौरान। ध्यान के वे दूरगामी प्रभाव ही हैं जिनके लिए हम सचमुच प्रयासरत रहते हैं।”

“लेकिन ध्यान में एक मुश्किल अनुभव को कैसे सँभाला जाये?” मैंने पूछा। “जैसे, जब आपके विचार आपके नियन्त्रण से बाहर हो जायें।”

दाजी ने कहा, “बस स्वयं को याद दिला दें कि आप ध्यान कर रहे हैं। इतना काफ़ी होना चाहिए। यदि इससे बात न बने तो 30 सेकण्ड या ऐसे ही कुछ समय के लिए अपनी आँखें खोल लें। इससे वह दशा चली जायेगी और फिर आप अपना ध्यान जारी रखें।”

“एक समय ऐसा भी आता है जब हम विचारहीन स्थिति में पहुँचते ही हैं। यह तब होता है जब हम आगे बढ़ते हुए चेतना के और अधिक सूक्ष्म क्षेत्रों में पहुँचते हैं। महान स्वामी विवेकानन्द ने एक बार कहा था, “चेतना तो दो महासागरों—अवचेतन और अधिचेतन के बीच की केवल एक परत मात्र है।” (विवेकानन्द : 2009)। आइए ज़रा इन दो शब्दों ‘अव’ और ‘अधि’ को देखें। चेतना के साथ उपसर्ग ‘अव’ लगा देने पर हम देखते हैं कि अवचेतन हमारी हमारी जागरूक चेतना से नीचे होता है। इसके विपरीत अधिचेतन हमारी जागरूक चेतना से ऊपर होता है। इस प्रकार अवचेतन और अधिचेतन दोनों ही हमारी जागरूक चेतना से परे हैं। फिर भी एक चेतना निचली चेतना है और दूसरी उच्च।”

“अवचेतन भी अधिचेतन की तरह ही विशाल होता है। असल में दोनों ही अनन्त हैं। योगाभ्यास के द्वारा हमारी जागरूक चेतना दोनों से ही होती हुई फैलती है। रात में जब हम सोते हैं तो हम अवचेतन के महासागर में गहरा गोता लगाते हैं। असल में यह योगनिद्रा की विशेष अवस्था के द्वारा होता है। इसकी चर्चा बाद में हम तब करेंगे जब हम प्रार्थना का विषय लेंगे। अवचेतन को शुद्ध करना भी ज़रूरी होता है। यह पुराने अनुभवों के अवशेषों से भरा पड़ा रहता है। यह हमारी निम्न प्रवृत्तियों और प्रेरणाओं का भी घर है। इस विषय की और गहराई में हम तब जायेंगे जब हम सफाई की विधि पर चर्चा करेंगे।”

“अब हम अधिचेतन की बात करते हैं। यह ईश्वरीय क्षेत्र है और ध्यान में हम इसके अनन्त आकाश में उड़ान भरते हैं। ज्ञान का उद्घव यहाँ से होता है। यही वो जगह है जहाँ से उत्तरकर प्रेरणा हमारे हृदय को छूती है। अधिचेतन में हम स्रोत की ऊर्जा से परिपूर्ण होते हैं।”

“ध्यान में हमारी जागरूकता अधिचेतन से होती हुई फैलती है। हो सकता है कि शुरू में हमें इसका बिलकुल भी अनुभव न हो। यह ऐसा होता है मानो हम गहरी निद्रा में हों। यह समाधि की पहली अवस्था होती है। लेकिन धीरे-धीरे हम अधिचेतन से परिचित हो जाते हैं और उस स्थिति में रहते हुए भी हम जागरूक बने रहते हैं। धीरे-धीरे हम इस पर प्रभुत्व हासिल कर लेते हैं। क्या तब भी यह अधिचेतना ही रहती है?”

“आपके कहने का क्या मतलब है?” मैंने पूछा।

“जब आप इसके प्रति जागरूक रहते हैं तो फिर यह आपकी जागरूक चेतना से ऊपर की चीज़ नहीं रह जाती। यह आपकी चेतना की सामान्य अवस्था हो जाती है। अधिचेतन कुछ ऐसी चीज़ है जो हमेशा परे ही रहती है। यह ऐसी चीज़ है जहाँ आप नहीं पहुँच सकते। हो सकता है कि जो अवस्था आपके लिए जागरूक चेतना की एक सामान्य अवस्था हो वह दूसरे के लिए अधिचेतना की कोई अवस्था हो।”

मैंने कहा, “तो यह एक सापेक्ष कथन है।”

“हाँ” उनका उत्तर था। “अधिचेतन अवस्था में जाने की इस प्रक्रिया को हम बिन्दु ‘A’ पर ध्यान व बिन्दु ‘B’ की सफाई करके तेज़ भी कर सकते हैं। परन्तु ये अभ्यास सर्वोत्तम तरीके से एक हार्टफुलनेस प्रशिक्षक द्वारा व्यक्तिगत रूप से तभी समझाए जा सकते हैं जब हम हार्टफुलनेस के अभ्यास में जम चुके हों।”

“अपनी यात्रा में हम अधिचेतना के भी पार चले जाते हैं। असल में हम समस्त चेतना को ही पार कर जाते हैं। चाहे हम अवचेतन की बात करें या फिर अधिचेतन की, चेतना तो अनन्त होती है। लेकिन उस अनन्त को एक दूसरे अनन्त से सहारा मिल जाता है जिसे हम ‘क्षमता’ (potentiality) कहते हैं।”

दाजी खड़े हुए और अपने सोने के कमरे में चले गये। एक मिनट के बाद वह बाबूजी द्वारा 1944 में लिखित पुस्तक ‘राजयोग का दिव्य दर्शन’ हाथ में लेकर आये। उन्होंने पढ़ना आरम्भ किया:

“चेतना हमारा लक्ष्य नहीं है। यह तो बच्चों के खेलने का एक खिलौना है। हमें उस बिन्दु पर पहुँचना है जहाँ चेतना अपना असली रूप (अर्थात् जैसा इसे होना चाहिए) धारण कर लेती है। हमें उस मूल घोल की खोज करनी है जिससे वास्तव में दवाइयाँ बनाई जाती हैं। हम उस क्षमता की खोज कर रहे हैं जो चेतना का सृजन करती है और आगर वह भी चली जाती है तो हम स्वयं को शुद्ध और सरल उस सच्ची वास्तविकता की कगार पर खड़ा पाते हैं। यह दर्शन इतना उच्च है कि शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता।”

दाजी ने पुस्तक बन्द कर दी। उन्होंने बताया, “और वास्तविकता एक दूसरा अनन्त है जो ‘क्षमता’ को सहारा देता है। तो देखें कि हमारे विकास में एक क्रम है जो अनन्त सूक्ष्मता की ओर बढ़ता है। हम चेतना से आरम्भ करते हैं, ‘क्षमता’ की ओर बढ़ते हैं और अन्ततः वास्तविकता में प्रकट होते हैं। और हमें उसके भी पार जाना चाहिए।”

ध्यान कितनी देर करें

हार्टफुलनेस ध्यान आरम्भ करने से पहले मैं एक बार में ठीक बीस मिनट ध्यान किया करता था। मैं अलार्म लगाकर तब तक आँख बन्द किये बैठा रहता था जब तक कि वह बज नहीं जाता था। शायद यह मैंने ध्यान की उस कक्षा से सीखा था जहाँ मैं जाया करता था और जहाँ प्रशिक्षक ध्यान समाप्त होने पर घण्टी बजाया करता था।

जब मैंने हार्टफुलनेस ध्यान करना शुरू किया तो बीस मिनट के लिए अलार्म लगा लेने की अपनी आदत को जारी रखा। लेकिन इस अलार्म ने जल्द ही मुझे परेशान करना शुरू कर दिया क्योंकि यह तब बज जाया करता था जब मैं ध्यान में डूबा होता था। इसलिए मैंने फिर एक घण्टे का अलार्म लगाना शुरू कर दिया। लेकिन तब मैंने पाया कि घण्टी बजने से ठीक पाँच मिनट पहले ही मैं स्वाभाविक रूप से ध्यान से बाहर आ जाया करता था। जल्द ही मुझे ऐसा लगा कि अलार्म मेरी प्रक्रिया में केवल बाधा ही डाल रहा था और फिर मैंने इसका कभी इस्तेमाल नहीं किया।

मैंने दाजी को इन आरम्भिक अनुभवों के बारे में बताया तो वह बोले, “हाँ, पहले ही कोई समय सीमा निर्धारित कर लेना बहुत बनावटी होता है। असल में ध्यान में हमें कोई एजेंडा निर्धारित नहीं करना चाहिए। हमें कोई शर्त नहीं लगानी चाहिए। हमें तो विस्मय और अज्ञानता की हालत में स्वयं को खुला रखना चाहिए।”

“कभी-कभी हम सोच सकते हैं कि मुझे काम पर जल्दी जाना है इसलिए मैं बस पन्द्रह मिनट ही ध्यान करूँगा। देने वाला आपकी समयबद्धता भली-भाँति जानता है। शायद वह आपका ध्यान तीस सेकण्ड में ही समाप्त करवा दे लेकिन आप हैं कि पन्द्रह मिनट के पीछे पड़े हैं।”

मैंने कहा, “लेकिन इस मामले में देने वाले से ज्यादा उदार तो मैं हूँ, “क्योंकि उन्हें केवल तीस सेकण्ड चाहिए लेकिन मैं उन्हें 15 मिनट दे रहा हूँ।”

“हो सकता है,” दाजी बोले, “लेकिन आपके विचार उन पन्द्रह मिनटों में क्या होगा? असीमित पर ध्यान करने के बजाए आप समय के ऊपर—सीमित पर—ध्यान करेंगे। आप हर समय इस बात के प्रति जागरूक रहेंगे कि कुछ ही मिनट में आपको खड़े हो जाना है। आप ध्यान की मात्रा पर ध्यान कर रहे होंगे गुणवत्ता पर नहीं! अगर कोई गुणवत्ता नहीं है तो क्या मात्रा किसी काम की होगी?”

मैंने कहा, “कभी-कभी जब मैं ध्यान करता हूँ तो मुझे लगता है कि यह बड़ी जल्दी पूरा हो गया है। और कभी मैं देखता हूँ कि पूरा एक घण्टा गुजर चुका है। ध्यान पूरा कैसे होता है?”

दाजी ने कहा, “जब आप चेतना की सन्तोषजनक गहराई को छू लेते हैं तो यह पूरा हो जाता है। बाबूजी ने एक घण्टा बताया था। जब लोगों ने शिकायत करना आरम्भ कर दिया तो उन्होंने घटा कर इसे आधा घण्टा कर दिया। लेकिन उन्होंने कहा कि एक घण्टा ही सबसे अच्छा था। उन्होंने देखा कि ध्यान में सन्तोषजनक गहराई तक पहुँचने में लोग अक्सर यही समय लेते हैं।”

“लेकिन इस विचार को बाँध न लें कि ‘ठीक है, अब मैं एक घण्टा ही ध्यान करूँगा!’ ऐसे में भी आप समय के विचार पर ही ध्यान कर रहे होंगे, दिव्य प्रकाश पर नहीं। इसलिए समय को भूल जायें! बस ध्यान करें।”

मैंने कहा, “मुझे बताया गया है कि बाबूजी ने कभी एक बार में एक मिनट या दो मिनट से ज्यादा ध्यान नहीं किया।”

दाजी ने बताया, “वह एक ही क्षण में अपनी आन्तरिक गहराईयों में डूब सकते थे। यदि आपको इतना ही समय लगता है तो यह पर्याप्त है। और यदि आपको एक घण्टा लगता है तो यह भी अच्छा है।”

मैंने कहा, “क्या होगा यदि आप कोई गहराई प्राप्त ही न कर पायें? एक घण्टे में भी।”

“इसे अगले वक्त के लिए सँभाल कर रखें,” दाजी ने कहा। “तो आज ये नहीं हो पाया। ठीक है, कल फिर सही। या आपके अन्दर अगर इतना ही जोश है और समय भी है, तो दोबारा ध्यान करें। लेकिन कुछ देर रुक कर। कम से कम पन्द्रह मिनट बाद। इस पन्द्रह मिनट के अन्तराल के बिना ध्यान का प्रभाव थोड़ा नकारात्मक होगा।”

मैंने पूछा, “कितनी जल्दी हम गहराई में उतर जायेंगे, यह किस बात से निर्धारित होता है?”

“यह आपकी जागरूकता के झुकाव और चेतना के लचीलेपन पर निर्भर करता है,” वह बोले। “कल्पना कीजिए कि चेतना एक बड़ा वृत्त है जिसका केन्द्र हमारे अस्तित्व का केन्द्र अर्थात् परम् स्रोत है और जिसकी परिधि हमारी सतही स्तर की जागरूकता है। यह हमारी चेतना का सामान्य स्तर है जिसमें रहकर हम इन्द्रियों के माध्यम से दुनिया के साथ आदान-प्रदान करते हैं।”

“हमारा ध्यान प्रायः एक ही ओर लगता है। एक समय में यह एक ही दिशा में जाता है। ध्यान में यह भीतर केन्द्र की ओर बढ़ता है तथा हमारी दैनिक गतिविधियों में यह केन्द्र से दूर, बाहर की ओर, प्रवृत्त होता है। परिधि की ओर इसका बहाव इन्द्रियों के माध्यम से होता है।”

“यदि आपकी चेतना चपल और लचीली है तो यह आसानी से अपनी दिशा बदल सकती है। लेकिन यदि आपकी चेतना भारी-भरकम है तो यह एक बड़े माल-वाहक पानी के जहाज की तरह होगी जिसे धुमाने मात्र के लिए चार-चार जहाजों की ज़रूरत होती है। जब हम बाहरी झुकाव के आदी हो जाते हैं तो हम अपनी जागरूकता को भीतर की ओर मोड़ने में दिक्कत महसूस करते हैं। तब ध्यान में थोड़ा ज्यादा समय लग जाता है। लेकिन नित्य अभ्यास और प्राणाहुति की मदद से हमारी चेतना चपल और लचीली हो जाती है और तब हम मर्जी से किसी भी दिशा में जा सकते हैं।”

“जैसे-जैसे हम और विकास करते हैं, चेतना आगे-पीछे कूदना और बाहर-भीतर होना बन्द कर देती है। एक ही दिशा में जाने की इसकी प्रवृत्ति रुक जाती है। बल्कि यों कहें कि यह एक ही साथ दोनों दिशाओं में फैलना आरम्भ कर देती है। आप जागरूक रहते हैं कि बाहर आपके चारों ओर क्या हो रहा है और साथ ही आप भीतर स्रोत की ओर भी बढ़ रहे होते हैं। इससे भी बढ़कर आप को यह भी मालूम रहता है कि दोनों के बीच क्या हो रहा है। आपका झुकाव न तो भीतर की ओर होता है और न ही बाहर की ओर। आपकी चेतना विस्तृत हो जाती है और आपका ध्यान सबको समाविष्ट कर लेता है।”

“जब स्थिति ऐसी हो तो ध्यान में कोई हलचल नहीं होती। आप केन्द्र यानि स्रोत में भी डूबे रहते हैं और बाहर के प्रति भी जागरूक रहते हैं। इसका यह अर्थ है कि आपको ध्यान करने के लिए अपनी चेतना को भीतर की ओर मोड़ना नहीं पड़ता। असल में अब ध्यान करने की ज़रूरत नहीं रह जाती। आप ध्यान की स्थाई अवस्था में रहने लगते हैं। जब आप पहले से ही ध्यान में हैं तो आपको बैठकर ध्यान करने की ज़रूरत ही क्यों होगी?”

“आपने गौर किया होगा की पूर्व की चित्रकला में आध्यात्मिक आकृतियों को प्रायः ध्यान की मुद्रा में ही दर्शाया जाता है। भगवान बुद्ध के चित्रण में हम प्रायः इसे देखते हैं। वह हमेशा बैठे रहते हैं, शान्त। ज्ञानी लोग यद्यपि लगातार ध्यान में नहीं बैठते। वे जीवन की क्रियाओं में सक्रिय और व्यस्त रहते हैं। उदाहरण के लिए आपात् कक्ष की किसी डॉक्टर को ले लीजिए जो एक के बाद एक मरीजों को देख रही है। अपनी तनावपूर्ण स्थिति के बावजूद वह शान्त है। स्रोत से उसका सतत् सम्पर्क उसे आन्तरिक शान्ति प्रदान करता है जो चारों ओर के कोलाहल में व्याप्त हो जाती है। अपनी दबाव पूर्ण परिस्थितियों के बावजूद भी वह ध्यान में है। वह बुद्ध की मूर्ति कि भाँति बैठी हुई नहीं है लेकिन उसकी चेतना बुद्ध की भाँति हो गयी है। उसने ध्यान में स्थायित्व प्राप्त कर लिया है। इसी को ध्यानावस्था कहते हैं।”

“ध्यान के इस अभ्यास को जीवन भर जारी रखना ज़रूरी नहीं होना चाहिए। हर एक के साथ स्थिति अलग होती है। लेकिन यदि बीस या तीस साल के बाद भी हमें इस दैनिक क्रिया की ज़रूरत पड़ती है तो ज़रूर हमारी पहुँच में कुछ गड़बड़ है।”

मैंने पूछा, “तो विकसित व्यक्ति हमेशा ही ध्यान की मुद्रा में क्यों दिखाए जाते हैं? क्या यह केवल एक प्रतीक मात्र है?”

“बिलकुल, यह प्रतीक ही है,” दाजी ने कहा। “पर हम यह भी देखते हैं कि जिन्हें ध्यान करने की ज़रूरत ही नहीं है वे भी अपने ध्यान के अभ्यास को

जारी रखते हैं। हर सुबह वे अब भी ध्यान के लिए बैठते हैं। अब भला वे ऐसा क्यों करते हैं? क्या वे यह इसलिए करते हैं कि उन्हें इसमें आनन्द आता है? क्या यह एक आदत है? या फिर एक औपचारिकता?”

दाजी रुके और फिर बोले, “आप इस पर विचार कर सकते हैं।”

ध्यानावस्था

दाजी ने कहा, “आपका ध्यान कभी समाप्त नहीं होना चाहिए।”

उनके शब्दों से लम्बी चुप्पी छायी रही। “बेशक इसका यह मतलब नहीं कि आप फिर उठें ही नहीं! आप पूरे दिन लगातार ध्यान में नहीं बैठ सकते लेकिन अपने सारे क्रिया-कलापों में आप ध्यानावस्था में बनाए रख सकते हैं। आपका जीवन ही एक ध्यान हो जाता है, गतिशील और आगे बढ़ता हुआ। यह खुली आँखों से ध्यान है। आप ध्यान में बैठे नहीं होते पर फिर भी आप ध्यान कर रहे होते हैं।”

“भारत में ‘ब्रह्म’नाम की हमारी एक धारणा है। परम्परा के अनुसार ब्रह्म भगवान के समान है। उसे अन्तिम सत्य, सर्वोच्च अस्तित्व या जो कुछ भी आप कहना चाहें, कहा जाता है। फिर भी यदि हम शब्द की उत्पत्ति को देखें तो दूसरी ही कहानी सामने आती है। ‘ब्रह्म’ संस्कृत के दो मूल शब्दों, ‘ब्रूह’ और ‘मन’ से बना है। ब्रूह का अर्थ है विस्तार और मन का अर्थ है सोचना या मनन करना। अतः ब्रह्म का शाब्दिक अर्थ हुआ, ‘वह जो विस्तार करता है और मनन करता है’।”

“आइए जरा पीछे चलते हैं। क्या आपको याद है कि किस तरह मैंने चेतना का वर्णन एक बड़े वृत्त के रूप में किया था?”

“हाँ,” मैंने कहा।

फिर दाजी ने बताया, “वृत्त का केन्द्र हमारे अस्तित्व के मूल का प्रतिनिधित्व करता है और परिधि हमारी वाह्य जागरूकता को दर्शाती है। एक समय आता है जब चेतना दोनों दिशाओं में—केन्द्र की ओर और परिधि की ओर, एक साथ फैलती है। सही अर्थों में इसी को ब्रह्म कहते हैं। यह विस्तार है लेकिन इसी में सोचना भी है क्योंकि मन जो सोचने का कार्य करता है वह चेतना के ही भीतर होता है।”

मैंने कहा, ‘तो अधिकतर लोग ब्रह्म को जैसा समझते हैं, वास्तविकता उससे कहीं अलग है।’

“हाँ,” दाजी बोले। “हमने उस चीज़ में मानवीय समझ लगाई है जो समझ से परे है। देखिए, सुकरात को मारने का एक कारण यह भी था कि

उसने ईश्वर को मनुष्य का प्रक्षेपण बताया। उसने महसूस किया कि ईश्वर की प्रस्तुति मानवीय गुणों के साथ की जा रही थी। इसलिए उसने निष्कर्ष निकाल लिया कि वह मानवीय प्रक्षेपण है।”

“जब यूनान में यह सब चल रहा था तब भारत में भी यही घट रहा था। यह अभी भी घट रहा है और केवल भारत में ही नहीं घट रहा। यह मानव प्रकृति का अजीब-सा पक्ष है कि हम सभी को मानव गुणों से लाद देते हैं, भगवान को भी। देखिए, ‘आत्मन्’ व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होने वाला एक संस्कृत शब्द है। आत्मन् का शाब्दिक अर्थ है ‘वह जो चलता है और सोचता है।’ तो आप देख सकते हैं कि मनुष्य की परिभाषा ईश्वर की प्राचीन परिभाषा से कितनी मिलती है। अन्तर केवल इतना है कि एक फैलता है जबकि दूसरा केवल चलता है।”

“वे इतने मिलते-जुलते क्यों हैं? कारण यह है कि लोगों ने सोचा कि ईश्वर हमारी तरह ही होना चाहिए, बस हमसे बड़ा। यदि व्यक्ति चलता है तो ईश्वर बड़ा होने के कारण फैलना चाहिए क्योंकि फैलना चलने मात्र से बड़ा होता है। इसलिए उन्होंने परम् को लिया और अपनी मानवीय समझ के अनुसार उसे ‘ब्रह्म’ नाम दे दिया।”

“वास्तविकता में ब्रह्म परम् नहीं है। यह वो स्थिति है जिसमें चेतना मनन करती है और विस्तृत होती है। परम् तो इससे परे, बहुत दूर है। परम् अपरिवर्तित है और इसलिए फैल या सिकुड़ नहीं सकता या मनन नहीं कर सकता।”

मैंने कहा, “तो ध्यानावस्था में हमारी चेतना ब्रह्म के गुण प्रदर्शित करती है लेकिन वह परम् अवस्था नहीं है।”

“सही कहा,” दाजी बोले। “हमें ब्रह्म से परे जाना है। और उसके लिए भी एक शब्द है ‘परब्रह्म’ जिसका अर्थ है ‘ब्रह्म से परे’ और परब्रह्म की स्थिति भी हमारी यात्रा में एक अवस्था मात्र है। यह अन्त नहीं है। ध्यान की अवस्था विकसित होती रहती है। यह और बेहतर और सूक्ष्मतर होती जाती है जब तक कि यह परम् स्थिति में विलीन नहीं हो जाती। लेकिन यह तब तक विकसित नहीं हो सकती जब तक कि हम इसे शुरू से ही न बनायें।”

कुछ चिन्तन करते हुए दाजी रुके।

फिर बोले, “मैं नहीं समझता कि ध्यान से सचमुच कोई सन्तुष्ट हो पायेगा अगर उसका प्रभाव स्थाई न हो पाये। गहरा ध्यान किस काम का अगर यह आपके दैनिक अनुभव का रूप न बदल सके? ऐसे में तो ध्यान एक टूटे पेंदे वाली बाल्टी के द्वारा कुएँ से पानी खींचने के समान हो जायेगा।

क्योंकि इसे बनाए रखते हुए आप अपने जीवन में विलीन कर देने में सक्षम नहीं हैं।”

मैंने पूछा, “ध्यान के प्रभाव को हम कैसे बनाए रखें?”

“पहला कदम तो यह है कि ध्यान किया जाये,” उन्होंने कहा। “ध्यान ही ध्यानावस्था की जननी है। माँ के बिना बच्चा नहीं हो सकता और ध्यान के बिना ध्यानावस्था नहीं हो सकती। बार-बार ध्यान करने से हम ध्यान में स्थायित्व प्राप्त कर लेते हैं। नित्य ध्यान से आप निरन्तर वह ध्यानावस्था प्राप्त करते जाते हैं। इंट-इंट जोड़ने की तरह ध्यान-ध्यान जोड़ कर आप इसे बनाते हैं। यदि आप लगातार ध्यान नहीं करते तो यह अवस्था फीकी पड़ने लगती है।”

“और तब आपको इसे पुनः बनाना पड़ता है,” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी ने कहा। “यह एक पौधे के समान है जिसे रोज पानी और धूप की ज़रूरत होती है। यदि आप इसकी उपेक्षा करते हैं तो आपको इसमें पुनः जान डालनी पड़ेगी। नहीं तो यह कैसे पनपेगा?”

“लेकिन ध्यान करना ही पर्याप्त नहीं है। ध्यान की उस चेतना को अपनी जागृति में लाना होगा। यह इस बात पर निर्भर करता है कि ध्यान के तुरन्त बाद के चन्द मिनटों में हम स्वयं को किस प्रकार रखते हैं। एक ताजा ध्यानावस्था गीली सीमेंट की भाँति होती है। इससे पहले कि आप इसे अपनी दिनचर्या में शामिल कर सकें इसे जमने में भी कुछ समय लगता है। यदि ध्यान समाप्त होते ही आप अपनी कुर्सी से उठ जाते हैं तो चेतना की वह ध्यानावस्था क्षत-विक्षत हो जाती है। यह उसे हवा में उड़ा देने के समान होगा। यह कठिन परिश्रम करके तनखाह में मिले चेक को कूड़ेदान में फेंक देने के समान होगा! यदि आप यही करने जा रहे हैं तो फिर आप ध्यान करते ही क्यों हैं?”

“तो फिर आपकी क्या सलाह है?” मैंने पूछा।

उन्होंने कहा, “ध्यान के बाद अपनी आँखें बहुत धीरे से खोलें और फिर कुछ मिनटों तक अधखुली आँखों से ध्यान में ही रहें। ये बहुत ज़रूरी हैं। उन चन्द मिनटों में आप यह न सोचें कि आज दिन भर क्या करना है। अपने फ़ोन पर सन्देश न देखें। आप अभी भी ध्यान में हैं, बस हल्की-सी खुली आँखों से। कुछ मिनट ऐसे ही रहें जब तक कि आप स्वयं को अपने चारों ओर पूरी तरह से उपस्थित महसूस न करें।”

“लेकिन तब भी शुरू में थोड़ा ही हिले-डुले। स्थिर बने रहें। ध्यानावस्था में रहें। परेशान करने वाली किसी भी चीज़ पर बिलकुल ध्यान न दें। आपको गहरे समुद्र के गोताखोर की तरह होना चाहिए जो धीरे-धीरे गहरे पानी से

ऊपर आता है। किसी भी प्रकार की जल्दबाजी नहीं करनी है। यहाँ तक कि ध्यान के तुरन्त बाद पानी पीने से भी दूर रहें।”

“क्यों?” मैंने पूछा।

“दाजी ने कहा, ‘जब भी कोई व्यक्ति परेशान होता है तो पानी का एक गिलास उसे शान्त करने में मदद करता है। इससे मालूम पड़ता है कि पानी हमारी आन्तरिक दशा बदल सकता है। यह तो तब अच्छा हो सकता है जब कोई परेशान हो लेकिन ध्यान के बाद तो हम अपनी दशा को सँभाल कर रखना चाहेंगे। हम इसे बदलना नहीं चाहेंगे। इसलिए कुछ मिनटों तक हम पानी नहीं पीते। इसी तरह अगर हमने चलते हुए पंखे में ध्यान किया है तो हमें वह पंखा कुछ देर तक चालू ही रखना चाहिए। इसे एकदम बन्द नहीं करना चाहिए। और यदि ध्यान के दौरान यह बन्द था तो बन्द ही रखना चाहिए। जब तक ध्यान की वह दशा सुरक्षित न हो जाये हमें ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जो इसे बिगाड़ दे। वे चन्द मिनट निर्णायक होते हैं। वे आपके पूरे दिन की गुणवत्ता निर्धारित कर देते हैं।’”

मैंने पूछा, “इन चन्द मिनटों में ऐसा क्या हो जाता है जो इनको इतना महत्वपूर्ण बना देता है?”

“आपकी ध्यानपूर्ण चेतना आपकी सामान्य जागृत अवस्था में समाती है,” दाजी ने बताया। “कुछ मिनट खुली आँखों से ध्यान करने पर जब तक आप जागृत अवस्था के साथ तालमेल बैठाते हैं आपकी चेतना ध्यान में बनी रहती है। कुछ ही देर में दोनों अवस्थाएँ साथ हो जाती हैं। आप भीतर डूबे रहते हैं और अपने चारों ओर के प्रति पूर्ण सजग भी रहते हैं। ध्यान की क्रिया को ध्यानावस्था में परिवर्तित करने का यह एक पहलू है।”

“जब हम ध्यान करते हैं तो हम नयी आन्तरिक दशाएँ प्राप्त करते हैं। एक दशा प्राप्त करना एक घर की लीज पर हस्ताक्षर करने जैसा है। आप वहाँ रह सकते हैं पर इसका अर्थ यह नहीं कि आप उसके मालिक हो गये हों। यदि आप उसके मालिक नहीं हैं तो क्या आप उसमें स्थायी रूप से रह सकते हैं? तो देखिए कि हमें इन दशाओं को अपना बना लेने का तरीका निकालना पड़ेगा। नहीं तो यह मुट्ठी से पानी पकड़ने की तरह होगा। यह आपकी ऊँगलियों से रिस कर गायब हो जायेगा।”

मैंने पूछा, “किसी दशा का मालिक बनने का सर्वोत्तम तरीका क्या है?”

“पहला कदम तो अपनी दशा के प्रति जागरूक होना है। हमें इस बात के प्रति जागरूक होना चाहिए कि हमें कुछ मिला है। इस जागरूकता को विकसित करने का सर्वोत्तम समय ध्यान के ठीक पश्चात् है। जब ध्यान समाप्त हो जाये तो स्वयं के ऊपर बस गौर करें। स्वयं पर बारीकी से गौर

करें। आप कैसा महसूस कर रहे हैं? हमारी दशा विभिन्न प्रकार से प्रकट हो सकती है। इसके लिए डायरी एक अत्यन्त उपयोगी उपकरण हो सकती है। क्योंकि यदि आपको अपनी दशा के बारे में लिखना पड़े तो स्वाभाविक है कि आप इसके प्रति सजग रहेंगे। और जब आप सजग रहते हैं तो आपकी जागरूकता और भी बारीकी से लयबद्ध हो जाती है। इससे आपकी संवेदनशीलता बढ़ती है। आरम्भ में कई लोग कहते हैं कि उन्हें नहीं मालूम कि क्या लिखें। हो सकता है कि पहली बार आप केवल एक वाक्य या एक शब्द ही लिखें। लेकिन कुछ हफ्तों के बाद आप एक पैराग्राफ़ लिख सकते हैं। और फिर जल्द ही आप विस्तृत वर्णन करते हुए पेज भर सकते हैं।”

“अपनी दशा के प्रति हम जितना सजग होंगे उतना ही इसकी गहराई और तीव्रता का अनुभव कर पायेंगे। नई दशा एक बीज के समान होती है। यह बहुत ही छोटे रूप से आरम्भ होती है और धीरे-धीरे खुलती जाती है। यह भीतर से फैलती है और जीवन्त हो जाती है। हमारा पूरा अस्तित्व इसके साथ स्पन्दित होता प्रतीत होता है। जब दशा पर्याप्त रूप से जीवन्त हो उठती है तो यह उच्चतम स्थिति को प्राप्त कर एक नया मोड़ ले लेती है। अब हम इसे अवशोषित करना आरम्भ कर देते हैं। हम इसे आत्मसात कर लेते हैं। यह हमारा हिस्सा बनने लगती है। जब यह हमारा हिस्सा बन जाती है तो हमारे विचार, हमारे अहसास और हमारे कार्य इसके विशिष्ट गुणों को प्रदर्शित करने लगते हैं। इस प्रक्रिया का एक अत्यन्त दिलचस्प पक्ष यह है कि इस दशा को हम जितना आत्मसात करते जायेंगे यह उतनी ही कम तीव्र होती जायेगी। इसका अहसास क्षीण होने लगेगा। अन्ततः हम इसे महसूस करना ही बन्द कर देंगे। हो सकता है कि तब हम ऐसा सोचें कि हमने इसे खो दिया है! लेकिन यदि आप बारीकी से स्वयं का निरीक्षण करेंगे तो पायेंगे कि यह खोई नहीं है। उसे महसूस करने के बजाए आप वह बन रहे हैं।”

“उदाहरण के लिए, जब आप खाना खाते हैं तो क्या होता है? आरम्भ में उस खाने की उपस्थिति आप पेट में अनुभव करते हैं। लेकिन जब खाना पच जाता है तो उसकी उपस्थिति आप अपने तन्त्र में महसूस नहीं करते। यह आपका हिस्सा बनने लगता है। इसी प्रकार किसी दशा का अनुभव केवल यह सिद्ध करता है कि वह अभी तक आपका हिस्सा नहीं बनी है। वह अभी भी बाहरी है। वह अभी भी नयी है। जब सचमुच वह आपका हिस्सा बन जायेगी तो आप उसे बिलकुल महसूस नहीं कर पायेंगे। जैसा बाबूजी कहा करते थे कि आँख खुद को नहीं देख सकती।”

“वह तो स्वयं ही वह है।” मैंने कहा।

“बिलकुल,” दाजी बोले। “उस परिस्थिति में दशा सचमुच सुरक्षित हो जाती है। यह आपकी हो चुकी होती है। महसूस न करने की इसी दशा में

आप बने रहते हैं जब तक कि आपका हृदय कुछ नये के लिए न तड़पने लगे। यही तड़प अगली दशा को उद्यत करती है।”

“और पूरा चक्र पुनः दोहराया जाता है,” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी बोले। “दशा को जीवन्त बनाने, आत्मसात करने और सुरक्षित रखने की पूरी प्रक्रिया हमारी दूसरी प्रकृति बन जानी चाहिए। आखिरकार इस यात्रा पर चलने के लिए दशाएँ भी तो बहुत सारी हैं। जैसे-जैसे हम बढ़ते हैं तो हम यह भी पाते हैं कि हर दशा पहली वाली दशा से अधिक महीन तथा सूक्ष्म है। जब तक हमारा संवेदन भी लगातार महीन नहीं होगा, ये अति महीन दशाएँ हमारी पकड़ में बिलकुल नहीं आयेंगी। और तब हम उन्हें जीवन्त नहीं कर पायेंगे। उनके साथ एक होकर उन्हें आत्मसात करने और सुरक्षित रखने की बात तो उसके बाद की है।”

मैंने पूछा, “अपनी संवेदनशीलता को हम और सूक्ष्म कैसे बना सकते हैं?”

“यह एक नयी भाषा सीखने के समान है,” दाजी ने कहा। “धीरे-धीरे हम इसे पकड़ने लगते हैं लेकिन तभी जब हम अपने ऊपर गौर करते हैं और हर आने वाली दशा पर बड़ी उत्सुकतापूर्वक ध्यान देते हैं। और इसका वर्णन मैं पहले ही कर चुका हूँ कि हमें यह कैसे करना है। लेकिन यह आदत हमें जल्दी से जल्दी बना लेनी चाहिए क्योंकि उच्च स्तरों पर दशाएँ इतनी सूक्ष्म होती हैं कि उन्हें महसूस करना लगभग असम्भव हो जाता है। यदि हम उन्हें महसूस नहीं कर पाते तो उनका विस्तार थम जाता है और हम आगे नहीं बढ़ पाते। परन्तु आपकी यात्रा के दौरान यदि आपकी आन्तरिक संवेदनाएँ उन्नत होकर लयबद्ध होती जा रही हैं तो आप उन अत्यन्त महीन दशाओं के साथ कार्य कर पायेंगे। उनसे होते हुए आप और भी महीन अवस्थाओं की ओर बढ़ेंगे और अन्ततः सूक्ष्मतम् दशा ‘दशा रहित दशा’ पर पहुँच जायेंगे।”

मैंने कहा, “जिन्दगी की दौड़-भाग में हम प्रायः भटक जाते हैं। उस समय ऐसा लग सकता है कि हम वह दशा खो रहे हैं जो हमने ध्यान में प्राप्त की थी। क्या दोबारा ध्यान किये बगैर हम इसे वापस पा सकते हैं?”

“दोबारा ध्यान करने की आपको आवश्यकता नहीं,” दाजी बोले। “बस एक पल के लिए जरा रुकें, अपनी आँखें बन्द करें और स्वयं को अपने हृदय से पुनः जोड़ लें। यह स्वतः ही आपकी दशा वापस ला देगा। या फिर आप सचेत होकर यह याद करें कि वह दशा कैसी थी। उसे याद करके हम उसे पुनः निर्मित कर लेते हैं। गहरे ध्यान की अवस्था में जाने के लिए सुबह आपको पूरा एक घण्टा लग गया होगा। लेकिन अब कुछ ही सेकण्डों में आप स्वयं को समाधि की दहलीज पर पा सकते हैं।”

मैंने पूछा, “एक दशा जिसे विकसित होने में एक घण्टा लग गया, उसे सिर्फ कुछ ही क्षणों में पुनर्निर्मित कैसे किया जा सकता है?”

“आपने अपने सुबह के ध्यान में पहले ही रास्ता बना डाला है,” दाजी ने कहा। “रास्ता बन चुका है, आपको तो उस पर अब केवल चलना है। आप बस अपने हृदय की मदद लें और यह हो जाता है। और जितना आप ध्यान करते हैं उतना ही यह आसान होता जाता है।”

ध्यान

- आराम से किसी ऐसे स्थान पर बैठें जहाँ आप बिना किसी शोरगुल या भटकाव के ध्यान कर सकें। हो सके तो रोज एक ही स्थान और एक ही समय पर बैठें।
- हल्के से अपनी आँखें बन्द करें। यह सोचते हुए कि आपके हृदय में दिव्य प्रकाश उपस्थित है जो आपको भीतर से आकर्षित कर रहा है, अपनी जागरूकता को हृदय में केन्द्रित कर दें। जागरूक बने रहते हुए शिथिल हो जायें। हो सकता है कि आप जागरूकता से परे और भी गहरी अवस्था में जाकर भी शिथिल हो जायें।
- ध्यान में ही रहें जब तक कि आपको यह न लगने लगे कि यह पूरा हो गया है। ध्यान के बाद धीरे से अपनी आँखें खोलें। कुछ और मिनटों तक ध्यान में ही रहें लेकिन थोड़ी-सी खुली आँखों से। स्थिर रहें और देखें कि आपको कैसा महसूस हो रहा है। यह अवलोकन अपनी डायरी में लिख लें। जब आपको लगे कि आप तैयार हैं तो आप खड़े हो सकते हैं और अपनी दिनचर्या में लग सकते हैं।

4.

सफाई



सफाई की विधि हार्टफुलनेस का एक मूल अभ्यास है। इसका उद्देश्य सोच के तरीकों, भावनात्मक प्रतिक्रियाओं और व्यावहारिक प्रवृत्तियों से हमें मुक्त करना है। सफाई के परिणाम स्पष्ट तथा तुरन्त होते हैं। मेरे अनुभव में, इस विधि का उपयोग कुछ मिनट करने से ही गहन परिणाम मिलते हैं। मैंने यह पाया है कि यह तत्काल ही मेरे रवैये को परिवर्तित, मनोदशा को बेहतर तथा दृष्टिकोण को व्यापक कर देती है। बीते वर्षों में इसने मुझे सोच के विभिन्न तरीकों, गहरी भावनाओं और यहाँ तक कि अपरिवर्तनशील व्यवहार तक से बाहर आने में कई बार मदद की है।

सफाई के इन्हें प्रभावी होने का एक कारण यह है कि यह लक्षण और कारण दोनों का निराकरण करती है। यह मानसिक और भावनात्मक जटिलताओं से हमें केवल मुक्त ही नहीं कराती बल्कि इन्हें जड़ से मिटा भी देती है।

“सफाई की विधि हमारे परिवर्तन में कैसे कार्य करती है?” मैंने दाजी से पूछा।

“आओ हम उस समस्या को समझें जिसका हम सामना करते हैं” उन्होंने कहा। “हम देखते हैं कि जब पानी लगातार एक ही मैदान में बहता रहता है तो धीरे-धीरे अपने लिए एक रास्ता तैयार कर लेता है। आखिरकार, वह एक तेज बहाव वाली नदी बन सकता है। इसी प्रकार, जब हम लगातार किसी चीज़ के बारे में सोचते हैं तो हमारे विचार हमारे मन में एक चैनल बना लेते हैं। जब भी हमारे विचार वहाँ से गुज़रते हैं तो उस चैनल को और गहरा कर वे हमारे विचारों को बार-बार उसी तरह से गुज़रने के लिए आसान रास्ता बना देते हैं। इस तरह अकेला एक विचार सोचने की प्रवृत्ति बना सकता है।”

“हमारे मन में ऐसे असंख्य चैनल होते हैं। वे एक व्यापक और जटिल जाल बना देते हैं। जब हमारी सोच लीक पर चलने वाले रास्तों तक सीमित हो जाती है तब वह संकुचित किस्म की और पुनरावृत्ति वाली हो जाती है। तब हमारी पसन्द अति विशिष्ट और मान्यताएँ कठोर हो जाती हैं। अब क्योंकि विचार से क्रिया उत्पन्न होती है, हमारी मानसिक प्रवृत्तियाँ हमारी आदतों में बदल जाती हैं।”

“हर प्रवृत्ति का एक अपना ही बहाव होता है। इतनी आसानी से इसे रोका नहीं जा सकता है। हम प्रायः मन की प्रवृत्तियों से अपना ध्यान हटाने में परेशानी महसूस करते हैं। इनका खिंचाव बहुत प्रबल होता है! और होता क्या है कि हम प्रायः उनसे लड़ते रहते हैं। यह तो कीचड़ के अन्दर तेल से सने एक सुअर से लड़ने की तरह है—जीतने का कोई रास्ता नहीं! यदि आप स्वयं को बदलना चाहते हैं तो आप उस चीज़ पर केन्द्रित नहीं हो सकते जिसे आप बदलना चाहते हैं। यह तो उस प्रवृत्ति को और मजबूत कर देता है जिसे आप दूर करना चाहते हैं। बहुत से माँ-बाप ये जानते हैं। बच्चों को प्रशिक्षित करते समय हम प्रायः उन्हें नकारात्मक आदेश देते हैं। हम कई तरह से कहते हैं ‘यह नहीं करना चाहिये, यह मत करो, ये नहीं, वो नहीं।’ क्या यह कारण है? यह प्रायः उन्हें और जिद्दी बना देता है। उनका ध्यान वहाँ से हटा देना ही बेहतर है। बजाय यह कहने के कि, ‘चाकलेट नहीं’, हम कहते हैं, ‘इसकी जगह यह ले लेते हैं’। नकारात्मक पर ध्यान देने की बजाय हम सकारात्मक पर ध्यान देते हैं। झूठ न बोलने का संकल्प लेने के स्थान पर हम सच बोलने को कहते हैं। परन्तु जब प्रवृत्तियाँ मजबूत होती हैं तो यह तरीका भी असफल हो जाता है।”

“हमें अपनी समस्याओं से गहनतम स्तर पर अर्थात् अवचेतन स्तर पर निबटना चाहिये। यही वो जगह है जहाँ हमारी समस्याओं की जड़ है। लेकिन अवचेतन का अर्थ है ‘चेतना से नीचे’। इसका मतलब है कि जागरूक स्तर पर की गयी हेर-फेर अवचेतन तक नहीं पहुँच पाती। हम विचारपूर्वक की गयी क्रिया को तो बदल सकते हैं लेकिन अवचेतन क्रिया को? यह क्रिया हमारी जानकारी के बिना ही होती है। यह हमारी जागरूकता के दायरे से नीचे ही नीचे होती है। जब हम किसी चीज़ के बारे में जानते ही नहीं तो उसे बदल कैसे सकते हैं? यही वो सबसे बड़ी रुकावट है जिसका सामना हम स्वयं पर कार्य करते समय करते हैं।”

“तो अनजान विचारों के साथ कार्य करने के लिए हमें एक अद्वितीय तरीके की आवश्यकता है,” मैंने कहा।

“बिल्कुल,” दाजी बोले, “सामान्यतः हम महसूस ही नहीं कर पाते कि यह अवचेतन हमारे दैनिक अनुभव को किस सीमा तक प्रभावित करता है।

हम इसके व्यापक प्रभाव से और किस तरह यह हमारी चेतन जागरूकता को चलाता है, इस बात से भी अनभिज्ञ हैं।”

“परन्तु अवचेतन के प्रभाव से चेतन विचार बनने का यह सम्बन्ध एकतरफा नहीं है। बल्कि यह सम्बन्ध चक्रीय है।”

“अवचेतन मन और चेतन विचारों के परस्पर प्रभाव को समझने का एक तरीका है। इसकी तुलना बगीचे से कीजिए। चेतन विचार अवचेतन की उपजाऊ जमीन में बोये गये एक बीज के सामान है। वो बीज अवचेतन में अंकुरित होता है और अन्ततः हमारी चेतन जागरूकता में फलता-फूलता है। फिर एक जैसे विचारों का एक दीर्घकालिक क्रम बन जाता है। जिस प्रकार एक अकेले बीज से एक पेड़ बनता है जिससे फिर हजारों नये बीज बनते हैं, उसी प्रकार एक अकेला विचार सोचने की एक प्रवृत्ति बन जाता है जिससे हजारों नये विचार-बीज बनते हैं। आप देख सकते हैं कि कैसे हमारी चेतना आसानी से एक जटिल जंगल में बदल जाती है।”

“सफाई की विधि सीधे जड़ पर चोट करती है। यह हमारे विचारों और आदतों को समझने या सोच-समझ कर उन्हें दोबारा ठीक करने के लिए नहीं है। इसकी बजाय यह सीधे अवचेतन पर कार्य करती है। यह एक बगीचे की निराई करने जैसा है। जब हम घास-फूस उखाड़ते हैं तो हमें यकीन होना चाहिए कि वे जड़ से उखाड़ी जा रही हैं। यदि जड़ जमीन में रह जाती है तो वह बार-बार अंकुरित होती रहेगी। इसी प्रकार, हमने अवचेतन में जो कुछ भी बो रखा है वह विचारों और भावनाओं के रूप में अंकुरित होता रहेगा। जब तक हम उन जड़ों से नहीं निबटेंगे, रूपान्तरण के हमारे प्रयास हमें निराश ही करेंगे।”

दाजी रुके।

“हम कई बार पतंजलि के योगसूत्र का सन्दर्भ दे चुके हैं। प्रथम चरण यम को छोड़ अब तक हम बाकी सभी चरणों के बारे में कह चुके हैं। यम में अवांछित प्रवृत्तियों को हटाने का उल्लेख है। यह ठीक वही है जो हम सफाई की विधि से करते हैं। ध्यान के द्वारा हम एक आन्तरिक वातावरण उत्पन्न करते हैं जिसमें अवांछित बीज पनप ही नहीं सकते। परन्तु यह सफाई की विधि ही है जिसके द्वारा हम वहाँ मौजूद बीजों को झुलसा देते हैं और अन्दर गहराई में जमी हुई जटिल जड़ संरचना को बाहर निकाल देते हैं।”

“योग दर्शन में, उन विचार-बीजों को, जो अवचेतन में पहले ही बोए जा चुके हैं, संस्कार या छाप कहते हैं।”

“क्या हर विचार अवचेतन में जाकर जड़ जमा लेता है और फिर छाप बन जाता है?” मैंने पूछा।

“यह विचार का भावात्मक तत्व है जो जमता है, स्वयं विचार नहीं,” दाजी बोले। “एक संस्कार आपकी भावनात्मक याद है। यह किसी विचार विशेष के साथ जुड़ा भाव है। हो सकता है कि चेतन स्तर पर हम उसे याद न रख पायें, लेकिन इसका भावनात्मक तत्व निश्चय ही हमारे साथ रहता है। अधिकांशतः वह भावनात्मक तत्व सुप्त रहता है। यह अवचेतन में छिपा रहता है। परन्तु जब हम किसी ऐसी स्थिति का सामना करते हैं जो इसी प्रकार की किसी भावनात्मक तत्व जैसी है तो वह भावनात्मक स्थिति सक्रिय हो उठती है। इससे उस मूल विचार के समान ही विचार पैदा होते हैं जिससे वह भाव पहले से जुड़ा था। जब विचार और भावनाएँ दोहराई जाने लगती हैं तो हमारी प्रतिक्रियाएँ आदत बन जाती हैं।”

“इस प्रकार हमारी भावनाएँ संस्कार बनाती हैं जो अवचेतन में चले जाते हैं,” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी ने कहा, “लेकिन हर विचार से कुछ भावना जुड़ी होती है। अब उसमें कितनी भावना है, यह केवल मात्रा का मामला है। यदि विचार के साथ जुड़ी भावना ज्यादा तीव्र नहीं है तब भी उस विचार में कुछ न कुछ सकारात्मक या नकारात्मक स्पर्श तो रहेगा। कोई भी विचार पूर्णतः तटस्थ नहीं होता। पूर्णतः तटस्थ होने का अर्थ है कोई भी विचार न होना। यह शुद्ध अनुभूति और शुद्ध साक्षी भाव की दशा है। विचार की भावत्मक तीव्रता जितनी अधिक होगी, उतना ही गहरा उसका अवचेतन प्रभाव होगा। वह संस्कार या छाप भी उतनी ही मजबूत होगी।”

“हम प्रायः विचार को मन से और भावना को हृदय से जोड़ कर देखते हैं। परन्तु मैं इसे हृदय-मन क्षेत्र के रूप में देखना अधिक पसन्द करता हूँ क्योंकि बिना विचार के कोई भावना नहीं हो सकती और बिना भावना के कोई विचार नहीं। आध्यात्मिक अभ्यास करते हुए एक समय ऐसा आता है जब हृदय पूर्णतः निष्पक्ष हो जाता है। जब इसकी कोई पसन्द या नापसन्द नहीं रह जाती। कोई प्राथमिकता या पूर्वाग्रह नहीं होते। तब जाकर मन सोच से परे जा कर मात्र एक साक्षी रह जाता है और वास्तविकता को सीधे महसूस करता है। अन्यथा तब तक हमारे विचार हमारे हृदय को प्रभावित करते रहते हैं और हृदय की गतिविधि मन में विचार उत्पन्न करती रहती है।”

मैंने पूछा, “एक विचार की भावनात्मक मात्रा किससे निर्धारित होती है?”

“अहंकार,” दाजी बोले। “अहंकार स्व का बोध है। यह ‘मैं-पन’ का अहसास है। छापे बनाने में इसकी भूमिका को सही-सही समझने के लिए मुझे थोड़ी देर के लिए इस विषय से हटना पड़ेगा ताकि मैं अहंकार के विषय को गहराई से ले सकूँ।”

“जी हाँ, ज़रूर,” मैंने कहा।

“ठीक है,” दाजी बोले। “अहंकार का एकमात्र उद्देश्य आत्म-संरक्षण करना है। यह समाप्त होने से डरता है। इसलिए यह लगातार स्वयं को सशक्त करने और बढ़ाने के लिए कार्य करता है।”

“अहंकार भी एक मजेदार चीज़ है। जब कोई पूछता है कि हम चीज़ों को कहाँ महसूस करते हैं तो हम हृदय की ओर इशारा करते हैं। जब कोई पूछता है कि हम चीज़ों को कहाँ सोचते हैं तो हम सिर की ओर इशारा करते हैं। अहंकार कहाँ है? यह वास्तव में कहीं भी विद्यमान नहीं होता। फिर भी, यह हमारे जीवन पर हावी रहता है।”

“क्योंकि अहंकार किसी मूर्त रूप में विद्यमान नहीं होता, यह अपनी स्थिति को उनसे सुरक्षित करता है जिन्हें वह अपनी सम्पत्ति मानता है। उदाहरण के लिए, आप एक बड़ा मकान खरीदते हैं, और आपका अहंकार कहता है, ‘यह मेरा है।’ यह स्वयं को उस सम्पत्ति के द्वारा नापता है। इस प्रकार यह स्वयं को अपने अस्तित्व की उपस्थिति महसूस कराता है।”

“हालाँकि, ‘सम्पत्ति’ का अर्थ केवल भौतिक सामग्री ही नहीं है। बल्कि हर उस चीज़ से इसका मतलब है जिसे अहंकार अपना मानने का दावा करता है। अहंकार कहता है, ‘मेरी राष्ट्रीयता, मेरी भाषा, मेरी संस्कृति, मेरा शरीर, मेरी बुद्धि, मेरी विचारधारा’। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कोई चीज़ वास्तव में आपकी है या नहीं। क्या कोई चीज़ वास्तव में हमारी है? यहाँ तक कि आत्मा भी हमारी नहीं है! परन्तु अहंकार हड्डप लेता है। यह किसी न किसी चीज़ से स्वयं की पहचान बनाता है और फिर उस पर अपना हक्क महसूस करता है।”

“अब ‘मेरे-पन’ की इस अनुभूति का एक अतिरिक्त प्रभाव भी है। जब हम महसूस करते हैं कि कोई चीज़ हमारी है तो हम अपेक्षाएँ पैदा कर लेते हैं। ‘मेरा व्यवसाय सफल होना चाहिए। मेरा जीवनसाथी आकर्षक होना चाहिये। मेरी कार आलीशान होनी चाहिये।’ आप किसी दूसरे व्यक्ति के व्यापार, जीवनसाथी या कार की चिन्ता नहीं करते। परन्तु जब आपका अहंकार शामिल हो तो आप अत्यधिक चिन्ता करते हैं। जब हमारी अपेक्षाएँ पूरी होती हैं या बढ़ती हैं तो हम प्रसन्न रहते हैं और सकारात्मक प्रतिक्रिया करते हैं। और जब वे पूरी नहीं होती तो हम नकारात्मक प्रतिक्रिया करते हैं।”

“तो अहंकार के शामिल हुए बिना कोई भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं होती और इसलिए कोई छाप भी नहीं बनती,” मैंने कहा।

“यह सही है,” दाजी बोले। “स्वामित्व के अहसास के कारण अहंकार को लगता है कि वह कुछ परिणामों का हकदार है। इसी के अनुसार तब वह

प्रतिक्रिया करता है और छापें बन जाती हैं। याद रहे कि प्रतिक्रिया या तो सकारात्मक होती है या नकारात्मक। यह या तो किसी के पक्ष में होती है या विपक्ष में। हर प्रतिक्रिया में या तो पसन्द होती है या नापसन्द, आकर्षण होता है या विकर्षण, इच्छा होती है या भय। तटस्थ प्रतिक्रिया जैसी कोई चीज़ नहीं होती क्योंकि तटस्थ होने का अर्थ ही प्रतिक्रिया न होना है।”

“तो आप कह रहे हैं कि भावना अहंकार से आती है?” मैंने पूछा।

“हाँ, भावना अहंकार से आती है परन्तु अहसास नहीं,” दाजी बोले। “भावना पक्षपातपूर्ण होती है। यह कुछ चीज़ों को तो पसन्द करती है और कुछ को नापसन्द। जबकि अहसास की कोई प्राथमिकता या पूर्वाग्रह नहीं होते। यह उदार और स्वीकार करने वाली होती है क्योंकि यह हृदय से आती है। अहंकार वश में हो जाये तो सच्चा अहसास स्वतः ही प्रकट होता है।”

“ये भावनात्मक प्रतिक्रियाएँ हमें आहत किये बिना नहीं छोड़तीं। हमें हमेशा अपनी प्रतिक्रियाओं का खामियाजा भुगतना पड़ता है। वे हमारी चेतना को प्रभावित करती हैं और भावनात्मक तथा मनोवैज्ञानिक दशाओं के रूप में प्रकट होती हैं।”

“और ये सब A, B, C और D बिन्दुओं के कारण होता है,” मैंने कहा।



वक्षस्थल में चार बिन्दु हैं जिन्हें हम A, B, C और D कहते हैं। किसी प्रतिक्रिया के हम पर होने वाले प्रभाव को यही चार बिन्दु निर्धारित करते हैं। बिन्दु A और B की खोज बाबूजी ने सन् 1945 में की थी। बिन्दु C और D अभी हाल ही प्रकाश में आये हैं। दाजी का कहना है कि सूक्ष्म आध्यात्मिक संरचना के कई पहलू अब भी हमें प्रकट किये जा रहे हैं।

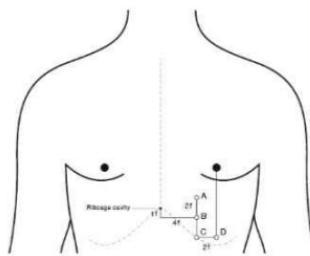
सन् 2015 में दाजी ने सार्वजनिक तौर पर बिन्दु C और D की स्थिति को प्रकट किया। इससे पहले भी उन्होंने निजी तौर पर मुझे इनके बारे में बताया था लेकिन इनकी स्थिति के बारे में नहीं। एक दिन मैंने उन्हें इनकी स्थिति के बारे में जानने के लिए पत्र लिखा। उन्होंने जवाब दिया :

“कृपया स्वयं इनकी स्थिति का पता लगायें और अपनी खोज के परिणाम मुझे भेजें।”

आन्तरिक रूप से इनकी स्थिति ढूँढ़ने में पूरा एक दिन लगाने के बाद मैंने उन्हें जहाँ पाया उसका एक रेखाचित्र बनाकर दाजी को भेजा।

उन्होंने जवाब दिया, “इन्हें थोड़ा दायरीं और सरकाओं तो यह ठीक होगा। लेकिन किसी से इसकी चर्चा मत करना नहीं तो तुम उन्हें कुछ नया खोजने की खुशी से वंचित कर दोगे!”

“परन्तु अब जब इन बिन्दुओं के स्थान की जानकारी सार्वजनिक है, हम इनके बारे में एक-दूसरे को बता सकते हैं। A, B, C और D बिन्दुओं की स्थिति निर्धारित करने के लिए छाती के मध्य की हड्डी के निचले सिरे (sternum) से शुरू करें, जहाँ से पसलियों का पिंजरा शुरू होता है।”



इस जगह से 1 ऊँगली नीचे जायें (अपनी ही ऊँगलियों से नापकर) और फिर 4 ऊँगली बायरीं ओर आयें। यह बिन्दु B का स्थान है। बिन्दु B से दो ऊँगली ऊपर बिन्दु A है। बिन्दु B से ठीक नीचे, आखिरी पसली पर बिन्दु C स्थित है। बिन्दु D बिन्दु C से 2 ऊँगली बायरीं ओर स्थित है, बाएँ निप्पल के ठीक नीचे।”

“इन चारों बिन्दुओं के कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं,” दाजी ने कहा। ये चारों हृदय से बड़े करीब से जुड़े हुए हैं और यह हृदय ही है जो हमारी मानसिक और भावनात्मक स्थिति निर्धारित करता है। जब भी हम किसी चीज़ को पसन्द या नापसन्द करते हैं तो बिन्दु C पर कुछ विशेष स्पन्दन होते हैं। हम इन्हें महसूस भी कर सकते हैं। मैं आशा करता हूँ कि लोग इसे देखने का प्रयास करेंगे। अब हमारी प्रतिक्रिया की तीव्रता और उन स्पन्दनों की प्रकृति के अनुरूप एक लहर बनती है जो इन स्पन्दनों को C बिन्दु से A, B या D बिन्दु पर ले जाती है।”

“बिन्दु A भौतिक जीवन से सम्बन्धित है, इसलिए जब भी हमारी प्रतिक्रियाएँ किसी भौतिक पसन्द या नापसन्द से जुड़ी होती हैं तो बिन्दु C के स्पन्दन बिन्दु A को स्पन्दित करते हैं, जिससे बिन्दु A अस्त-व्यस्त हो जाता है।”

मैंने पूछा, “क्या होता है जब बिन्दु A अस्त-व्यस्त हो जाता है?”

“मान लें कि आपने एक सुन्दर घर देखा और आप बोल पड़े ‘कितना सुन्दर घर है!’ दाजी ने कहा। उसे पसन्द करने का यह भाव हमारे ऊपर एक हल्की छाप छोड़ता है। अतः बिन्दु C के स्पन्दन भी हल्के होते हैं और बिन्दु

A जो भौतिक इच्छाओं का स्थान है, उस पर पड़ने वाला प्रभाव भी कमजोर होता है। लेकिन फिर यदि आप यह विचार करते रहें कि काश मैं इस घर में रहूँ तो बिन्दु C के स्पन्दन थोड़े शक्तिशाली हो जाते हैं और यही प्रभाव बिन्दु A पर भी पड़ता है। यदि अब आप इसके बारे में और अधिक सोचने लगें और यह जिंद पकड़ लें कि ‘मैं यह घर लेकर ही रहूँगा!’ तो अब परेशानी बढ़ जाती है और आपकी भावनात्मक स्थिति विकट हो जाती है। अब आप उस इच्छा की पूर्ति के पीछे पड़ जाते हैं। और हो सकता है कि आप इच्छा पूर्ति न हो पाने को लेकर चिन्तित भी हों। दोनों ही स्थितियों में आप बेचैन रहते हैं और यह बेचैनी आपसे आपकी शान्ति छीन लेती है।”

“आइए, अब हम बिन्दु B पर गौर करें। यह बिन्दु वासना से सम्बन्धित है। जब भी हम अपनी वासना के अनुसार प्रतिक्रिया करते हैं, तो बिन्दु C के स्पन्दन बिन्दु B को स्पन्दित करते हैं और इससे वासना का भाव उमड़ता है।”

“बिन्दु D अपराधबोध का बिन्दु है। जब भी हम अपने अन्तःकरण की आवाज़ को नज़रअन्दाज़ करते हैं तो बिन्दु D पर अपराधबोध बन जाता है। इस अपराधबोध के कारण पूरे तन्त्र में अत्यधिक भारीपन हो जाता है। अपराधबोध का कारण सिर्फ़ ग़लत कार्य ही नहीं होता अपितु कार्य न करना भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, मान लें कि आप एक डॉक्टर हैं और एक धायल व्यक्ति को सड़क के किनारे देखते हैं। लेकिन आप अपने रास्ते चल देते हैं, यह सोचकर कि कोई और उसकी मदद कर देगा। अगले दिन आप अखबार में पढ़ते हैं कि उस व्यक्ति की तो मृत्यु हो गयी। उस व्यक्ति की सहायता के लिए कोई नहीं रुका! मेरी समझ से यह अपराधबोध आपको जीवन भर परेशान करेगा। हमारी अकर्मण्यता से जनित अपराधबोध, ग़लत कार्यों के कारण हुए अपराधबोध से भी अधिक गहरा होता है।”

“A, B, C और D बिन्दुओं पर उपस्थित स्पन्दन धीरे-धीरे शान्त होकर धनीभूत हो जाते हैं और बाबूजी जिसे “स्थूलता” कहते थे, उसे पैदा करते हैं। परन्तु ये बिन्दु भी एक सीमा तक ही स्थूलता सँभाल सकते हैं। अन्ततः वे भी इस स्थूलता से भर जाते हैं। जब ये बिन्दु और अधिक स्थूलता नहीं सँभाल सकते तो वह वाष्पित होकर अगले बिन्दुओं पर जमने लगती है। इसकी चर्चा हम अभी नहीं करेंगे क्योंकि यह बिलकुल अलग विषय है। इसका परिणाम हम लगातार बढ़ते हुए मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक प्रभावों के रूप में महसूस करते हैं।”

“और सफाई इन बाधाओं को साफ कर देती है,” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी बोले। “परिणामस्वरूप हमारी मनोवैज्ञानिक स्थिति सहज हो जाती है, भावनाएँ सन्तुलित हो जाती हैं और हमारा मन किसी एक भाव के पीछे पड़ना छोड़ देता है।”

“क्या होगा यदि हमारे पास सफाई का कोई तरीका न हो?” मैंने पूछा।

“क्या तुमने देखा है कि यदि किसी खेत को बिना देखभाल के ऐसे ही छोड़ दिया जाये तो क्या होता है?” उन्होंने पूछा।

“वह ऊट-पटांग चीजों से भर जाता है,” मैंने कहा।

“और फिर समय बीतने पर वहाँ जंगल बन जाता है,” दाजी ने कहा।

“जब संस्कारों को हटाया नहीं जाता तो वे बे रोक-टोक बढ़ते हैं। वे मज़बूत होते जाते हैं और नये संस्कारों को भी जन्म देते हैं।”

“यह प्रक्रिया कैसे होती है?” मैंने पूछा।

“मान लीजिये कि आप किसी रास्ते से जा रहे हों और कोई अजनबी आपका अपमान कर दे। इस अपमान का आप पर क्या असर होगा, यह आप पर निर्भर करता है। कोई व्यक्ति इसे हँसी में उड़ा देता है और कोई व्यक्ति लड़ा चाहता है। कोई और भी हो सकता है जो दिन भर इसी बारे में सोचता रहे। तो देखिये, एक ही परिस्थिति पर कुछ लोग प्रतिक्रिया करेंगे और कुछ नहीं। जो व्यक्ति प्रतिक्रिया करते हैं उन लोगों में भी सबकी प्रतिक्रिया अलग-अलग हो सकती है जबकि परिस्थिति सबके लिए समान है। यदि अलग-अलग व्यक्तियों की एक ही परिस्थिति में प्रतिक्रिया अलग-अलग हो या कोई प्रतिक्रिया न हो तो क्या सारा दोष हम परिस्थितियों पर थोप सकते हैं?”

“नहीं,” मैंने कहा।

“बाहरी परिस्थिति और आपके अन्दर की कोई चीज़ मिलकर आपकी प्रतिक्रिया निर्धारित करते हैं।” दाजी ने कहा “जब तक किसी परिस्थिति से प्रभावित होने के लिए आप पहले से ही संवेदनशील न हों तब तक वो परिस्थिति आपको प्रभावित नहीं कर सकती। आपके अन्दर की वह चीज़ है आपके संस्कार।”

“सारी मानसिक और अध्यात्मिक दशाओं के कुछ मौलिक और कुछ निकटस्थ कारण होते हैं। मौलिक कारण हमारे आन्तरिक प्रभाव होते हैं। वे अवचेतन प्रभाव जो पहले से हमारे अन्दर होते हैं—हमारे संस्कार। इस स्थिति में यह उस अपमान की प्रतिक्रिया के लिए पहले से ही मौजूद एक प्रवृत्ति दर्शाती है। मान लें उस अपमान के कारण आप चिढ़ जाते हैं। इसमें मौलिक कारण है वह संस्कार या छाप जो हमारे चिढ़ जाने का कारण बनती है। और निकटस्थ कारण है वह बाहरी परिस्थिति—वह घटना। यह वो चिंगारी होती है जो ईंधन को प्रज्ज्वलित कर देती है।”

“वह अपमान,” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी बोले। “और वह घटना कोई भी हो सकती है। लेकिन घटना चाहे कोई भी हो, बिना घटना के कोई प्रतिक्रिया नहीं हो सकती। आपका संस्कार-आन्तरिक मौलिक कारण, तब तक क्रियान्वित नहीं होता जब तक कोई बाहरी घटना निकटस्थ कारण न बने। बिना निकटस्थ कारण के आपका गुस्सा सुप्त रहता है। यह धास में मौजूद उस साँप की तरह है जो चुपचाप छिपा रहता है, सही क्षण और सही वातावरण की प्रतीक्षा में। जब कोई निकटस्थ कारण उपस्थित होता है तो वह संस्कार उभर कर जीवन्त हो जाता है। यह जागृत होता है और आपकी प्रतिक्रिया के लिए उत्प्रेरक बन जाता है।”

“आपने पूछा कि संस्कार कैसे बनते हैं। इसका उत्तर यह है कि नये संस्कार पुराने संस्कारों की नींव पर बनते हैं। मान लें, ईश्वर न करे, किसी को कोई साँप काट ले। इसके परिणामस्वरूप उसके मन में साँपों का डर बैठ जाता है। लेकिन वास्तव में यह डर साँपों का डर नहीं है। यह साँप के वेश में मृत्यु का डर है। साँप का काटना निकटस्थ कारण बनता है जो पहले से मौजूद मृत्यु के भय के संस्कार को जागृत कर देता है। लेकिन अब उस संस्कार के ऊपर साँपों के भय का एक और संस्कार भी बन जाता है।”

“इस तरह संस्कारों का बनना जारी रहता है। नये संस्कार पुराने संस्कारों की शाखाओं के रूप में आगे बढ़ते जाते हैं। यह हमारे कुछ नया सीखने की प्रक्रिया जैसा ही है। यदि आपको अक्षर ज्ञान न हो तो आप शेक्सपियर की रचनाएँ नहीं पढ़ सकते। यदि आपको भौतिकी का प्रारम्भिक ज्ञान न हो तो आप रिचर्ड फेनमन जैसे वैज्ञानिक की बातें नहीं समझ सकते। ठीक उसी तरह हम अपने आस-पास के संसार को किस तरह समझते हैं यह हमारे पूर्व संस्कारों पर निर्भर करता है।”

“परन्तु हर छाप किसी अनुभव का ही परिणाम हो, ऐसा तो नहीं होता,” मैंने कहा। जैसे आपके उदाहरण में साँप के काटने से उस व्यक्ति में साँपों का डर पैदा हो गया। परन्तु डर हमेशा हमारे व्यक्तिगत अनुभव से ही पैदा नहीं होते। हो सकता है कि किसी व्यक्ति को कभी भी साँप ने न काटा हो लेकिन उसे साँपों से डर लगता हो।”

“कई लोग इन चीजों को अति काल्पनिक तरीके से समझाते हैं,” दाजी ने कहा। “वे कहेंगे कि ज़रूर उस व्यक्ति को पूर्व जन्म में साँप ने काटा होगा। परन्तु यह एक कमज़ोर तर्क है। उदाहरण के लिए कई लोगों को हवाई यात्रा से डर लगता है। इस तर्क के आधार पर तो ज़रूर पूर्वजन्म में उन सबके साथ विमान दुर्घटना हुई होगी। लेकिन हवाई जहाज का अस्तित्व ही पिछले 100 साल से है। तो यह सही जवाब नहीं हो सकता। डर वास्तव में हमारे अनुभवों से ही आते हैं, लेकिन यह आवश्यक नहीं कि हम पर प्रभाव डालने के लिए

हर अनुभव भौतिक रूप में मौजूद हो। जैसे कि आप एक डरावने साँप की कल्पना मात्र से डर का अनुभव कर सकते हैं। चाहे वह साँप वास्तविक न हो, लेकिन वह डर का भाव वास्तविक होता है। आपकी कल्पना मृत्यु के अत्यन्त सजीव भय को पैदा कर सकती है। जब वह विचार उस आधारभूत भय के सम्पर्क में आता है तो स्वतः ही डर का रूप ले लेता है। और यह सिर्फ भय के बारे में ही सच हो ऐसा नहीं है। जब भी कोई विचार किसी पहले से उपस्थित संस्कार के सम्पर्क में आता है तो एक नये संस्कार को बना सकता है।”

“संस्कार वृक्ष की तरह होते हैं। चलिये, हम मृत्यु के भय का उदाहरण लें। वह पेड़ के तने के समान है। उस तने से कई शाखाएँ निकलती हैं। वे आपके भय हैं। यह वृक्ष एक तरह से आपके भय से सम्बन्धित सारे संस्कारों का कुल जोड़ है। यह डर का एक ताना-बाना है, हमारी चेतना में भय का एक जाल।”

“और हमारी चेतना कई दूसरी तरह के पेड़ों से भी भरी हुई है!” मैंने कहा।

“हाँ” दाजी बोले, “और हर पेड़ से एक नया पेड़ विकसित हो सकता है। अन्ततः हमारी चेतना एक घने जटिल जंगल में तब्दील हो सकती है। हर संस्कार हमारी चेतना में जगह धेरता है। हमारी ऊर्जा इन संस्कारों के ढाँचे में पूरी तरह से उलझ के रह जाती है। वे हमारी सोच पर हावी हो जाते हैं और लक्ष्य निर्धारित करने लगते हैं। जैसे-जैसे हमारे संस्कारों का जंगल सघन होता जाता है, हमारी चेतना मृतप्राय होने लगती है। उसकी ऊर्जा बँध कर रह जाती है और उसकी जगह इन संस्कारों से भर जाती है।”

“पहले हमने बात की थी कि किस तरह समूचा मानव-तन्त्र स्थूलता से भर जाता है।”

“ठोस छापें,” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी ने कहा। “लेकिन अब प्रकृति हस्तक्षेप करती है और भोग प्रक्रिया के द्वारा इस स्थूलता को हमारे तन्त्र से साफ़ करती है। भोग का अर्थ है अनुभव। जीवन में हम कई तरह के अनुभवों से गुजरते हैं। योगशास्त्र हमें बताता है कि ये सारे अनुभव भोग ही हैं। यह हमारे पूर्व संस्कारों के परिणाम हैं जिन्हें अब हमें मूर्त रूप में भोगना पड़ता है।”

“परन्तु हम आम तौर पर भोग का (या दूसरे शब्दों में कहें तो जीवन के अनुभवों और घटनाओं का) प्रतिकार करते हैं। और इन प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप नये संस्कार बना लेते हैं।”

“तो यह प्रक्रिया कभी खत्म नहीं होती,” मैंने कहा। “हम संस्कार बनाते हैं जो जीवन के अनुभवों के रूप में फलीभूत होते हैं और इन अनुभवों से हम

नये संस्कार बना लेते हैं। ऐसा लगता है मानो भोग हमें संस्कारों से मुक्त करने की बजाय उन्हें आगे बढ़ाने का काम करते हैं।”

“हम उन्हें आगे बढ़ाते हैं,” दाजी बोले। “जब हम यह महसूस करते हैं कि हम बिना किसी कारण के तकलीफ़ भोग रहे हैं तो हम उसका प्रतिकार करते हैं। जब हम तकलीफ़ों से गुजरते हैं तो अक्सर उलझन और कड़वाहट से भर जाते हैं। ‘क्यों?’ हम पूछते हैं। हम ईश्वर से शिकायत करते हैं, ‘ये आप क्या कर रहे हैं?’ ऐसी प्रतिक्रियाएँ न सिर्फ़ नयी छापें पैदा करती हैं बल्कि हमें अन्दर से दूषित भी कर देती हैं और हमें ऊपर से उतरने वाली उस कृपा से भी वंचित कर देती हैं। और भोग सिर्फ़ तकलीफ़ों के रूप में ही नहीं आता। आनन्दायक उपभोग भी भोग की ही अभिव्यक्ति है। लेकिन याद रखें : हर प्रतिक्रिया संस्कार बनाती है।”

“तो भोग तभी मददगार है जब हम उस पर कोई प्रतिक्रिया न करें,” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी बोले। “तब यह अत्यन्त सहायक होते हैं। हर परिस्थिति में शान्त और प्रसन्न रहने के पीछे यही समझदारी है।”

वे उठे और ताक पर रखी बाबूजी की किताब निकालकर पढ़ने लगे:

“बाहरी मदद पीड़ा के रूप में आती है, जो कि दूसरों के द्वारा किये गये ग़लत कार्यों के कारण होती है और लोग अपनी अज्ञानतावश उसके बारे में बुरे विचार बना लेते हैं। यह बात बिलकुल अनुचित है क्योंकि असल में उसने हमारी शुद्धीकरण की प्रक्रिया में मदद कर हम पर मानों अहसान किया है। जब ऐसी बात है तो वास्तव में उस बाहरी ताकत ने, चाहे वह कोई भी हो, इस काम के ज़रिये एक सच्चे मित्र की भूमिका निभाई है।” (रामचन्द्र:2009)

“लेकिन,” दाजी ने कहा, “हम अपने आपको या दूसरों को अपने कैसे भी भाय के लिए दोषी नहीं ठहरा सकते। हम किसी पर यह आरोप नहीं लगा सकते कि ‘तुमने ही संस्कारों का निर्माण कर अपने लिए यह परिस्थिति बनायी है।’ मैं ऐसी परिस्थितियों का साक्षी रहा हूँ जब लोगों ने किसी पीड़ित की सहायता यह कहते हुए नहीं की कि ‘मैं प्रकृति के कार्य में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।’ यह अमानवीय है। यह हमारा कर्तव्य है कि हम पीड़ित की सहायता कर उसकी पीड़ा को कम करने का प्रयत्न करें। इससे भी बुरा तो यह है कि हम किसी के साथ दुर्व्यवहार करें और फिर कुटिल दावा करें कि हम उसके शुद्धीकरण में उसकी मदद कर रहे हैं। फिर ऐसी भी कुछ परम्पराएँ हैं जिनमें लोग स्वयं को दण्ड देते हैं। यह एक नकारात्मक दृष्टिकोण है जो निश्चित ही हमारे अन्दर और अधिक जटिलताएँ पैदा करता है। हमें तकलीफ़ों को बुलावा देने की आवश्यकता नहीं है। हाँ, जब तकलीफ़ आ ही जाये तो स्थुशी से उसे स्वीकार करना हमें आना चाहिए।”

“क्या यह कर्म के विचार के समान है, जिसमें हमें अपने पूर्व कर्मों का फल भुगतना पड़ता है?” मैंने पूछा।

“हम वास्तव में अपने संस्कारों का परिणाम भोगते हैं—न कि अपने कर्मों का,” दाजी ने कहा। “यदि आप इस तरह से कर्म करें कि इसकी कोई छाप न पड़े तो उसके कोई परिणाम भी नहीं होंगे। आप पर उसका कोई प्रभाव नहीं होगा। ये संस्कार ही हैं जो इस प्रतिगामी प्रभाव (Boomerang Effect) का कारण बनते हैं। मान लीजिये, आप कुछ खरीद कर लाते हैं और फिर उसे लौटाने का निर्णय लेते हैं। बिना क्र्य-बिल के आप के पास अपने पैसे वापस पाने का कोई तरीका नहीं है। संस्कार एक ब्रह्माण्डीय बिल की तरह है। यह हमारे कर्म को परिणाम के साथ जोड़ता है। बिना इस छाप या संस्कार के वह कर्म लौट कर हमारे पास नहीं आ सकता। याद रहे, कि भोग हमारी छापें साफ़ करने का प्राकृतिक तरीका है। यदि साफ़ करने के लिए कोई संस्कार ही न हो तो किसी भोग से भी नहीं गुजरना पड़ेगा।”

“हमें यह समझना चाहिए कि भोग का उद्देश्य हमें पुरस्कार या दण्ड देना नहीं है। और न ही भोग हमें कोई पाठ पढ़ाने के लिए है। महाभारत की एक प्रसिद्ध कहानी है। महान योद्धा भीष्म युद्ध में पराजित हो जाते हैं। जब वे बाणों की शैश्वता पर पड़े अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहे होते हैं तब श्रीकृष्ण उनसे मिलने जाते हैं। भीष्म उनसे पूछते हैं “किस कारण से मुझे ऐसी मृत्यु मिली है? मैंने अपने सौ पूर्वजन्मों की जाँच कर ली लेकिन मुझे कुछ भी ऐसा नजर नहीं आया जो मेरी इस स्थिति का कारण बने।”

“इससे भी आगे देखिये,” कृष्ण ने कहा।

“मैं इससे आगे नहीं देख सकता,” भीष्म बोले।

“परन्तु मैं देख सकता हूँ,” कृष्ण ने कहा, “पिछले एक जन्म में आप एक राजकुमार थे। एक दिन आपने एक साँप को उसकी पूँछ पकड़कर घुमाया और फेंक दिया। वह साँप एक कटीली झाड़ी पर गिरा और वहीं मर गया। यह उसी कृत्य का परिणाम है जो आप आज भोग रहे हैं। इसीलिए यह बाण आपकी मृत्युशैया बन गये हैं।”

“अब यदि भीष्म के कर्म का परिणाम तुरन्त आ जाता तो वे इस कर्म और परिणाम के सम्बन्ध को समझ पाते। उस स्थिति में वे इससे कुछ सीख पाते और स्वयं को सुधार पाते। परन्तु जब कारण और परिणाम के बीच इतना समय व्यतीत हो जाता है तो हम इस सम्बन्ध को समझ नहीं पाते। हम कारण को बनता हुआ नहीं देख पाते। ऐसी स्थिति में भला हम उस अनुभव से क्या सीख पायेंगे?”

“प्रकृति हमें कोई सबक नहीं सिखाना चाहती। वह तो सिर्फ़ हमें हमारे संस्कारों के वज़न से मुक्त कराती है, जिससे हमारी चेतना हल्की और शुद्ध रह सके।”

“प्रकृति हमारे संस्कार क्यों हटाना चाहती है?” मैंने पूछा।

“प्रकृति का उद्देश्य है अपने तन्त्र को शुद्ध रखना,” दाजी ने कहा। “जब छापें अवचेतन मन में जमने लगती हैं तो वे चेतना और आत्मा के बीच स्पन्दनों की एक की परत जैसी बना लेती हैं। छापें आत्मा को तो नहीं छू सकतीं लेकिन इसके चारों ओर एक परत बना लेती हैं। ये परत आन्तरिक स्रोत से हमारे अलग होने का कारण बन जाती है। यह स्थिति प्रकृति में एक दोष की तरह हो जाती है।”

“परन्तु प्रकृति में भोग की प्रक्रिया भी धीरे-धीरे चल रही होती है। भोग के ज़रिये, संस्कार एक-एक करके हटाये जाते हैं और हमें भी एक-एक करके हर एक के परिणाम से गुज़रना पड़ता है। इसमें समय लगता है और इस दौरान हमें काफ़ी पीड़ा भी सहन करनी पड़ती है। लेकिन इस दौरान पुरानी छापों को हटाए जाने की गति से भी तेज गति से हम नयी छापें जोड़ते चले जाते हैं!”

“हमारी छापों की संख्या इतनी अधिक हो जाती है कि सिर्फ़ भोग के ज़रिये उन्हें एक जन्म में ख़त्म करना असम्भव-सा हो जाता है। इसीलिए कई पूर्वी अध्यात्मिक परम्पराएँ यह कहती हैं कि इनके प्रभाव से मुक्त होने के लिए एक जन्म पर्याप्त नहीं है। लेकिन जब हम इन संस्कारों को सफाई की प्रक्रिया द्वारा एक साथ थोक में हटाते हैं तो संस्कारों का समूचा बोझ इसी जीवन के एक हिस्से में साफ़ किया जा सकता है।”

“जितना भी योग साहित्य मैंने पढ़ा है उसमें संस्कारों को हटाने की ऐसी किसी प्रक्रिया से मेरा सामना कभी नहीं हुआ,” मैंने कहा। “बजाय इसके, हर जगह नकारात्मक संस्कारों को सकारात्मक संस्कारों में बदलने पर ही ज़ोर दिया गया है।”

“संस्कारों का अर्थ है अशुद्धता,” दाजी ने कहा। “क्या अच्छी अशुद्धता और बुरी अशुद्धता जैसी कोई चीज़ हो सकती है? अशुद्धता सिर्फ़ अशुद्धता है। एक अच्छे व्यक्ति के संस्कार उसे अच्छे कार्य करने के लिए बाध्य करते हैं जबकि एक बुरे व्यक्ति के संस्कार उसे बुरे कार्य करने के लिए मजबूर करते हैं। क्या इन दोनों व्यक्तियों की स्थिति में कोई विशेष फ़र्क़ है? दोनों ही बँधनों में बँधे हैं। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि एक के बँधन सोने के हैं और दूसरे के लोहे के। चाहे ज़ंजीर सोने की हो या लोहे की, हमें बाँधती तो दोनों ही हैं। इसीलिए हम अच्छे और बुरे संस्कारों में भेद नहीं करते। हार्टफुलनेस

सफाई की प्रक्रिया भी दोनों में भेद नहीं करती। चाहे अच्छी हो या बुरी, हर चीज़ साफ़ कर दी जाती है।”

“क्या इसका अर्थ यह है कि हमारे पास स्वतन्त्र-इच्छा जैसी कोई चीज़ नहीं होती?” मैंने पूछा। “क्या हम सिर्फ़ संस्कारों की दया पर निर्भर हैं?”

“बिलकुल नहीं,” दाजी ने कहा। “हमारे पास निश्चित रूप से एक स्वतन्त्र इच्छा है, और वास्तव में वही हमारी समस्या भी है। देखिये, हमारे पास हमेशा यह स्वतन्त्रता रहती है कि हम अपने हृदय के शुद्ध संकेतों का अनुसरण करें या फिर उनको नज़रअन्दाज़ करके अपने संस्कारों के प्रभाव में स्वयं को बह जाने दें। यह चुनाव हमारा अपना है और इसीलिए उसकी ज़िम्मेदारी भी हमारी ही है।”

“अर्थात् संस्कारों को नियन्त्रित करने के दो पहलू हैं,” मैंने कहा। “एक यह कि हम अपने हृदय से जुड़े रहें और संस्कारों के खिंचाव से प्रभावित न हों। दूसरा पहलू यह है कि हम सफाई की प्रक्रिया द्वारा और भोग के ज़रिये संस्कारों को हटाते रहें।”

“हाँ,” दाजी ने कहा। “और सफाई के ज़रिये हम थोक में एक साथ संस्कारों से मुक्ति पा सकते हैं, भोग के विपरीत, जिसमें संस्कार एक-एक कर के छूटते रहते हैं। और तो और, सफाई संस्कारों को अनुभव के रूप में प्रकट होने से पहले ही हटा देती है। इस तरह उन्हें बिना उनके अनुभव से गुज़रे हटाया जा सकता है। यह उसी तरह है जैसे बेहोशी में ऑपरेशन करना। हम उसके सारे अनुभव से बच जाते हैं।”

“इससे भी गहरी सफाई तब होती है जब हम किसी हार्टफुलनेस प्रशिक्षक के साथ ध्यान करते हैं। प्रशिक्षक के साथ हुए पहले ध्यान में हमारे संस्कारों के भवन की नींव ही हटा दी जाती है। कोई भी भवन बिना नींव के खड़ा नहीं रह सकता। उसका गिरना निश्चित है, सिर्फ़ कुछ समय की बात होती है।”

“शुद्धीकरण की इस प्रक्रिया में हमारी भूमिका यह है कि हम हर रोज़ दिन के अन्त में अपनी व्यक्तिगत सफाई कर लें। ऐसा करके हम उस दिन जमा हुए संस्कारों को उसी दिन हटा देते हैं। एवं प्रशिक्षक से साथ नियमित ध्यान सत्र करके (सिटिंग लेकर) हम अपने पुराने संस्कारों का बोझ भी ख़त्म कर देते हैं।”

“फिर भी, हमारी नियमित व्यक्तिगत सफाई और प्रशिक्षक के साथ हर महीने सिटिंग लेना भी हमारे बोझ को तब तक हल्का नहीं कर सकता जब तक कि हम नये संस्कार बनाना बन्द नहीं कर देते। अन्यथा यह एक छेद

वाली नाव का छेद ठीक करने की चिन्ता किये बगैर उसका पानी निकालते रहने जैसा होगा।”

“और उसका अर्थ है प्रतिक्रियाशील न होना।” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी बोले।

“हम प्रतिक्रियाहीन कैसे बन सकते हैं?” मैंने पूछा।

“ध्यान करिए,” दाजी ने कहा। “ध्यान में हम अपने विचारों को नज़रअन्दाज़ करना सीखते हैं। हम न तो उनकी ओर ध्यान देते हैं और न ही उनसे लड़ते हैं। वे हमारे सामने से एक स्वप्न की तरह गुज़रते रहते हैं। जब हम जागृत अवस्था में भी उतने ही प्रतिक्रियाहीन हो पाते हैं जितने कि हम ध्यान के दौरान होते हैं तो हम संस्कार बनाना पूरी तरह से बन्द कर देते हैं। तब वास्तविक स्वतन्त्रता का उदय होता है। तब हमें ध्यानस्थ अवस्था बनाये रखने का प्रयत्न नहीं करना पड़ता क्योंकि अब हमारे अन्दर कुछ भी नहीं बचता जो किसी बाहरी चीज़ से प्रतिक्रिया कर सके। इस तरह हम प्रवृत्ति से अन्तःप्रेरणा की ओर, अवचेतन से अधिचेतन की ओर एवं प्रतिक्रिया करने वाले मन से एक प्रत्युत्तर देने वाले हृदय की ओर अग्रसर होते हैं।”

सफाई करना

सफाई की प्रक्रिया एक बहुमूल्य साधन है जिसके कई व्यावहारिक उपयोग हैं। यह हमें अपनी सीमाओं से परे जाने में मदद करती है और साथ ही इस जीवन की अपार जटिलताओं में फँसने से भी बचाती है। ऐसे कई अवसर आये हैं जब इस सफाई ने मुझे जीवन में बड़ी ग़लतियाँ करने से बचाया है। सिर्फ़ कुछ मिनटों की सफाई भी हमारे अन्दर अत्यधिक स्पष्टता और समझदारी पैदा कर देती है।

“मैं सोचता हूँ कि सफाई की विधि सम्भवतः हार्टफुलनेस अभ्यास का सबसे महत्वपूर्ण अभ्यास है।” दाजी ने कहा। “चारीजी कहा करते थे सफाई के बिना ध्यान वैसा ही है जैसे कीचड़ में फँसी एक आलीशान कार। एक शानदार सड़क के बिना एक सुपर कार बहुत अच्छी नहीं चलेगी! इसी प्रकार चाहे जितना आप ध्यान कर लें, बिना सफाई के आप ज़्यादा दूर नहीं जा पायेंगे। क्योंकि जो खूबसूरत आन्तरिक दशा आप ध्यान से उत्पन्न करेंगे वह अशुद्धता की कई परतों से ढकी रहेगी।”

“फिर भी हमें स्वयं को कभी अशुद्ध या गन्दा नहीं समझना चाहिये। स्वयं को अशुद्ध समझे बिना हम शुद्धता की ओर बढ़ते हैं। बिना स्वयं को जटिल मानते हुए हम सरलता की ओर बढ़ते हैं। अपने संस्कारों के नीचे तो

हम पहले से ही शुद्ध और सरल हैं! अशुद्धता कभी भी आत्मा को स्पर्श नहीं करती। यह केवल इसे ढक देती है और हमारी चेतना को रोशन करने वाली इसकी दिव्य किरणों को रोकती है। ऐसा होने से हमारी जागरूकता क्षीण हो जाती है। हमारी समझ कम हो जाती है। हमें केवल अशुद्धता और जटिलता हटानी है और हमारी शुद्धता और सरलता की स्वाभाविक दशा प्रकट हो जाती है।”

“तो हमें सफाई केवल दैनिक कार्य की तरह करनी चाहिये।” मैंने कहा।

“बिल्कुल,” दाजी बोले। “इसे उसी भावना से करिये जिस भावना से आप नहाते हैं। साफ-सुथरा रहने की एक आदत की तरह। नहाना-धोना या दाँत साफ करना बाहरी सफाई का मामला है। हार्टफुलनेस सफाई का सम्बन्ध आन्तरिक सफाई से है। यह आपकी चेतना को शीशे की तरह साफ़ कर देती है।”

“जब आप कहते हैं ‘अशुद्धि’ तो आपका मतलब होता है संस्कार। ठीक?” मैंने पूछा।

“हाँ” दाजी बोले। “परन्तु यह सब दर्शन और सिद्धान्त के दायरे में है। जब आप वास्तव में सफाई करते हैं तो उसके बाद बहुत हल्का महसूस करते हैं। आप बहुत तरोताज़ा महसूस करते हैं। यह एक वास्तविक अनुभूति है। यह अनुभूति आपको प्रेरित करती है, भले ही आप संस्कारों के सिद्धान्त से सहमत हों या नहीं। मैं सोचता हूँ कि हल्केपन की अनुभूति ही वह कारण है जिससे ज्यादातर लोग इस विधि का उपयोग करते हैं। वे स्वयं में कुछ अन्तर महसूस करते हैं जिसकी वे सराहना करते हैं।”

“समय के साथ हम अपने अन्दर परिवर्तन पाते हैं। कई आदतें और प्रवृत्तियाँ चली जाती हैं। कभी-कभी आपको पता भी नहीं पड़ता कि वे चली गयी हैं। फिर कोई कहता है, ‘ये आपको क्या हो गया है? आप तो हर समय चिड़चिड़ाते रहते थे।’ ‘ओह, सच में?’ आप कहते हैं। आपको तो ये याद भी नहीं।”

“सामान्यतया हम पन्द्रह से तीस मिनिट के लिए शाम को सफाई करते हैं। हालाँकि, कई बार ऐसा होता है कि हम दिन के अन्त का इन्तज़ार नहीं करते। फिर भी कभी ऐसा होता है कि आप किसी तर्क में उलझ जाते हैं या कुछ ऐसा देखते हैं जो आपको हिला देता है। इस स्थिति में बैठें और तुरन्त सफाई करें। भले ही दो से तीन मिनिट के लिए। यदि भोजन करते समय आपकी शर्ट पर चटनी गिर गयी हो तो क्या इसे साफ़ करने या कपड़े बदलने के लिए आप शाम तक का इन्तज़ार करेंगे? आप इन्तज़ार नहीं करेंगे। यह ठीक ऐसा ही है। अपनी चेतना पर लगे उस धब्बे को दिन भर न रहने दें। उस भारी बोझ को अनावश्यक मत रखें। इस पर तुरन्त ध्यान दें। यदि कुछ

ज्यादा ही हो गया हो और आप बहुत विचलित महसूस कर रहे हों तो किसी हार्टफुलनेस प्रशिक्षक से सम्पर्क करके उनसे सिटिंग लेने के लिए अनुरोध करें। वे आपके साथ ध्यान करेंगे, यौगिक प्राणाहृति से आपकी सहायता करेंगे।”

“जब हम एक प्रशिक्षक से सिटिंग लेते हैं तो हमारे ध्यान करते समय वे हमारी सफाई करते हैं। एक प्रशिक्षक द्वारा की गयी सफाई उससे गहरी अधिक होती है जो हम अपने दैनिक व्यक्तिगत अभ्यास के दौरान करते हैं। सिटिंग लेते समय हम केवल ध्यान करते हैं और प्रशिक्षक को उनका कार्य करने देते हैं। उस समय हम सफाई की विधि नहीं अपनाते क्योंकि प्रशिक्षक इसे अपने स्तर पर कर रहे होते हैं। परन्तु जब हम स्वयं सफाई करते हैं तो उस समय हम ध्यान नहीं करते। हम केवल प्रक्रिया के अनुसार सफाई करते हैं।”

“हम कैसे सुनिश्चित करें कि हम सफाई ही कर रहे हैं, ध्यान नहीं?” मैंने पूछा।

“ध्यान में आप केवल स्वयं को शिथिल कर उसमें गहरे और अधिक गहरे जाते हैं,” दाजी बोले। “परन्तु सफाई एक ज्यादा सक्रिय प्रक्रिया है। सफाई में, हम सब कुछ बाहर निकालने के लिये इच्छाशक्ति का प्रयोग करते हैं। इसलिये जब हम सफाई के लिये बैठते हैं तो हमें सचेत रहना चाहिये।”

“परन्तु सबसे अच्छा यह होगा कि छापें बनाने से ही बचें” दाजी हँसते हुए बोले। “कुछ परिस्थितियाँ संस्कार बनाने के लिए बाध्य कर देती हैं। उदाहरण के लिये, एक बहस। बहस शुरू होने के पहले ही आपको मालूम होता है कि क्या होने वाला है। आप जानते हैं कि दूसरा व्यक्ति जो कह रहा है वह आपको पसन्द नहीं। यही वो समय है जब आपको जागरूकता की आवश्यकता होती है। इससे पहले कि कठिन वार्तालाप शुरू हो, दूसरे के प्रति समझदार और करुणामय बन कर स्वयं को बचा लें। परन्तु आपको स्वयं को भी समझना होगा! आपको मालूम पड़ जाता है कि आप कैसे प्रतिक्रिया करने वाले हैं अतः उस समय स्वयं पर एक रोक लगायें।”

“सामान्यतः हम सोचते हैं कि सफाई रोगनिवारक होती है। आप इसका उपयोग स्वयं को साफ़ करने और अपनी आन्तरिक दशा को सामान्य करने में करते हैं। परन्तु सफाई सुरक्षात्मक भी हो सकती है। एक बार अस्सी के दशक में मैं न्यूयार्क में अपनी पहली फार्मेसी में काम कर रहा था। उस समय हमारे साथ एक प्रशिक्षु कार्यरत था जो नवविवाहित था। उसने उन्हीं दिनों ध्यान भी शुरू किया था। उसके कार्यों में से एक था चिकित्सालय और अस्पताल में दवाईयाँ वितरित करना जहाँ वह नसों से मिलता था, जो मरीजों को दवाईयाँ वितरित करती थीं। एक दिन, वह शर्माता हुआ वापस लौटा। ‘कमलेश, मैं बड़ी समस्या में हूँ।’ ‘क्या हुआ?’ मैंने कहा। ‘एक नर्स मेरे पीछे पड़ी है। वह

लाजवाब है! बहुत सुन्दर है! मेरा हृदय धड़क रहा है, परन्तु मैं विवाहित हूँ। मुझे यह सोचना भी नहीं चाहिये, परन्तु मैं उससे मिलना चाहता हूँ। देखो, उसने मुझे अपने अपार्टमेंट की चामी दी है। आज रात मुझे उससे मिलना है।'

मैंने कहा, "मुझे खेद है, मैं आपकी कोई मदद नहीं कर सकता।" उस समय बहुत-सी बातें चल रहीं थीं। परन्तु तभी मुझे एक विचार आया। 'चारीजी को एक पत्र लिखते हैं।' उसने कहा, 'जब तक मैं पत्र लिखूँगा और उसका उत्तर आयेगा, तब तक तो बहुत देर हो चुकी होगी। वह आज रात ही मेरी राह देख रही है। उस समय फैक्स मशीन एक नयी चीज़ थी। इसलिए मैंने उससे कहा, 'ठीक है, पत्र लिखो, हम उन्हें फैक्स करेंगे।' न्यूयार्क में उस समय दिन था, इसलिये भारत में, जहाँ चारीजी थे, अर्धरात्रि का समय था। हालाँकि, वह फैक्स मशीन को पलांग के पास ही रखकर सोते थे। तो उस प्रशिक्षु ने पत्र लिखा। 'कृपया मेरी मदद कीजिये। मैं इसका विरोध नहीं कर पा रहा हूँ।' लगभग तत्काल ही उत्तर आ गया : 'बैठो और पाँच मिनट के लिये सफाई करो। तब अपने हृदय से पूछो।' तो मैंने कहा, 'कार्यालय में जाओ और वहाँ पर यह करो।' वो गया। सफाई की। वापस आया और बोला, 'कमलेश, मुझे यह पत्र नहीं लिखना चाहिए था।' मैंने उनसे पूछा, क्यों? वह बोला : अब वह इच्छा ही नहीं रही, और मुझे यह मौका गँवाना पड़ेगा!"

"तो देखें, जब हम सफाई करते हैं तो इच्छायें कमजोर पड़ जाती हैं और सब कुछ स्पष्ट होने लगता है। यदि वह युवा स्त्री से मिलता तो गहरी छापें निर्मित कर लेता और अन्ततः अपराधबोध बना लेता। इसलिये सफाई सुरक्षात्मक भी होती है। अब मान लीजिये काम पर आपका दिन तनाव में गुजरा। जब आप घर पहुँचेंगे तो आप प्रतिक्रियाशील स्थिति में होंगे। हो सकता है आपकी पत्नी का दिन भी मुश्किल भरा रहा हो इसलिए वह भी प्रतिक्रियाशील स्थिति में हो। आप क्या सोचते हैं कि जब आप बातचीत करेंगे तो क्या होगा? पटाखे! इसलिए सबसे अच्छा है सफाई करना, पहला काम। जैसे ही आप घर पहुँचें, इसे करें। आपकी बातचीत ज्यादा शान्तिपूर्ण होगी और ज्यादा प्रेमपूर्ण भी।"

आपने बच्चों का खिलौना लटू देखा होगा। जब वह अपनी धुरी पर धूमता है तो इसे गिराना आसान नहीं होता। आप इसे तभी गिरा सकते हैं जब यह असन्तुलित हो या जब यह अपनी धुरी पर लड़खड़ा रहा हो। ज्यादातर, हमारी हालत भी यही होती है। जब हम शाम को घर लौटते हैं तो हम अपनी धुरी पर धूमते रहते हैं। इसलिये इसके पहले कि प्रतिक्रिया करने का मौका आये, हम सफाई करके स्वयं को स्थिर कर लेते हैं। अन्यथा यह भेरे पसीने में जिम से लौटकर परिवार को गले लगाने जैसा होगा! इससे कोई फर्क नहीं

पड़ता कि वे आपको कितना प्यार करते हैं। वे तो आपको पहले नहाने को ही कहेंगे! अपनी सफाई करने के बाद आप दूसरों से बातचीत के लिए तैयार होते हैं। खुद अपने और उनके, दोनों के लिए। तो देखें कि हमें दूसरों के प्रति सतर्क रहना चाहिये। मेरी क्रियाओं और व्यवहार से दूसरों में छापें नहीं बननी चाहिये। यह विशेषतः तब सच है जब उनके पास संस्कारों को बाहर निकालने की कोई विधि न हो। हमारे पास स्वयं को साफ़ करने की विधि है। यदि हम संस्कार बनाते हैं तो हम उन्हें बाहर कर सकते हैं। पर दूसरों के साथ ऐसा नहीं है। यदि वे कोई छाप बनाते हैं तो उसे हटाने की कोई आसान विधि उनके पास नहीं होती।”

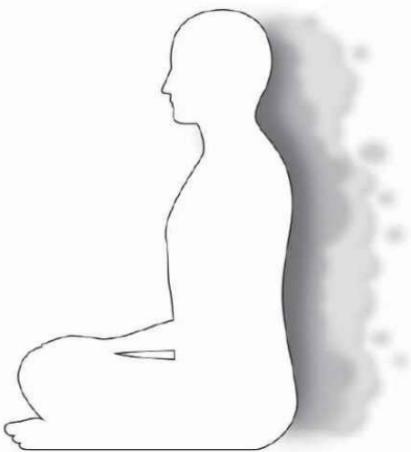
“केवल अपनी सफाई करके हम दूसरों की मदद भी कर सकते हैं। हमारे कई संस्कार साझा संस्कार होते हैं। उदाहरण के लिए, परिवार के सदस्यों की प्रवृत्तियाँ और लक्षण प्रायः एक जैसे होते हैं। यह साझा संस्कारों का परिणाम होता है। अब सफाई से उस संस्कार विशेष को साफ़ करके आप इसे दूसरों में भी क्षीण कर सकते हैं। साझा संस्कार के अपने हिस्से को बाहर करना पर्वत के नीचे की परत को हटाने के समान है। धीरे-धीरे, पूरा विन्यास टूट जायेगा और खत्म हो जायेगा।”

“तो जब हम स्वयं की सफाई करते हैं तो हम दूसरों की भी सफाई करते हैं।” मैंने कहा।

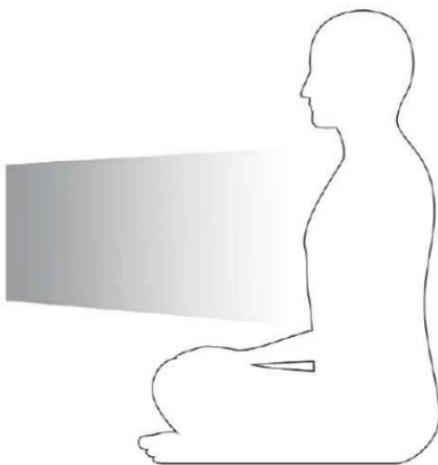
“हाँ” दाजी बोले, “परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से। अब ज़रा कल्पना कीजिये कि यदि लाखों लोग सफाई करने लगें तो...? ज़ाहिर है विश्व में आप तीव्र परिवर्तन देखेंगे!”

सफाई

- दिन भर एकत्र हुई छापों को बाहर निकालने के इरादे से सुविधाजनक आसन में बैठें।
- अपनी आँखें बन्द करें। कल्पना करें कि सभी जटिलताएँ और अशुद्धियाँ आपके पूरे तन से बाहर निकल रही हैं।
- आपकी टेलबोन से लेकर सिर के ऊपरी भाग तक के क्षेत्र से, आपके पीछे की तरफ से, ये बाहर की ओर बह रही हैं।
- महसूस करें कि ये धुएँ या वाष्प के रूप में आपसे बाहर निकल रही हैं।



- सतर्क रहें। धीमे से, आत्मविश्वास और दृढ़ संकल्प के साथ, प्रक्रिया को तेज करें, आवश्यकतानुसार इच्छाशक्ति का प्रयोग करें। यदि आपका ध्यान भटकता है और अन्य विचार मन में आते हैं तो धीमे से फिर से सफाई पर केन्द्रित हो जायें।
- इस प्रक्रिया को लगभग बीस से तीस मिनट तक जारी रखें। जब आप अपने हृदय में सूक्ष्म हल्कापन महसूस करने लगें तो समझ लें कि सफाई पूर्ण हो चुकी है।
- अब कल्पना करें कि स्रोत से पवित्रता की एक धारा आपके तन्त्र में सामने से प्रवेश कर रही है। यह आपके पूरे तन्त्र में बह रही है और शेष बची जटिलताओं और अशुद्धियों को बाहर ले जा रही है।



- इसे एक या दो मिनट तक जारी रखें।
- अब आप एक सरल, शुद्ध और सन्तुलित अवस्था में आ चुके हैं। आपके शरीर की प्रत्येक कोशिका सरलता, हल्कापन और पवित्रता उत्सर्जित कर रही है। इस दृढ़विश्वास के साथ इसे समाप्त करें कि सफाई की प्रक्रिया प्रभावी तरीके से पूर्ण हो चुकी है।

5.

प्रार्थना



हार्टफुलनेस का तीसरा मुख्य अभ्यास है एक विशेष प्रार्थना, जिसे हम प्रतिदिन दो बार करते हैं। हालाँकि प्रार्थना को हम किसी भी समय अपने हृदय की प्रेरणा के अनुसार कर सकते हैं।

प्रार्थना आध्यात्मिक का धड़कता दिल है। सभी आध्यात्मिक मार्गों में प्रार्थना एक आवश्यक अंग होती है। हालाँकि इसके अभ्यास और उद्देश्य भिन्न प्रकार के हो सकते हैं परन्तु यह स्वयं को उच्चतर के साथ जोड़ने का एक माध्यम है। यदि प्रार्थना सही मनोवृत्ति के साथ की जाये तो प्रार्थना स्वयं के भी पार जा कर एक स्थायी, प्रार्थनामाय स्थिति बन जाती है जो हमारी समस्त गतिविधियों में व्याप्त रहती है।

वुड्स (अमेरिका) में दाजी के साथ ठहलते हुए मैंने उनसे पूछा “प्रार्थना क्या है?”

दाजी ने कहा, “यह हृदय की आन्तरिक पुकार है। हृदय की भावनाओं को तार्किक मन से नहीं बदला जा सकता। सामान्यतः हम तभी प्रार्थना करते हैं जब हमें किसी चीज़ की कमी होती है। ऐसी परिस्थिति में जो हमारे बर्दाश्त के बाहर हो, प्रार्थना करना स्वाभाविक है। परन्तु जब हम खुश हों तो ये अहसास भी प्रार्थना बन सकता है यदि उस क्षण हम ईश्वर के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ लें और उसके प्रति कृतज्ञ हो जायें। इस स्थिति में आप कुछ माँग नहीं रहे होते। आप अपनी खुशी बाँट रहे होते हैं ठीक उसी प्रकार जैसे आप आन्तरिक पुकार से अपना दुःख बाँटते हैं।”

मैंने कहा, “लेकिन ज्यादातर तो प्रार्थना में हम कुछ माँगते ही हैं।”

दाजी ने कहा “यह हमारी इच्छाओं और भय के कारण है। भय के कारण हम दिव्य सुरक्षा खोजते हैं और इच्छाओं के कारण दिव्य दाता खोजते हैं।

यह भाव एक ऐसे ईश्वर की अभिधारणा को जन्म देता है जो ये दोनों कार्य करता हो। ईश्वर को हम अपने रक्षक और दाता के रूप में मान कर उसी के अनुसार उसकी प्रार्थना करते हैं। ‘हे ईश्वर! बीमारी से मेरी सुरक्षा करो या मेरे प्रिय ईश्वर, कृपया मुझे नौकरी दिलाने की कृपा करो! इस प्रकार हर व्यक्ति अपनी ज़रूरत के हिसाब से ईश्वर को देखता है। उदाहरण के लिए एक कमज़ोर व्यक्ति ईश्वर को जहाँ ताकत देने वाला समझता है वहीं एक बीमार व्यक्ति उसे स्वास्थ्य प्रदान करने वाले के रूप में देखता है। लेकिन ईश्वर इनमें से कोई नहीं है। ये अभिधारणायें हमारी आवश्यकताओं की प्रक्षेपण मात्र हैं। यही कारण था कि महात्मा बुद्ध ने कभी ईश्वर के बारे में नहीं बोला। उनका विचार था कि अगर हम अपने भय और अपनी इच्छाओं को दूर कर लें तो एक ही झटके में ईश्वर के बारे में तमाम अभिधारणायें स्वतः समाप्त हो जायेंगी। उनका नज़रिया बिलकुल सही था। जब तक ऐसा नहीं होता तब तक ईश्वर के प्रति हमारे विचार मात्र कल्पना हैं।”

“फिर ईश्वर क्या है?” मैंने पूछा।

दाजी ने हँसते हुए कहा “एक बार एक व्यक्ति बाबूजी के पास एक प्रश्न लेकर आया “क्या आप मुझे ईश्वर दिखा सकते हैं?” बाबूजी का जबाब था, “यदि मैं आपको ईश्वर दिखा भी दूँ तो आप पहचानेंगे कैसे कि वह ईश्वर है?”

यह ऐसे ही है जैसे कोई छोटा बच्चा अपनी माँ से पूछे “मैं कहाँ से आया?” माँ केवल इतना कह पाती है “एक दिन तुम जान जाओगे।” ऐसी चीज़ें उचित अवसर पर ही प्रकट की जाती हैं। तब, जब आप इसके लिए तैयार हों।

मैंने पूछा, “ईश्वर को जानने के लिए हमें अपनी कल्पनाओं की जकड़ से बाहर निकलना चाहिए पर उसके लिए पुल्लिंग शब्द इस्तेमाल करके क्या हम उसे बँधन में नहीं जकड़ रहे?”

दाजी ने कहा “यह ऐसा शब्द है जिससे सभी परिचित हैं। यह ईश्वर का वर्णन नहीं है। ईश्वर का वर्णन नहीं किया जा सकता। उसका कोई नाम नहीं है, न पुल्लिंग और न स्त्रीलिंग। उसका न तो कोई रूप है और न ही कोई गुण। दरअसल बिना झूठ बोले ईश्वर के बारे में कुछ बोला ही नहीं जा सकता।”

ठहलते हुए जब हम थोड़ा और आगे बढ़े तो उन्होंने कहा, “मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूँ जिसे बाबूजी महाराज अक्सर सुनाया करते थे।”

दाजी एक संन्यासी की कहानी सुनाने लगे जो किसी राजा के पास भिक्षा माँगने जाता है। राजमहल पहुँचने पर उसे बताया गया कि राजा अभी

प्रार्थना कर रहे हैं। क्योंकि संन्यासी एक पवित्र आदमी था अतः वह प्रार्थना के समय राजा के साथ बैठ सकता था। उसे प्रार्थना कक्ष में ले जाया गया। एक साधु को आया देख राजा उसकी ओर मुड़ा और उसका स्वागत किया लेकिन उसे थोड़ा धैर्य रखने को कहा क्योंकि उसकी प्रार्थना अभी पूरी नहीं हुई थी। संन्यासी वहाँ बैठ गया और देखता रहा।

राजा प्रार्थना कर रहा था “हे ईश्वर! मुझे मेरे शत्रुओं पर विजय दिलाओ, मुझे और अधिक क्षेत्रों का आधिपत्य दो, मेरे राज्य को धनी बनाओ और मुझे एक महान राजा। राजा कुछ देर तक इसी में लगा रहा। संन्यासी अचानक उठा और दरवाजे की ओर जाने लगा।

राजा बोला “थोड़ी प्रतीक्षा करो। अभी तो आप आये हैं फिर जा क्यों रहे हैं?”

संन्यासी ने राजा से कहा “महाराज! मैं आपसे भिक्षा माँगने आया था लेकिन अब मुझे मालूम पड़ा कि आप भी मेरी ही तरह एक भिक्षुक हैं। इसलिए मैं चलता हूँ और उसी से माँग लूँगा जिससे आप माँग रहे हैं!”

दाजी ने कहा “घुटनों के बल झुक कर आशीर्वाद और फायदे की माँग करना बेवकूफी है। स्वार्थपूर्ति के लिए प्रार्थना करना ठीक वैसा ही है जैसे पैसों के लिये विवाह करना। इससे सम्बन्धों का स्तर गिर जाता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि हमारी माँग भौतिक है या आध्यात्मिक। दोनों ही हृदय के शिष्टाचार के विरुद्ध हैं।”

“उदाहरण के लिए कुछ लोग नर्क जाने के भय से ईश्वर की ओर देखते हैं और कुछ स्वर्ग जाने के लालच से। लेकिन प्यार के बदले कुछ माँगना उसकी पवित्रता पर दागा लगाना है। ऐसा करके हम सृष्टिकर्ता के साथ अपना सम्बन्ध बिगाड़ लेते हैं। अच्छे से अच्छा मानें तो यह एक व्यापारिक सौदे जैसा है और बुरे से बुरा मानें तो उसे घूस देने जैसा। इसीलिए ‘प्रेम की खातिर प्रेम’ अवधारणा की इतनी तारीफ़ की जाती है। ईश्वर के सच्चे प्रेमी के कोई छिपे इरादे नहीं होते। उसे किसी स्वर्ग या नर्क की परवाह नहीं होती और न ही किसी आशीर्वाद या आध्यात्मिक प्रगति की। वह प्रेम में ही सन्तुष्ट रहता है। जब देने वाला ही आपके पास हो तो उससे कुछ माँगना क्यों? केवल प्रेम से ही यह सम्भव हो सकता है।”

उदाहरण के लिए मान लें कि जिससे आप प्रेम करते हैं उसे आप कोई उपहार दें। आप सोचते रहते हैं कि उसके लिए सबसे ज्यादा क्या ठीक रहेगा। आप कुछ खरीदते हैं और बड़े प्यार के साथ पैक करते हैं। और जब आप अपने प्रेमी को वह देते हैं तो वह आपके हाथ से उपहार को छीन लेता है, उसकी पैकिंग को फाड़ता है और बिना किसी शिष्टाचार के चला जाता है। जरा सोचें कि आपको कैसा लगेगा? उसने उपहार को तो स्वीकार कर

लिया लेकिन देने वाले को नज़रअन्दाज़ कर दिया। अगर आप वाकई उससे प्रेम करते हैं तो आपको बुरा नहीं लगेगा। लेकिन उसने आपके उपहार का मर्म नहीं समझा।

देना प्रेम की एक क्रिया है जिससे देने वाला और लेने वाला दोनों आपस में मिल सकें। आशीर्वाद का कोई अर्थ नहीं यदि इससे देने वाले के साथ आत्मीयता पैदा न हो। एक दूसरा उदाहरण लेते हैं। एक व्यक्ति अपने धनी रिश्तेदार का उत्तराधिकारी बनने के लिए उससे अपनापन जताता है। उसे उत्तराधिकार मिल सकता है लेकिन इस प्रक्रिया में वह बहुत कुछ खो भी देता है। सम्बन्ध की पवित्रता नष्ट हो जाती है।

अगर आप दाता को चाहते हैं तो उपहारों को भूल जाइए, आशीर्वाद को भूल जाइए, आध्यात्मिक उपलब्धियों को भूल जाइए। वे अपने तरीके से आयेंगे। पहले से ही उनका विचार अपने अन्दर मत लाइए। जब वही आपके हृदय में बैठा हुआ है तो फिर आपको और क्या चाहिए? इसीलिए कुछ लोग केवल उसी के लिए प्रार्थना करते हैं।”

मैंने पूछा, “क्या करें कि वह इतनी उत्कृष्ट प्रार्थना का जवाब दे सके? क्या करें कि वह स्वयं को ही हमें सौंप दे?”

दाजी ने कहा, “वह तो हर समय स्वयं को सौंपने के लिए तैयार है। यह उसका स्वभाव है। लेकिन यह भी, कि यद्यपि उसका आशीर्वाद, उसकी प्राणाहुति और उसकी कृपा हमेशा उपलब्ध है पर वर्षा की फुहार और मूसलाधार बारिश में बड़ा फ़र्क है।”

मैंने पूछा, “वह क्या है जिससे वह हम पर पूरी तरह से बरस जाये बजाय इसके कि वह बूँद-बूँद करके हमें आशीर्वाद दे।”

दाजी ने कहा, “बाबूजी ने एक कविता को उद्घृत करते हुए बताया है,

मये वहदत के तालिब, दिल भी कर बहरे तलब खाली।
तहीं पैमाने पर महफिल में सिर झुकता है बोतल का।।

‘ओ दिव्य मदहोशी के प्यासे! इसे पाने के लिए अपने हृदय को खाली कर दे क्योंकि खाली प्याले पर ही एक भरी हुई शराब की बोतल झुकती है।’

(चन्द्रा : 2009)

मैंने कहा, “इसलिए कुछ भरने के लिए हमें खाली होना पड़ेगा।”

दाजी ने कहा, “हाँ! अगर हमारे हृदय पहले से ही भरे हुए हैं तो इसमें किसी और चीज़ के लिए जगह ही कहाँ होगी? हमें तो अपने हृदय में

खालीपन पैदा करना होगा। खालीपन आकर्षित करता है। क्या आप जानते हैं कि वर्षा कैसे होती है?”

मैंने कहा, “वर्षा तब होती है जब कम दबाव का क्षेत्र बनता है।”

दाजी ने कहा, “हाँ! खालीपन पैदा होता है और उस खालीपन में आस-पास की वायु आकर्षित होती है और ऊपर उठती है। यह ठण्डी होती है और इससे वर्षा होती है। इसीलिए अगर आप दिव्य वर्षा चाहते हैं तो आपको अपने हृदय में कम दबाव पैदा करना होगा। मतलब आपका हृदय खाली होना चाहिए। उपहार, आशीर्वाद या गुण प्राप्त करने की इच्छाओं से रहित। तभी आन्तरिक खालीपन पैदा होगा। और यह स्वतः ही दिव्य वर्षा को अपनी ओर आकर्षित कर लेगा। जब आपका हृदय पूरी तरह से खाली हो जायेगा तो ईश्वर वहाँ रहने आ जायेगा। इसकी वह उपेक्षा नहीं कर सकता।”

मैंने कहा, “लेकिन खालीपन में केवल अच्छी चीज़ें ही आकर्षित हों, यह ज़रूरी तो नहीं।”

दाजी हँसे, “सही बोला। अगर हृदय में एक छोटी-सी इच्छा भी बची होगी तो यह खालीपन मुसीबत को आकर्षित कर सकता है। हृदय अनन्त तो है लेकिन एक छोटी-सी इच्छा ही इस अनन्त को अनन्त रूप से भर सकती है। ऐसा होने पर हृदय स्वयं को भरने के लिए सांसारिक चीज़ें खोजता है। तुरन्त ही दुनिया भर की चीज़ें इसमें भर जाती हैं और खालीपन नष्ट हो जाता है। जरा-सी असावधानी हुई तो उसका मूल्य चुकाना पड़ेगा। हृदय में खालीपन होना अच्छी बात है, लेकिन तभी जब हमारा हृदय उच्चतर चीज़ों की ओर उन्मुख हो।”

मैंने कहा, “इसका मतलब यह है कि जब आप ‘आन्तरिक खालीपन’ की बात करते हैं तो आपका आशय एक ‘इच्छारहित दशा’ से होता है?”

“उससे भी अधिक,” दाजी ने कहा। “यह खुद को पूरी तरह से मिटा देने जैसा है। प्लेटो ने कहा था, ‘खुद को जानो’ लेकिन बाबूजी महाराज का विचार भिन्न था। उनका कहना था, ‘खुद को भूल जाओ’।”

“ईसामसीह ने कहा, ‘जो सरल और विनम्र हैं वे ही स्वर्ग में पहुँचेंगे।’ सामान्यतया हम समझते हैं कि वे लोग मृत्यु के बाद स्वर्ग में पहुँचते हैं लेकिन सच्चाई यह है कि जो हृदय सरल, मासूम और अहंकारहित होते हैं वहाँ स्वर्ग स्वतः ही उतर आता है। ऐसे लोग जहाँ भी जाते हैं खुद के इर्द-गिर्द स्वर्ग की रचना कर लेते हैं।”

“लेकिन जहाँ हृदय पहले से ही पूर्णतः सन्तुष्ट हो, वहाँ स्वर्ग की उपस्थिति और अधिक सन्तोष कैसे ला सकती है? यौगिक शब्दावली में पूर्ण सन्तुष्टि की इस दशा को ‘उपरति’ कहा जाता है। उपरति में हम न तो

इस दुनिया की कोई चीज़ पाने की इच्छा रखते हैं न ही उस दुनिया की! प्रायः हम इच्छाओं की पूर्ति को ही सन्तुष्टि समझते हैं। उदाहरण के लिए अगर आपने दिन में 5-कोर्स मील खाया है तो क्या उसके बाद आप और भी खाना चाहेंगे? आप भर चुके हैं। लेकिन यह उपरति नहीं है क्योंकि कल फिर आपको भूख लगेगी। पूर्ति के लिए किसी इच्छा का ही न होना पूर्ण सन्तुष्टि कहलाता है। आप उनसे मुक्त हो जाते हैं। जबकि पहले आप उनके गुलाम थे। उनकी पूर्ति के लिए आपने लगातार काम किया। अब आप मुक्त हैं। इससे हमें यह भी ज्ञात होता है कि सन्तुष्टि का उल्टा क्या होता है?”

“हाँ,” मैंने कहा, “इच्छाओं से लदे होना!”

“इन इच्छाओं के अनुसार ही हममें से अधिकतर प्रार्थना करते हैं।” दाजी ने कहा, बाबूजी की कहानी के राजा की तरह। इच्छाएँ जिनकी पूर्ति करना हमारा उद्देश्य होता है, सामान्यतः चार विशेष प्रकार की हो सकती हैं। यौगिक परम्परा में इन चार इच्छाओं को अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष के नाम से जाना जाता है। इन चार इच्छाओं का सम्बन्ध हमारे हृदय में स्थित बिन्दुओं A, B, C और D से भी है जिनकी बात हम संस्कारों की सफाई करने के सन्दर्भ में पहले कर चुके हैं।”

“आइए, पहले हम ‘अर्थ’ के बारे में बात करें जो भौतिकता की पूर्ति के लिए हमारी इच्छा है। यह स्वाभाविक प्रेरणा है, जिसमें हमारी सबसे मौलिक ज़रूरतें—रोटी, कपड़ा और मकान शामिल हैं। लेकिन यह ज्यादा से ज्यादा इकट्ठा करने की प्रवृत्ति के रूप में भी प्रकट हो सकती है। हम वस्त्र खरीदते हैं, मकान खरीदते हैं, फिर कार और इलेक्ट्रॉनिक्स के सामान भी। चाहे हम आधुनिकतम स्मार्ट फोन में व्यस्त हों या बिलों के भुगतान के लिए परेशान हों, ये सभी चीजें एक संस्कारिक स्पन्दन बनाती हैं जो बिन्दु A पर जाते हैं।”

“ध्यान करने से पूरी तरह तो नहीं परन्तु एक आवश्यक सीमा तक हम बाह्य भौतिक संसार से हट कर भीतर की ओर मुड़ जाते हैं। परिणामस्वरूप हम अपने से बाहर की वस्तुओं में सन्तोष ढूँढ़ने की ज़रूरत को महसूस करना बन्द कर देते हैं। हमने इसे भीतर ही पा लिया है! अब हम अपनी समस्याओं के लिए भी ज्यादा चिन्तित नहीं होते। हमारा नज़रिया विस्तृत हो जाता है।”

“और इसीलिए हमारी प्रार्थना में वो बाहरी प्रवृत्ति नहीं झलकती,” मैंने कहा।

“ठीक,” दाजी बोले। “ध्यान हमें पूरी तरह बदल देता है। यह परिवर्तन कई रूपों में दिखाई देता है।”

“इच्छाओं का दूसरा प्रकार यौन सन्तुष्टि के लिए है जिसे हम ‘काम’ कहते हैं। काम की इच्छा से उत्पन्न संस्कार बिन्दु B पर इकट्ठे होते हैं जिससे वासना का जन्म होता है।”

मैंने कहा, “लगभग सभी धर्मों में ब्रह्मचर्य की एक परम्परा है। क्या हमें अपनी काम सम्बन्धी इच्छाओं को सन्तुष्ट करने से बचना चाहिए? क्या आपका यह मानना है कि यौन क्रिया केवल सन्तान उत्पत्ति के लिए ही होनी चाहिए?”

“मैं आपसे एक घटना का जिक्र करूँगा,” दाजी ने कहा। “जब मैं उत्तर भारत में भ्रमण कर रहा था तब एक वृद्ध व्यक्ति मेरे पास एक ज्वलन्त प्रश्न ले कर आया। उसने कहा, ‘ऐसा क्यों होता है कि जब भी मैं यौन क्रिया करता हूँ तो उसके बाद मैं खुद को अपराधी महसूस करता हूँ?’ मैंने कहा, ‘इसीलिए क्योंकि आप केवल खुद को सन्तुष्ट करते हैं और दूसरे के बारे में एक बार भी नहीं सोचते।’”

“अपराध बोध केवल तभी आता है, जब हम स्वार्थी होते हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि यह स्वार्थ किस के लिए है। यह यौन क्रिया भी हो सकती है या कुछ और भी। उदाहरण के लिए जब आप न्यूयार्क शहर के किसी सब-वे में जाते हैं और दौड़ कर किसी वृद्ध व्यक्ति से आगे निकल कर अपनी सीट ले लेते हैं, तो क्या तब आप अच्छा महसूस कर सकते हैं? जब भी स्वार्थ हम पर हावी होता है, हम अपराधबोध महसूस करते हैं। लेकिन इसके विपरीत जब हमारा दृष्टिकोण परोपकारी होता है तो एक रहस्यमय आनन्द हमारे हृदय में उठने लगता है। परोपकार स्वाभाविक चीज़ है। जब कोई कुत्ता भौंक कर किसी भेड़ को भेड़िये से सावधान करता है तो क्या यह परोपकार नहीं है?”

“दूसरों का फ़ायदा उठाना, अपनी खुशी के लिए किसी दूसरे व्यक्ति को निशाना बनाना, अपराध बोध पैदा करता है। इसकी तुलना आप उस भक्ति से करें जो किसी देवी की मूर्ति की पूजा बड़े प्रेम से करता है। प्रेम एक वस्तु मात्र को पूजनीय देवी बना देता है। यहाँ आपको चुनने की स्वतन्त्रता है : किसी वस्तु को देवी में बदल दें या फिर किसी देवी को एक वस्तु में। इनमें एक स्वार्थरहित है और दूसरा स्वार्थपूर्ण। एक उत्कृष्टता की ओर ले जाता है तो दूसरा अपराधबोध की ओर। क्या आप रूपान्तरण का रहस्य जानना चाहते हैं? दूसरों को उठाकर ही हम खुद ऊपर उठ पाते हैं। और दूसरों को गिराकर हम खुद भी गिर जाते हैं। दूसरे को उठाने का यह मतलब नहीं है कि हम उन्हें ऊँचा बनने में मदद कर रहे हैं। इसका मतलब यह है कि आप उसके अन्दर की स्वाभाविक श्रेष्ठता को पहचानते हैं और उसका सम्मान करते हैं। रूपान्तरण के लिए हम चाहे दिन-रात प्रार्थना करते रहें किन्तु यह तब तक

नहीं होगा जब तक हम दूसरों के साथ आदर, प्रतिष्ठा और श्रद्धा से पेश न आयें।”

मैंने कहा “आपने बताया कि काम आधारित इच्छाओं का अन्तिम परिणाम वासना का अहसास है। वासना क्या है?”

दाजी ने कहा, “यह किसी चीज़ के पीछे पड़ जाना है। आइए हम दो शब्दों वासना और करुणा की तुलना करते हैं। वासना में आप उस व्यक्ति को हासिल करने के पीछे पड़ जाते हैं जो आपकी इच्छाओं का केन्द्र होता है। आपको दूसरे व्यक्ति की भावनाओं की अपेक्षा अपनी सन्तुष्टि की अधिक परवाह होती है। जबकि करुणा में आप दूसरे की खातिर स्वयं का त्याग कर देते हैं। वासना अपराध बोध की ओर ले जाती है जबकि करुणा श्रेष्ठता की ओर। क्या आप जानना चाहेंगे कि कृपा को कैसे आकर्षित किया जाये? खुश रहिए। यही इसका नुस्खा है। कृपा से क्या प्राप्त हो सकता है? कृपा की एक धार से आप वह पा सकते हैं जो आप हजार प्राणाहुतियों से नहीं पा सकते, हजारों आशीर्वाद से भी नहीं पा सकते। इसलिए करुणामय बनिये, आपको खुशी मिलेगी। खुश रहेंगे तो आपके ऊपर कृपा बरसेगी।”

“जब आप दूसरों से प्रेम व करुणा का भाव रखते हैं और उनका ख्याल रखते हैं तो आप उनसे कुछ प्राप्त करने की कोशिश नहीं करते। आप उनसे कोई चालाकी नहीं करते। अधिकतर लोग कुछ प्राप्त करना इसलिए पसन्द करते हैं क्योंकि वे अधूरा महसूस करते हैं। और यद्यपि वे प्राप्त ही करते रहते हैं लेकिन पूर्ण कभी नहीं होते। पूर्णता केवल देने से ही आती है और देने के लिए सबसे वास्तविक उपहार है खुद को देना। इसलिए ‘खुद’ को दें। तब आप पायेंगे कि जो भी आप दे सकते थे उससे कहीं कुछ ज्यादा आप पा लेते हैं। आप सब कुछ कैसे दे सकते हैं? आप आश्र्वय करेंगे कि आप ऐसा नहीं कर सकते। आप केवल देना जारी रख सकते हैं।”

“हालाँकि हृदय की उदारता का मतलब केवल देना या दूसरों की सहायता करना नहीं होता। असली उदारता तो दूसरों के मत और मतभेदों को बिना किसी बदले की भावना के स्वीकार करने में है।”

“यह हमें धर्म पर ले आता है जो इच्छाओं की अगली श्रेणी है। दरअसल मुझे यह महसूस नहीं होता कि धर्म का इच्छाओं से कहीं कोई सम्बन्ध होना चाहिए। धर्म का शाब्दिक अर्थ है ‘वह, जो धारण करता है।’ वह क्या धारण करता है? वह जो सत्य को धारण करता है। और वे हम ही हैं जिन्हें यह धारण करना चाहिए। धर्म की इच्छा रखना कमजोरी है। धर्म के लिए प्रार्थना करना ऐसा है मानो आप यह प्रार्थना कर रहे हों कि कहीं आप किसी का घर न लूट लें। यह आसान है। बस इसे मत कीजिये। अगर आप अपने जीवन में धर्म स्थापित करना चाहते हैं। अगर आप सत्य, अच्छाई और

प्रेम चाहते हैं तो पहले आपको इसे धारण करना होगा। अगर आप नहीं करेंगे तो कौन करेगा? इसलिए धर्म की इच्छा करने का कोई मतलब नहीं, धर्म की प्रतीक्षा करने का कोई मतलब नहीं। धर्म के लिए प्रार्थना करने का कोई मतलब नहीं। आपको उसका मूर्त रूप बनना होगा। धर्म का कहना है—प्रेम सबसे करो और चोट किसी को मत पहुँचाओ। यही हृदय की मूल प्रकृति भी है। हमें हृदय पर आधारित धर्म की समझ विकसित करनी होगी। अधिकतर मामलों में धर्म की हमारी समझ हमारी विचारधाराओं से जुड़ी होती है। हृदय का स्वभाव सार्वभौमिक होता है जबकि विचारधारायें सीमित होती हैं। वे हमारी संस्कृति, हमारे धर्म और कई अन्य बातों का परिणाम है। ये विविध विचारधारायें मतभेदों, नापसन्दगी और यहाँ तक कि घृणा को भी जन्म देती हैं। ऐसे संस्कार बिन्दु C पर इकट्ठे होते हैं और यहाँ वे पूर्वाग्रह के रूप में जम जाते हैं। पूर्वाग्रह, जिसे बाबूजी महाराज ने आध्यात्मिकता का शत्रु कहा है।”

“भारतीय परम्परा के अनुसार, भारी पतन की स्थिति में, धर्म को पुनः स्थापित करने के लिए, दिव्य विभूतियाँ, जिन्हें अवतार कहा जाता है, अवतरित होती हैं। क्या इसकी ज़रूरत है? धर्म को स्थापित करना हम दूसरों का दायित्व समझते रहे हैं। अगर हमने किसी ईश्वर के अवतरित होने की प्रतीक्षा किये बिना स्वयं पर धर्म स्थापित करने का अपना कर्तव्य निभाया होता तो हम उसे बहुत सारी कठिनाइयों से बचा सकते थे!”

“अगर हम धर्म को धारण नहीं करते तो इसका मतलब यह नहीं कि हमें दण्ड मिलेगा। बल्कि हम खुद को ही दण्ड देते हैं। हम उस अपराध के भाव को ढोते रहते हैं। मानव तन्त्र में अपराध बोध की एक विशेष जगह है, जिसकी बात हम पहले कर चुके हैं। यह बिन्दु D में समा जाता है और अपने भार से हमें दबाता है। हमारा हृदय बन्द हो जाता है और हमारा आध्यात्मिक विस्तार रुक जाता है। इसलिए हमें कोई भी ऐसा कार्य करने से बचना चाहिए जिससे हमारे अन्दर अपराध बोध पैदा हो। नैतिकता के निर्धारण के लिए कोई बाहरी सत्ता नहीं है। हमारी चेतना ही असली निर्णायिक है। यह चेतना किसी बाहरी निर्णायिक से कहीं ज्यादा सख्त है और इसके पास हमें ज़्यादा और सख्ती से दण्डित करने की क्षमता है।”

“इच्छाओं की अगली श्रेणी ‘मोक्ष’ है जिसके लिए लोग तरसते हैं और प्रार्थना भी करते हैं। भारतीय धार्मिक परम्परा में सामान्यतः मोक्ष का अर्थ जन्म और मृत्यु के चक्र से छुटकारा होता है और इसकी महिमा जीवन के उच्चतम लक्ष्य के रूप में गायी जाती है। परन्तु तुलनात्मक रूप से मोक्ष एक छोटी उपलब्धि है। इससे भी आगे बहुत, बहुत कुछ है।”

“मुक्त आत्माओं के संसार में अपना मुक्त अस्तित्व स्थापित करने हेतु मोक्ष की इच्छा रखने की तुलना अगर हम अपने सांसारिक अस्तित्व में

आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर और बेफिक्र जीवन से करें तो क्या ये दोनों इच्छाएँ एक दूसरे से बहुत अलग हैं? दोनों ही मामलों में आप स्वतन्त्रता चाहते हैं, ऐसी स्वतन्त्रता जो आपकी परिस्थितियाँ बदलने से आती है।”

“इसलिए भौतिक सम्पदा की इच्छा रखना और आध्यात्मिक मुक्ति की इच्छा रखना क्या एक जैसा है?” मैंने पूछा।

दाजी का जबाब था, “ये दोनों ही बिन्दु A पर कम्पन पैदा करती हैं। इसलिए मोक्ष की इच्छा रखना भी उल्टा पड़ता है। वह भार कम होकर हमें हल्का करने की बजाय हमें और नीचे ले जाता है। मोक्ष की इच्छा दरअसल संसार के नकारात्मक अनुभवों के कारण हमारे अन्दर पैदा हुई पलायनवादी प्रवृत्ति को प्रदर्शित करती है। उदाहरण के लिए यदि आप किसी रेस्तरां में खाना खाते हैं और वहाँ का खाना आपका पेट खराब कर देता है तो फिर आप कभी दोबारा उस रेस्तरां में नहीं जाना चाहेंगे। इसी प्रकार जब हम इस संसार से ऊब जाते हैं तो हम इसके खिलाफ हो जाते हैं। और तब आप उस कैदी की तरह हो जाते हैं जो अपनी कोठरी तोड़कर बाहर निकलना चाहता है। ऐसा चाहना सकारात्मक नहीं है।”

“हम मोक्ष के लिए इसलिए भी प्रार्थना करते हैं क्योंकि हम सोचते हैं कि मुक्ति हमें इच्छाओं की अन्य तीन श्रेणियों की गुलामी से मुक्त करा देगी। लेकिन यह ऐसा नहीं कर सकती। हमारे बीच बहुत सारे ऐसे लोग हैं जिन्हें मोक्ष प्राप्त हो गया है लेकिन फिर भी वे अर्थ, काम और धर्म के पीछे भाग रहे हैं। और वे इनके लिए प्रार्थना भी करते हैं। क्या सन्तुष्टि के लिए प्रार्थना करना बेहतर नहीं होगा? लेकिन यदि आप ध्यान करते हैं तो आपको सन्तुष्टि के लिए प्रार्थना करने की ज़रूरत ही क्यों पड़ेगी? यह तो स्वतः ही आयेगी!”

“और जब आप सन्तुष्ट हैं, जब आप एक सन्त बन चुके हैं और आपके अन्दर धर्म, काम, अर्थ या मोक्ष की इच्छा ही नहीं है तो फिर आप प्रार्थना किसके लिए करेंगे?”

दाजी रुके।

“जहाँ पहले आप अपने लिए प्रार्थना करते थे अब आप दूसरों के लिए प्रार्थना करने लगते हैं। इसका यह मतलब भी नहीं है कि आपको इसके लिए सन्त बनने की प्रतीक्षा करनी होगी! अभी भी आपको दूसरों के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। ऐसा न समझें कि ज्यादा लोगों के लिए प्रार्थना करने से वह कमजोर पड़ जायेगी। इससे तो बल्कि और बड़ी लहर उत्पन्न होगी।”

“दूसरी ओर अपने स्वार्थ के लिए की गयी प्रार्थना में दूसरों को शामिल कर लेने की धारणा विरोधाभासी भी है। मान लीजिए आप जहाँ रहते हैं

वहाँ बाढ़ आ गयी। आपका हृदय कहता है, ‘हे ईश्वर! बाढ़ से मेरे घर को बचा लो,’ लेकिन प्रार्थना करते समय आप अपनी भावना को संशोधित कर देते हैं और कहते हैं, ‘हे ईश्वर! हमारे पड़ोस को इस बाढ़ से बचा लो!’ अब आप ईश्वर को भ्रम में डाल देते हैं। आपका हृदय कुछ कह रहा होता है और शब्द कुछ और। क्या अपने स्वार्थ के लिए की जाने वाली प्रार्थना को सुधार कर उसमें अपने पड़ोसियों को भी शामिल कर लेना सम्भव है? मैं ऐसा नहीं समझता। गलत चामी से दरवाज़ा नहीं खुल सकता! परोपकार हमारा दूसरा विचार नहीं हो सकता। यह हमारा मूल इरादा होना चाहिए।”

“प्रार्थना में हमारे शब्दों से ज्यादा जोर से हमारे इरादे बोलते हैं। निस्सन्देह दूसरों के लिए प्रार्थना करना हमारा कर्तव्य है लेकिन प्रेम के बिना यह एक बोझ लगता है। जैसे आपका मित्र आपसे मदद माँगता है और आप हाँ भी कह देते हैं परन्तु भीतर ही भीतर आप उसे कोसते हैं। एक दूसरा उदाहरण लेते हैं। जब आपको अपना काम पसन्द नहीं होता तो आपको यह गुलामी जैसा लगता है और आप अप्रसन्न रहते हैं। तैश में आकर आप कहते हैं, ‘मैं ऐसा कठिन काम क्यों करूँ?’ दूसरी ओर जब आप अपने काम से प्रेम करते हैं तो आपको यह महसूस ही नहीं होता कि आप काम कर रहे हैं। हो सकता है कि आप कठोर परिश्रम कर रहे हों पर आपको ऐसा नहीं लगता। घण्टों हो गये हों पर आपको समय गुजरने का पता ही नहीं लगता। जहाँ प्रेम होता है, वहाँ कर्तव्य का विचार गायब हो जाता है, काम करने का विचार गायब हो जाता है। प्रेम में हम अपना कर्तव्य बिलकुल प्राकृतिक तरीके से करते हैं। बिना किसी बोझ के। बिना प्रेम के कर्तव्य निभाना हमें गुलाम बनाता है जबकि प्रेम हमें स्वतन्त्रता देता है। यही प्रयास रहित कर्म का रहस्य है। यह केवल प्रार्थना का ही नहीं बल्कि हमारे हर कार्य का आधार है।”

मैंने पूछा, “हम अपने आत्म-केन्द्रित इरादों को आत्म-विहीन इरादों में कैसे बदलें?”

“स्वार्थहीन बनकर,” उन्होंने चुटकी ली। जब हृदय बन्द होता है तो आप केवल खुद से ही प्रेम करते हैं और आपके कार्य भी खुद के लिए ही होते हैं। जब आपका हृदय खुलने लगता है तो आप अपने नजदीकी और प्रियजनों के बारे में भी सोचना शुरू कर देते हैं। जैसे-जैसे आपका हृदय खुलता जाता है आपके प्रेम की परिधि का विस्तार भी उसी अनुपात में होता जाता है। और जब आपका हृदय अनन्त रूप से खुल जाता है, जिसमें कोई दरवाज़ा या दीवार नहीं होती तो प्रेम सम्पूर्ण अनन्त ब्रह्माण्ड में बहने लगता है। तब आप महसूस करने लगते हैं कि समस्त ब्रह्माण्ड आपका है और आप भी इस ब्रह्माण्ड के हैं। हर समय ‘मैं’ के बारे में सोचने की जगह अब आप ‘हम’ के बारे में सोचने लगते हैं।”

“तो आइए हम स्वार्थी प्रार्थना को हमेशा के लिए त्याग दें। असल में स्वयं के लिए प्रार्थना करने के बाद फिर दूसरों को इसमें शामिल करने के विचार की बजाय क्यों न हम इसे उलट दें?” आपका इरादा अब दूसरों को पहले शामिल करने का हो और खुद को बाद में।”

“लेकिन जल्द ही आप पायेंगे कि स्वयं को बाद में शामिल करना भी आपको नहीं भा रहा। खुद का ख्याल प्रार्थना को भी मुरझा देता है। पूरी प्रक्रिया ही ढह जाती है। यदि आपके अन्दर आस्था है तो फिर अपनी परेशानियों के बारे में ईश्वर को याद दिलाने की ज़रूरत ही क्या है? और अगर आपमें आस्था नहीं है तो फिर प्रार्थना करने की ज़रूरत ही क्या है? स्वीकार्यता सबसे श्रेष्ठ मार्ग है। आप जानते हैं कि मेरे दोनों ही गुरु अक्सर बीमार रहा करते थे। मैं सोचता हूँ कि अपनी असीम क्षमता के रहते वे एक ही क्षण में स्वयं को ठीक कर सकते थे। लेकिन उनके आध्यात्मिक स्वरूप ने उन्हें ऐसा नहीं करने दिया। इसकी बजाय उन्होंने परिस्थिति को उसी रूप में प्रसन्नता और कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार करना बेहतर समझा।”

फिर अपनी आँखों में एक चमक लिए उन्होंने कहा, “लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि आप अपनी कमियों को भी स्वीकार कर लें।”

मैंने पूछा, “अभी एक मिनट पहले आप खुले हृदय के बारे में बता रहे थे। क्या आप बता सकते हैं कि वास्तव में इसका अर्थ क्या है?”

“एक बन्द हृदय के बारे में सोचिए,” उन्होंने कहा, “तब आपकी समझ में आ जायेगा।”

“ठीक है,” मैंने कहा, “आपकी बात मैं समझ गया लेकिन फिर भी, यदि आप बुरा न मानें, तो मैं चाहूँगा कि आप इसके बारे में थोड़ा और विस्तार से बतायें।”

“मैं आपको एक कहानी सुनाता हूँ,” दाजी बोले, “हर सुबह जब सूर्य उदय होने को होता तो उसका निजी सहायक उसके लिए कॉफ़ी लेकर आता और कॉफ़ी के साथ सूर्य को उन लोगों के नाम की एक सूची देता जिनके ऊपर चमकना उसे भूलना नहीं है।

“श्रीमान! अर्जेंटीना में एक व्यक्ति को आपकी गर्मी की बहुत ज़रूरत है। कृपया उसके ऊपर चमकना न भूलें। और हाँ! चीन में एक बड़ी प्यारी छोटी-सी बच्ची है, उसे भी ज़रूर याद रखें।”

“एक दिन, दिन भर चमकने के बाद सूर्य जब अस्त होने जा रहा था तो उसका सहायक दौड़ता हुआ आया।”

“श्रीमान! आप अभी अस्त नहीं हो सकते। आपने अपने दिनभर का काम पूरा नहीं किया है।”

‘क्या मतलब?’ सूर्य ने पूछा। ‘मैं तो हमेशा की तरह पूरे दिन वैसे ही चमकता रहा जैसे मैं रोज़ चमकता हूँ। अब मैं थक गया हूँ और आराम करना चाहता हूँ।’

“सूर्य के सहायक ने पूछा, ‘क्या आपको अर्जेंटीना का वह व्यक्ति याद है जिसके बारे में मैंने सुबह बात की थी?’

‘हाँ, यह मुझे याद है’, सूर्य ने कहा।

सहायक ने कहा, ‘लेकिन वह तो सारे दिन अँधेरे में ही रहा। अपने वादे के अनुसार आपने उसके ऊपर अपना प्रकाश नहीं फैलाया?’

थोड़ी देर तक मनन करने के बाद सूर्य बोला, ‘मेरे भाई, मैं सबके ऊपर चमकता हूँ। यह मेरा स्वभाव है और मैंने आज भी यही किया। बताओ, मैं उस व्यक्ति के लिए क्या कर सकता हूँ जिसने पूरे दिन अपने आपको एक कमरे में बन्द रखा और पढ़ें भी लगा लिए?’ ”

“एक खुला हृदय सूर्य के सामान है जो हरेक के लिए चमकता है। यह अपना प्रेम उत्सर्जित करने के अलावा और कुछ नहीं कर सकता। खुले हृदय से प्रेम बिना किसी भेद-भाव के बहता है। लेकिन हम सचमुच यह नहीं कह सकते कि हृदय प्रेम करता है। बल्कि एक खुला हृदय स्वयं ही प्रेम है और जो कोई इसकी किरणों में आकर खड़ा होता है वह महसूस करता है कि उसे प्रेम मिल रहा है। और बन्द हृदय क्या है? यह उस व्यक्ति के समान है जिसने स्वयं को पूरे दिन अन्दर बन्द रखा।”

“एक खुला हृदय देने वाला हृदय होता है लेकिन साथ ही साथ वह प्रहण करने वाला हृदय भी होता है। इस अर्थ में जो हृदय खुला होता है वह हृदय विनम्र भी होता है।

“मैं समझा नहीं,” मैंने कहा।

दाजी ने कहा, “कोई भी अहंकारी देने का काम कर सकता है लेकिन लेने के लिए विनम्र होना पड़ता है।”

अपनी जेब से एक सिक्का निकाल कर उन्होंने मुझे दिया फिर पूछा, “तुमने अपनी हथेली की अवस्था देखी? यह खुली हुई थी, ऊपर की ओर।”

“इस अवस्था को हम माँगने से जोड़ सकते हैं,” उन्होंने कहा। “प्रार्थना उच्चतर सहायता की माँग है। चाहे आप खुद के लिए माँगें या किसी और के लिए, माँगने के लिए विनम्र होना ज़रूरी है। विनम्रता का यही गुण प्रार्थना करना सम्भव बनाता है।”

“इसके विपरीत यदि मैं स्वयं को एक दाता समझने लगूँ एक अनन्त स्रोत समझने लगूँ तो फिर इस संसार में मेरी कोई मदद नहीं कर सकता। स्वयं ईश्वर भी नहीं। मेरे अन्दर यह समझने की विनम्रता होनी चाहिए कि

चाहे जो कुछ भी मैंने दूसरों को दिया हो लेकिन उसे बनाने वाला मैं तो नहीं। अगर मैं किसी को एक डॉलर देता हूँ तो मैंने भी इसे कहीं से प्राप्त किया होगा। है कि नहीं?”

मैंने पूछा, “क्या मैं यह सिक्का रख लूँ?”

उन्होंने चुटकी ली। वे बोले, “तुम एक जोकर हो।”

सिक्का वापस देते हुए मैंने कहा, “ठीक है, यह आपकी बुद्धिमत्ता के लिए है।”

उन्होंने कहा “अरे, इतनी कम कीमत! खैर, मैं तो कोई शुल्क लेता नहीं इसलिए तुम्हीं इसे रख लो।”

मैंने कहा “ये बात है तो मैं आपसे एक और प्रश्न पूछूँगा। किसी परिस्थिति में किस चौज के लिए प्रार्थना करनी है, यह कैसे जानें?”

उन्होंने उत्तर दिया, “ऐसा प्रश्न केवल बुद्धिमान व्यक्ति ही पूछ सकता है और दुर्भाग्यवश ऐसा कोई जवाब नहीं है जिससे सन्तुष्ट हुआ जा सके। जो हृदय प्रेम करता है उससे प्रार्थना स्वतः निकलती है इसलिए केवल एक प्रेमी हृदय ही इसका जवाब दे सकता है। तार्किक मन कभी इसका उत्तर नहीं जान सकता।”

“आपने किसान और उसके पड़ोसी के बारे में एक प्रसिद्ध चीनी लोककथा ज़रूर सुनी होगी,” दाजी ने कहा।

मैंने नहीं सुनी थी इसलिए मैंने उन्हें कहानी सुनाने को कहा।

“बहुत समय पहले की बात है, एक बुद्धिमान किसान था,” उन्होंने बताना शुरू किया। “एक दिन उसका घोड़ा भाग गया। जब उसका पड़ोसी अपनी संवेदना जताने आया तो किसान ने कहा, ‘कौन जानता है कि क्या अच्छा है और क्या बुरा?’ अगले दिन वह घोड़ा जंगली घोड़ों के एक पूरे झुण्ड के साथ वापस आ गया। अब की बार पड़ोसी ने किसान को बधाई दी लेकिन फिर से किसान ने कहा, ‘कौन जानता है कि क्या अच्छा है और क्या बुरा?’

किसान के बेटे ने उनमें से एक जंगली घोड़े को पालतू बनाने की कोशिश की। उसने उसे फेंक दिया जिससे किसान के बेटे की टाँग टूट गयी। पड़ोसी ने फिर अपनी संवेदना व्यक्त की। किसान ने फिर कहा, ‘कौन जानता है कि क्या अच्छा है और क्या बुरा?’”

“कुछ ही दिनों बाद एक पड़ोसी राज्य से युद्ध छिड़ गया। मिलिट्री के कुछ अधिकारी किसान के उस लड़के की युद्ध में भर्ती के लिए आये। लेकिन, उन्होंने देखा कि टूटी हुई टाँग के कारण वह इस योग्य नहीं था। इस युद्ध

में किसान के गाँव के बहुत से नौजवान मारे गये लेकिन किसान का लड़का अपनी टूटी हुई टाँग के कारण बच गया। ”

“जरा कल्पना कीजिए अगर किसान ने जंगली घोड़े से अपने बेटे के धायल होने से बचने के लिए प्रार्थना की होती और उसकी प्रार्थना सुन ली गयी होती। तो वह युद्ध में मारा गया होता। ”

“हम नहीं जानते कि कौन-सी चीज़ अच्छे के लिए है और कौन-सी बुरे के लिए। यह हम तभी जान सकते हैं जब हमें पहले से ही परिणाम की जानकारी हो। लेकिन तब हमें प्रार्थना की ज़रूरत ही क्यों रहेगी? ”

“युद्ध के समय हर व्यक्ति प्रार्थना करता है लेकिन अगर हर पक्ष अपनी विजय के लिए प्रार्थना कर रहा है तो ईश्वर किसकी सुनेगा? युद्ध उसे तकलीफ़ देता है। आखिर उसके बच्चे आपस में लड़ रहे हैं! ऐसी चीज़ों के लिए प्रार्थना करना मूर्खता है। दाजी ने दुःख से अपना सिर हिलाया और कहा कि यह दर्शाता है कि हम ईश्वर के बारे में कितना कम जानते हैं। ”

“यहाँ तक कि दूसरे की भलाई के लिए की जाने वाली प्रार्थना भी ग़लत हो सकती है। मान लीजिये आप एक आदमी के अन्दर से उसके भय को निकालने की प्रार्थना करने का निश्चय करते हैं। यह एक अच्छी बात है। है न? ऊपर से देखने पर यह निश्चय ही अच्छा प्रतीत हो रहा है लेकिन हो सकता है कि उसके लिए थोड़ा भय का होना ज़रूरी हो। क्या होगा यदि ईश्वर किसी डाकू को भयमुक्त होने का आशीर्वाद दे दे या उच्च पद पर बैठे किसी भ्रष्ट अधिकारी को असीमित साहस प्रदान कर दे? फिर तो वे और निर्लज्ज हो जायेंगे। है कि नहीं? ऐसे मामलों में भय-मुक्त होना उल्टा पड़ेगा। मेरे पिता कहा करते थे, ‘अगर तुम किसी चरित्रहीन व्यक्ति को धन दे दोगे तो वह धन उसे बर्बाद ही करेगा।’ हमारे समाज में ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जहाँ बहुत सम्पन्नता में जन्मे लोग जीवन की कठिनाइयाँ झेल रहे हैं। हम नहीं जानते कि ये चीज़ें हमारे प्रियजनों को किस दिशा में ले जायेंगी। ”

मैंने पूछा, “फिर हम कैसे जानेंगे कि किस चीज़ के लिए प्रार्थना की जाये? ”

“जब आपका हृदय संवेदनशील होगा तो यह दूसरों की वास्तविक ज़रूरतों के प्रति ग्रहणशील हो जायेगा। तब आपकी प्रार्थना स्वतः ही उनकी स्वाभाविक ज़रूरतों के अनुरूप होगी। ”

“ठीक है, पर हम अपने हृदय को संवेदनशील कैसे बनायेंगे?” मैंने जोर देकर पूछा।

उन्होंने कहा, “क्या वाकई आप ऐसा चाहते हैं? जब आपके खुद के ही इतने दर्द और कष्ट हों तो क्या आप दूसरों के भी दर्द और कष्ट बाँटना

चाहेंगे? संवेदनशीलता की पहली ज़रूरत है उस काम को करने की इच्छा होना। दूसरे व्यक्ति के कष्टों की जानकारी आप तक तब तक नहीं पहुँच सकती जब तक आपमें उस कष्ट को सहन करने की क्षमता न हो। दूसरा यह, कि दूसरों की दुर्दशा के बारे में आप क्यों जानना चाहते हैं? मान लीजिए कोई आपके बैंक खाते की जानकारी प्राप्त कर लेता है। अब उसे आपकी आर्थिक स्थिति का पता है। क्या अब आप यह सोचेंगे कि वह आपका हित चाहता है?

“बिलकुल नहीं,” मैंने कहा।

“जब तक मेरा इरादा आपकी मदद करने का न हो तब तक मेरे पास आपकी आर्थिक जानकारी होने का कोई अच्छा कारण नहीं हो सकता, ठीक? इसी प्रकार दूसरों के प्रति संवेदनशील होने की कोई ज़रूरत नहीं है जब तक कि उस संवेदनशीलता का उपयोग आप उसके भले के लिए न करें। केवल प्रेम ही इसे सम्भव कर सकता है। और जहाँ प्रेम होगा वहाँ सहनशीलता भी होगी। इन दो गुणों के रहते आपका हृदय स्वाभाविक रूप से आपकी प्रार्थना को समझ जायेगा। इन गुणों की कमी के कारण ही हम भ्रमित रहते हैं कि किस चीज़ के लिए प्रार्थना की जाये।

“लेकिन यदि हम शारीरिक रूप से किसी की मदद करने में सक्षम हैं तो हमें बैठ कर उसके लिए प्रार्थना करने से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। बल्कि कुछ करना चाहिए। मदद का हाथ आगे बढ़ाना चाहिए। चारीजी कहा करते थे, ‘प्रार्थना कमज़ोर का पहला सहारा है और मजबूत का अन्तिम। अगर आप कुछ नहीं कर सकते तो जैसे भी हो सके प्रार्थना कीजिए। लेकिन अगर आप किसी को खिला सकते हैं तो खिलाइए, अगर किसी को आश्रय दे सकते हैं तो दीजिए। इससे पहले कि आप दूसरों के लिए प्रार्थना करें यह आपका मानवीय दायित्व है कि आप उनकी परिस्थितियों का हल ढूँढ़ने का प्रयत्न करें। हाँ, अगर आपके पास खुद के परिवार को खिलाने की सामर्थ्य नहीं हैं तो फिर दूसरों के परिवार को खिलाना ठीक नहीं हो सकता। पहले आपको हमेशा खुद की जिम्मेदारियाँ पूरी करनी चाहिएं।”

“इससे मुझे यह कहावत याद आती है, ‘उदारता घर से शुरू होती है’, मैंने कहा।”

“हाँ,” दाजी बोले, “यह दुखद है कि हम कष्ट दूर करने के लिए बहुत कुछ नहीं कर सकते। हो सकता है कि संसार के हर व्यक्ति की मदद करने की हमारी इच्छा हो लेकिन इसके लिए हमारे पास पर्याप्त व्यक्तिगत संसाधन नहीं होते। कम से कम, जो हम एक दुखी व्यक्ति की सहायता के लिए कर

सकते हैं वह है उसके साथ समय बिताना। उससे सहानुभूति जताना। उसके पास बैठना। हो सकता है आप कुछ न कहें, कुछ न करें। पर आप वहाँ हैं। आपकी उपस्थिति ही प्रभावकारी होगी। इससे आपका मित्र महसूस करेगा कि ‘मेरे पास मदद है’ और यही चीज़ उसे बल प्रदान करेगी।”

प्रार्थना के सहारे जुड़ना

मैंने पूछा, “प्रार्थना करने का सर्वोत्तम तरीका क्या है?”

“एक संगीतज्ञ हर स्वर को छेड़ता है, और दूसरा हर स्वर को जीता है। इसमें से हम दूसरे को पसन्द करते हैं। है कि नहीं?”

“हाँ!” मैंने सहमति जताई।

“और जब कोई कलाकार आपको मोह लेता है, तो आप आसानी से उसके गलत स्वरों और उसकी बेजान तान को भी माफ़ कर देते हैं,” उन्होंने कहा। “केवल यथार्थता ही मानव हृदय को स्पर्श कर सकती है। अगर कोई आदमी क्रोधित स्वर में आपसे कहे कि ‘मैं आपसे प्रेम करता हूँ’ तो क्या आप इस भावना में बह जायेंगे?”

“प्रार्थना में भी अहसास और यथार्थता का महत्व है। एक अच्छी कहानी याद आ रही है। एक साधारण-सा चरवाहा अपनी गाय-भैंसों की देखभाल कर रहा था। हर रात वह ईश्वर से प्रार्थना करते हुए कहता था, ‘अगर तुम मेरे पास आओगे तो मैं तुम्हे अपने खास वृक्ष की छाया में बैठा कर गर्मी से तुम्हारी रक्षा करूँगा। मैं तुम्हे स्नान कराऊँगा और जब भी तुम चाहोगे तुम्हारी पीठ खुजाऊँगा। एक ब्राह्मण पुरोहित जो किसान के पड़ोस में रहता था, रोज़ इस प्रार्थना को सुनता था। एक दिन ब्राह्मण ने कहा, ‘ये कैसी प्रार्थना है? आप ईश्वर को स्नान करायेंगे, उनकी पीठ खुजलायेंगे, यह बकवास है।’ किसान ने विनम्रता से कहा, ‘आप ही मुझे सिखाइये।’ ब्राह्मण तैयार हो गया और उसने उसे संस्कृत के कुछ श्लोक और सिखाए।”

“अगले दिन किसान उन शब्दों को भूल गया। उसने कहा, कृपया मुझे फिर से सिखायें। जो कुछ आपने सिखाया था, वह मैं भूल गया। ब्राह्मण ने उसे फिर से सिखाया लेकिन किसान फिर भूल गया। यह प्रक्रिया कुछ समय तक चलती रही। अन्त में किसान भ्रमित और निराश हो गया।”

“फिर एक रात ईश्वर ब्राह्मण के सपने में आये और बोले, ‘देखो, तुमने सचमुच इस व्यक्ति के जीवन को बर्बाद कर दिया। उसकी प्रार्थना सर्वोत्तम प्रार्थना थी।’ इसमें उसने स्वयं को व्यक्त किया था। उसने कहा था, ‘यह है, जो मैं आपके साथ करने जा रहा हूँ, मैं इतना ही जानता हूँ।’ तो संस्कृत की

बात आप भूल जाइए। आप इसका अर्थ भी नहीं जानते। इसका यह मतलब नहीं कि हम प्राचीन श्लोकों की निन्दा कर रहें हैं। वे तो अद्भुत हैं। लेकिन उन्हें हमें समझना होगा। एक प्रार्थना का आपके लिए कोई अर्थ चाहिए। अन्यथा आप एक तोते की भाँति हैं।”

“शब्द भावनाएँ नहीं हैं, वे केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति हैं। रटे हुए ढंग से की गयी प्रार्थना भावनाओं के भूसे के समान है। यह खोखली हैं। एक प्रभावी प्रार्थना वह होती है जिसमें शब्द हृदय की भावनाओं से टकराकर गूँजते हैं। और जब हृदय भावनाओं से गूँज रहा हो तो क्या फिर शब्दों की कोई ज़रूरत रह जायेगी?”

“केवल मौन में ही हम आन्तरिक स्रोत से संवाद स्थापित कर पाते हैं। ऐसी चुप्पी में हमारे विचार भी मौन हो जाते हैं।”

मैंने कहा, “मैं मौन प्रार्थना तो समझ सकता हूँ लेकिन बिना किसी विचार के प्रार्थना का मतलब?”

“प्रार्थना की क्रिया को विकसित होकर प्रार्थनामय आन्तरिक दशा में बदल जाना चाहिए,” दाजी ने कहा, “उदाहरण के लिए क्या आपने ऐसे किसी जोड़े को बातचीत करते सुना है जो दशकों से शादी-शुदा हो? एक ही नज़र ढेरों बातें कह देती है और शायद ही कोई शब्द बोलने की ज़रूरत पड़ती हो। सालों बीतते-बीतते वे बातचीत करने की ज़रूरत से भी आगे निकल जाते हैं और एक दूसरे के साथ अन्तःसम्पर्क की दशा में पहुँच जाते हैं। दो व्यक्ति एक दूसरे को जितना कम जानते हैं उतना ही ज़्यादा उन्हें बातचीत की ज़रूरत होती है। नव विवाहित जोड़े को बहुत ज़्यादा बातचीत की ज़रूरत पड़ती है। जितना अधिक वे एक दूसरे को समझने लगते हैं उतनी ही सूक्ष्म उनकी बातचीत होने लगती है। और जब वे एक दूसरे को गहराई से जान लेते हैं तो बातचीत की ज़रूरत ही नहीं रह जाती।”

“इसी तरह हम अपने स्रोत से पुनः जुड़ने का प्रयास एक औपचारिक प्रार्थना से शुरू करते हैं। प्रार्थना केवल पहला कदम है। परिपक्व होकर इसे प्रार्थना का भाव बन जाना चाहिए। उदाहरण के लिए खाने से पहले प्रार्थना करना एक सामान्य बात है। लेकिन प्रार्थना पूरी होते ही यदि आप भोजन पर भेड़िये की तरह टूट पड़ें तो उस प्रार्थनामय दशा का क्या होगा जो आपने अभी-अभी बनायी थी। बिना प्रार्थना-भाव के प्रार्थना एक ढोंग है। यह हास्यास्पद है।”

“अक्सर हम बच्चों को वर्णमाला के अक्षरों की स्टैंसिल देकर उन्हें लिखना सिखाते हैं। अक्षरों पर चल कर वे खुद लिखना सीख जाते हैं। इसी तरह औपचारिक प्रार्थना भी विकसित होकर प्रार्थना की दशा में बदल जानी चाहिए। उसके बाद औपचारिक प्रार्थना अनावश्यक और निरर्थक हो जाती

है। अगर हम प्रार्थना की दशा तक विकसित नहीं हो पाते तो हमारी हालत एक ऐसे आदमी की तरह होती है जो वर्णमाला लिखने के लिए अभी भी स्टेन्सिल पर निर्भर है।”

“यह आन्तरिक दशा अद्वितीय होती है। इसमें किसी बाहरी रूप या सिद्धान्त का पालन यानि कर्मकाण्ड नहीं करना पड़ता। जैसे ही आप प्रार्थना को कर्मकाण्ड बना देते हैं, यह अपना महत्व खो देती है।”

“फिर भी प्रार्थनामय दशा एक दूसरी शुरुआत है। इसका उद्देश्य हमें पार ले जाना है, एक दूसरे स्तर पर।”

“प्रार्थनामय दशा से आगे क्या है?” मैंने पूछा।

“एकमयता” दाजी ने कहा। “प्रार्थना में द्वैत का भाव स्वाभाविक रूप से होता है। प्रार्थना में हमेशा दो होते हैं : एक वह जिसे ज़रूरत है और एक वह जिसकी उसे ज़रूरत है। मैं इस आशय से प्रार्थना करता हूँ कि वह महान हस्ती मेरी प्रार्थना को सुनेगी और उसका जवाब देगी। बिना इस द्वैत के कौन प्रार्थना करेगा और कौन उसे सुनेगा? दिव्य उपस्थिति से मेरी अलग पहचान अभी भी बनी रहती है। अभी भी हम दो रहते हैं। अभी भी एक सम्बन्ध रहता है। ध्यान के द्वारा हम लगातार दिव्य उपस्थिति के साथ एकमयता की स्थिति में प्रवेश करते जाते हैं और सम्बन्ध की अवस्था के पार निकल जाते हैं।”

“केवल प्रार्थना से ही एक हो जाने की सम्भावना कुछ अविश्वसनीय-सी लगती है। हम वही रहते हैं जो हैं और स्रोत भी वैसा ही रहता है जैसा है।”

“तो फिर प्रार्थना की भूमिका क्या है?” मैंने पूछा।

“यह हमें उस दिव्य सिद्धान्त का ज्ञान जिसमें हम लय होना चाहते हैं, हृदय से कराने में सहायक होती है।” दाजी ने कहा। “प्रार्थना इस तरह करनी चाहिए कि वह ध्यान में बदल जाये। यह तो हृदय से प्रियतम के लिए छलकती हुई विरह-वेदना है। ‘अब और सहन नहीं होता।’ यह कहती है। बचपन में सुना एक दोहा याद आ रहा है : ‘हे ईश्वर! मेरी इस छोटी-सी कुटिया में एक बार तो आओ। मैं आपका ऐसा स्वागत करूँगा कि आप अपना दिव्य निवास भूल जायेंगे।’ प्रार्थना एक प्रकार की कराह है जिसमें आँसू के मोती गालों पर बह कर हृदय की जटिलताओं को सुन्दर बना देते हैं। हृदय की यह वेदना हमें अपने प्रिय लक्ष्य पर बनाए रखती है। और अन्ततः जिस प्रकार नदी सागर में समा जाती है उसी प्रकार प्रार्थनामय स्थिति भी स्रोत के साथ ध्यानमय स्थिति में समा जाती है।”

हार्टफुलनेस की प्रार्थना

हार्टफुलनेस प्रार्थना हम एक बार अपने दैनिक ध्यान से पहले और फिर दिन की समाप्ति पर सोने से पहले करते हैं। अगर सही भाव से की जाये तो यह मौन प्रार्थना एक अद्भुत आन्तरिक दशा निर्मित कर देती है। हार्टफुलनेस अभ्यास के आरम्भिक दिनों में प्रार्थना को मैंने एक औपचारिकता ही समझा। इसी कारण मेरे हृदय ने कभी इसे चाहा भी नहीं। मैंने इसे बन्द ही कर दिया। लेकिन एक शाम मैंने विशेष रूप से इसके शब्दों की ओर खिंचाव महसूस किया और मैंने पूरे हृदय से प्रार्थना की। तुरन्त ही मेरी आन्तरिक आध्यात्मिक दशा बदल गयी। उस रात मेरी नींद नियमित नींद से अलग गहरी ध्यानावस्था जैसी थी। सुबह जब मैं उठा तो मेरी भीतरी हालत बेजोड़ थी। मेरे ध्यान में अब कुछ विशेष बात थी जो पहले नहीं थी। इस अनुभव का नतीजा यह हुआ कि मैंने प्रार्थना को नज़रअन्दाज़ करना बन्द कर दिया। और मेरे जीवन का यह अभिन्न अंग बन गयी। अब भी मैं इसके बारे में रोज कुछ नयी खोज करता रहता हूँ।

हे नाथ!

तू ही मनुष्य जीवन का वास्तविक ध्येय है।

हम अपनी इच्छाओं के गुलाम हैं,

जो हमारी उन्नति में बाधक है।

तू ही एकमात्र ईश्वर एवं शक्ति है,

जो हमें उस लक्ष्य तक ले चल सकता है।

“सोने से पहले प्रार्थना करने का क्या उद्देश्य है?” मैंने पूछा।

दाजी ने कहा, “जागृत प्रार्थनामय दशा निर्मित करने का यह सर्वोत्तम तरीका है। प्रार्थना का उद्देश्य दिव्य के साथ हमारा सम्पर्क पुनः स्थापित करना है। लेकिन प्रार्थनामय दशा कुछ अलग चीज़ है। इसका तब उदय होता है जब हमने दिव्य की उपस्थिति को महसूस कर लिया होता है। हमारा सिर झुकने लगता है और हम दिव्यता के उस सागर में विलीन हो जाना चाहते हैं।”

“अपने शरीर, मन और आत्मा से जब हम दिव्य की ओर मुड़ते हैं तो उस चुम्बकीय उपस्थिति को हम महसूस करते हैं। दिव्य की ओर यह पूर्ण झुकाव सचेतन मन से सम्भव नहीं। दिन में जब हम पूरी तरह से जागृत होते हैं तो हमारी बुद्धि हमारी चेतना पर हावी होने की कोशिश करती है। बुद्धि का अपना उद्देश्य है लेकिन हमारे अन्दर प्रार्थनामय दशा पैदा करने के लिए यह उपयोगी नहीं है।”

“जागृत अवस्था और नींद के मध्य की अवधि में चेतन और अवचेतन अवस्थाओं का मिलन होता है। पर्दा थोड़ी देर के लिए उठा दिया जाता है और दोनों मिलते हैं। इस क्षण हमारे मस्तिष्क की तरंगें एक खास क्रम में व्यवस्थित हो जाती हैं जिसे आधुनिक वैज्ञानिक ‘एल्फा’ अवस्था कहते हैं। एल्फा अवस्था में हम ख्यालों की दुनिया में खो जाते हैं और इस अवस्था में हम सुझावों के प्रति अति संवेदनशील होते हैं। यही समय है जब हम अवचेतन में जानबूझ कर प्रार्थनामय विचारों का बीजारोपण कर देते हैं। यह विचार जड़ जमा लेते हैं और अवचेतन की उपजाऊ ज़मीन में विकसित होते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे किसी की नज़र में आये बिना ज़मीन के नीचे बीज अंकुरित होते हैं हमारी प्रार्थना भी जागृत अवस्था में प्रकट होने से पहले अवचेतन की गुमनामी में अंकुरित व विकसित होती है। इस प्रकार हम अवचेतन में प्रार्थना का बीज बोकर प्रार्थनामय जागृत अवस्था की फ़सल काट सकते हैं।

“लेकिन प्रार्थना हमें भाव के साथ करनी चाहिए। अवचेतन केवल भाव की भाषा ही समझता है। आप खोखले शब्द अवचेतन में बो सकते हैं लेकिन वे मृत बीज के सामान होते हैं जो कभी अंकुरित नहीं होते। सोते समय हम अक्सर नींद की हालत में होते हैं जिसमें सही भाव नहीं उमरते इसलिए दिन में जब हम सजग होते हैं तब हम प्रार्थना कर सकते हैं। जब आप सजग हों तब इस भाव को उत्पन्न करें। इससे यह होगा कि जब आप सोते समय फिर से प्रार्थना करेंगे तो प्रार्थना की वह क्रिया आपकी पूर्व दशा को पुनः वापस ले आयेगी।”

“दिन के समय जब बुद्धि पूरी तरह सक्रिय हो तब प्रार्थना का अर्थ हम दूसरे परिप्रेक्ष्य में भी समझ सकते हैं। दरअसल मैं चाहता हूँ कि हर नया जिज्ञासु और पुराने अभ्यासी भी एक दो दिन प्रार्थना के वास्तविक महत्व और अर्थ को जानने में लगायें। जो इसके शब्द कहते हैं उससे भी कहीं ज्यादा इस प्रार्थना में है। फिर देखें कि जो अर्थ आपने खोजा उसमें क्या छिपा है। बार-बार उसके ऊपर ध्यान कीजिये। पहली पंक्ति, दूसरी पंक्ति, तीसरी पंक्ति लीजिए फिर इसके एक-एक शब्द पर मनन कीजिए। जल्दबाजी मत कीजिए। हर बार एक नया आयाम खुलेगा।”

“प्रार्थना का उद्देश्य आपको रूपान्तरित करना है। सामान्यतया लोग सोचते हैं कि प्रार्थना करने पर रूपान्तरण कहीं बाहर से होता है। लेकिन प्रार्थना करना ही हमें रूपान्तरित करता है न कि प्रार्थना का प्रत्युत्तर। यह रूपान्तरण प्रार्थना करते ही शुरू हो जाता है। सच्ची प्रार्थना स्वयं का ही उत्तर है।”

“अपने सृष्टिकर्ता के साथ अन्तरंग सम्बन्ध विकसित करने के लिए आपका हृदय मासूम और पवित्र होना चाहिए। इंसामसीह ने कहा, ‘बच्चों की तरह बन जाओ’। अपराध बोध बेहद विनाशकारी होता है। यह हृदय में चुम्ह की तरह होता है। अपराधी हृदय स्वयं को दिव्य से छिपाता है और अपनी ही कैद में खुद को अलग कर लेता है। ऐसे में हम स्रोत की स्वास्थ्यवर्धक किरणों में कैसे नहा पायेंगे? सवाल यह नहीं है कि हम ईश्वर के द्वारा स्वीकार किये जायेंगे या नहीं। क्या एक माँ अपने प्रेम और क्षमा को रोक सकती है? वो तो हम ही हैं जो स्वयं को स्वीकार व क्षमा नहीं कर पाते। पश्चाताप करना कोई कर्मकाण्ड नहीं है। स्वयं को हम तभी क्षमा कर पाते हैं, जब हमारा हृदय हमारी ग़लतियों के लिए पश्चाताप करता है। आपके हृदय की एक चौत्कार क्षमा की हज़ारों प्रार्थनाओं के बराबर होती है। अश्रु हमारी यथार्थता की पहचान होते हैं, तब भी जब हमारे हृदय हल्के और प्रसन्न हों।”

मैंने पूछा, “क्या होता है जब हमारे अन्दर कोई अपराध बोध नहीं होता?”

“बधाईयाँ!” वे हँसे, “आप सन्त ही होंगे। लेकिन एक सन्त भी सुधार की गुँजाइश ढूँढ़ लेता है। ख़ास तौर से सन्त ही। क्योंकि वह इतना विनम्र होता है कि वह हमेशा अपनी ग़लती ढूँढ़ ही लेता है। कोई ग़लती न होने पर भी। जैसे-जैसे हम अपनी चेतना की आवाज़ के प्रति संवेदनशील होते जाते हैं, हम पाते हैं कि यह हमें छोटी से छोटी चीज़ों के लिए भी उत्तरदायी बना देती है। ग़लत विचार की एक सूक्ष्मतम आहट भी हमारी चेतना को चुम्हने लगती है। इसलिए रात में सोते समय अपने हृदय को जाँचिए और देखिए कि कहाँ पर आपकी चेतना आपको कचोट रही है? देखिए कि कहाँ पर आप असुविधाजनक महसूस कर रहे हैं। इसका कारण ढूँढ़िये। बिना आत्मावलोकन के सुधार की कोई गुँजाइश नहीं होती।”

“दूसरी ओर आत्म-सुधार की यह धारणा एक विरोधाभास है। जहाँ ‘आत्म’ है वहाँ कोई सुधार नहीं हो सकता। अगर आप इस अहंकार के साथ अपना आत्मनिरीक्षण करते हैं कि मैं स्वयं ही ठीक कर लूँगा तो यह तरीका काम नहीं करेगा। आपका ‘मैं’ बहुत ज़्यादा है। दूसरी ओर प्रार्थना में आपका हृदय समर्पण में झुक जाता है और आप सब कुछ उच्चतर अस्तित्व पर छोड़ देते हैं, यह कह कर “जैसी आपकी मर्जी।” जिस चीज़ की ज़रूरत है, वह है —आत्मनिरीक्षण और समर्पण का मिश्रण—आपके और ईश्वर के मध्य एक समझौता। प्रार्थनामय आत्मनिरीक्षण से हम अपनी कमियाँ खोज लेते हैं। लेकिन उन्हें खुद सुलझाने की बजाय आप खुद को छोड़ दें और उच्चतर सहायता का आह्वान करें।”

“बेहतर तो यह होगा कि हम दिन-ब-दिन, घण्टे दर घण्टे ग़लती करने से बचते रहें। कहा जाता है कि एक मूर्ख को ग़लती का अहसास बाद में होता है, एक बुद्धिमान को इसका अहसास ग़लती करने के दौरान होता है जबकि एक समझदार आदमी को ग़लती करने से पहले ही अहसास हो जाता है और वह उससे बच निकलता है।”

मैंने पूछा, “हम पहले ही कैसे जान सकते हैं?”

उन्होंने कहा, “प्रार्थनामय सजगता से।”

मैंने पूछा, “किस के प्रति?”

“उन संकेतों के प्रति जो आपके हृदय से निकलते हैं और भीतर से आपका मार्ग-निर्देशन करते हैं,” उन्होंने कहा। “अगर आप इस मनोदशा को अपनी पूरी दिनचर्या में बनाए रखते हैं तो आपकी समझ ज़रुर विकसित होगी।”

“जब आप प्रार्थना करने को तैयार हों तो इसे एक विनम्र हृदय से, एक प्रेमपूर्ण हृदय से करें।”

“बैठ जायें, धीरे से अपनी आँखों को बन्द करें और आराम करें। प्रार्थना को दो या तीन बार मन ही मन दोहरायें, हर शब्द और वाक्य पर समय लगाते हुए जिससे कि इसके अर्थ को जितनी गहराई से हो सके आप महसूस कर पायें। इसके अर्थ पर ध्यान करें और स्वयं को इस प्रार्थनापूर्ण ध्यान में डूब जाने दें। फिर जब भी आप ठीक समझें सो जायें।”

प्रार्थना करने के बाद यह सुनिश्चित करें कि जो दशा आपने अर्जित की है उसे बनाये रखा जाये। सीधे तकिये पर अपना सिर न पटक दें। धीरे-धीरे हिलें-डुलें। धीरे-धीरे लेटने की अवस्था में आयें। आने वाले कल के बारे में न सोचें। वह दशा जो अभी आपने बनाई है सोते समय भी जारी रहनी चाहिए, आपके भीतर फैलती हुई।

“और इस प्रकार यह प्रार्थना ध्यान बन जाती है,” मैंने कहा।

“यह प्रार्थना-ध्यान है जो ध्यानपूर्ण प्रार्थनामय अवस्था निर्मित करता है,” उन्होंने उत्तर दिया। इस प्रार्थना को बाबूजी ने कम्पनों के रूप में प्राप्त किया और उनके अहसास को उन्होंने शब्दों में ढाल दिया। अब हमारा काम है कि इस प्रक्रिया को उलट दें। हम इन शब्दों को अहसास में बदलते हैं। अहसास में उनका सार होता है। और अहसास के द्वारा वे स्रोत तक पहुँच जाते हैं जहाँ से वे आये थे। इसके शब्दों पर ध्यान करने से हम इसका गहरा सार खोजते हैं। यह हमारी चेतना को ऊँचा उठाता है। इस चेतना के साथ जब हम सोने जाते हैं तो हमारी नींद एक अत्यन्त विशेष अवस्था में परिवर्तित हो जाती है जिसे योगनिद्रा कहते हैं।”

“योगनिद्रा क्या है?” मैंने पूछा।

दाजी ने कहा, “कुछ लोग इतनी गहरी नींद में सोते हैं कि अगर आप उनके ऊपर पानी भी डाल दें तब भी उनकी नींद नहीं खुलेगी। और कुछ लोग आपकी उपस्थिति से ही जाग जाते हैं। सामान्य रूप से हम गहरी नींद और हल्की नींद के बीच एक क्रम देख सकते हैं। योगनिद्रा में हमारी चेतना सभी दिशाओं में फैलती है। गहरी निद्रा की ओर बढ़ने के साथ-साथ यह जागृत अवस्था की ओर भी फैलती है। परिणामस्वरूप हम एक साथ दोनों अवस्थाओं में रहते हैं। गहरी निद्रा में होते हुए हम गहराई से जागृत भी रहते हैं। इस तरह योगनिद्रा में हम केवल शारीरिक और मानसिक आराम ही नहीं बल्कि चेतना का विस्तार भी कर पाते हैं।”

“लेकिन इस अवस्था में और भी बहुत कुछ होता है। एक योगी दूसरे स्थानों पर, दूसरे आयामों में और दूसरे कालों में भी काम कर सकता है। सूक्ष्म शरीर की यात्रा भी हो सकती है और आपका भौतिक रूप आपके कार्य को सीमित भी नहीं कर पाता। यह सब घटित होने के लिए योगनिद्रा एक सर्वोत्तम अवस्था है। लेकिन यह व्यक्तिगत अनुभव की चीज़ है न कि बहस की। आइए, अब हम उस चीज़ पर ध्यान केन्द्रित करें जिसे हम अपने सामूहिक विकास के स्तर के अनुसार समझ सकते हैं। यह जान लें कि योगनिद्रा हमें ध्यान के समय अधिचेतना के आसमान में उड़ान भरने के लिए तैयार करती है।”

मैंने पूछा, “यह ऐसा कैसे करती है?”

“किसी भी ध्यान की गुणवत्ता काफी हद तक हमारे रखैये व हमारे मिजाज से निर्धारित होती है। मिजाज तो धीरे-धीरे बनते और बिगड़ते रहता है। ज़रूरत पड़ने पर आप अपनी उँगलियों के इशारे पर ध्यान का भाव पैदा नहीं कर सकते। यह पहले से ही आपके अन्दर होना चाहिए। लेकिन जब सुबह का पहला काम ही आपका ध्यान है तो उस भाव को बनने का मौका कब मिला होगा? इसे सोते समय बनना चाहिए।”

“और इसके लिए सोते समय हमें सही बीज़ बोना चाहिए,” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी बोले। सोते समय की प्रार्थना स्रोत से मिलन की आस में एक प्रार्थनामय चेतना की शुरुआत कर देती है। रात भर ये आस बढ़ती रहती है और सुबह होते-होते हम भीतरी आनन्द से भरे हुए ध्यान करने बैठते हैं जो हमें स्रोत की ओर और गहरा ले जाता है।

मैंने कहा, “रात में हम प्रार्थना करते हैं और फिर सोते हैं। सुबह भी हम प्रार्थना करते हैं और फिर ध्यान करते हैं। यह किस चीज़ से निर्धारित होता है कि हम सोयेंगे या ध्यान करेंगे?”

“हमारे अवचेतन इरादे से।” दाजी ने बताया। “जब सुबह ध्यान से पहले हम प्रार्थना करते हैं तो इसे दो या तीन बार दोहराते नहीं हैं जैसा कि हम रात में करते हैं। हम इसे केवल एक बार कह कर ध्यान में बैठ जाते हैं।”

“क्यों?” मैंने पूछा।

दाजी ने बताया, “अगर आप सोते समय सही भाव में प्रार्थना करते हैं तो प्रार्थना की यह दशा सुबह भी आपके साथ रहती है। अगर ऐसा नहीं होता तो आपको केवल याद भर दिलाना है। जैसे घोड़ा चाबुक की परछाई देखकर ही दौड़ पड़ता है, हमारी आन्तरिक अवस्था भी प्रार्थना को एक बार करने से ही जीवन्त हो उठती है। अब अधिचेतना के आसमान में उड़ान भरना बच्चों का खेल हो जाता है।”

प्रार्थना

- आराम से बैठ जायें, और अपनी आँखों को हल्के से बन्द कर लें।
सवेरे ध्यान शुरू करने के पहले:

- ध्यान शुरू करने से पहले एक बार चुपचाप प्रार्थना करें।
सोते समयः:

- प्रार्थना को चुपचाप बीच-बीच में रुकते हुए दो-तीन बार करें। शब्दों के वास्तविक अर्थ पर दस से पन्द्रह मिनट ध्यान करें। उन्हें बुद्धि से समझने की बजाय अपने हृदय में प्रतिध्यनित होता हुआ महसूस करें। अर्थ को भीतर से प्रकट होने दें। शब्दों से परे इसके भाव में खो जाने का प्रयास करें।

हे नाथ!

तू ही मनुष्य जीवन का वास्तविक ध्येय है।
हम अपनी इच्छाओं के गुलाम हैं,
जो हमारी उन्नति में बाधक है।
तू ही एकमात्र ईश्वर एवं शक्ति है,
जो हमें उस लक्ष्य तक ले चल सकता है।

भाग ३

गुरु



6.

गुरु की भूमिका



दाजी के साथ होने वाली मेरी पूरी बातचीत के दौरान, उन्होंने अक्सर अपने दो गुरुओं, बाबूजी और चारीजी का ज़िक्र किया। हालाँकि ये सन्दर्भ ज्यादातर, बातचीत के दौरान, बीच-बीच में दिये गये, मैंने यह महसूस किया कि गुरु की भूमिका की गहन जाँच के बिना, हमारी बातचीत अधूरी होगी।

मैंने कहा, “जाहिर है कि आपके गुरुओं का आपके जीवन पर गहरा असर पड़ा। तो क्या आप यह कहेंगे कि आध्यात्मिक विकास के लिए गुरु का होना आवश्यक है?”

दाजी ने उत्तर दिया, “पहले तो हम यह समझ लें कि गुरु है क्या, और तब आप फ़ैसला करें कि उसका होना आवश्यक है या नहीं!”

मैंने कहा, “ठीक है, तो बताइए गुरु क्या होता है?”

उनका उत्तर था, “यह भी आप ही पर निर्भर करता है कि आप किस स्तर पर उसे स्वीकर करते हैं? कुछ लोगों के लिए, गुरु का होना महज एक औपचारिकता है। कुछ के लिए, गुरु एक शिक्षक है। जबकि कुछ के लिए, वह स्वयं में ही एक शिक्षा है—इसका जीता-जागता एक उदाहरण। और फिर, कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनके लिए गुरु इसका एक सारतत्व है। दरअसल, गुरु ये सब कुछ है।”

“शिक्षा गुरु का निम्नतम स्तर है। यह उसका सबसे छोटा कार्य है। शिक्षा का क्षेत्र सीमित है क्योंकि अगर किसी व्यक्ति में दिव्य ज्ञान की सच्ची तड़प नहीं है तो कोई भी शिक्षक उसे सिखा नहीं सकता। अगर उसमें तड़प होगी तो उसे हर जगह संकेत मिलने लगेंगे और शिक्षा की कोई ज़रूरत नहीं रह जायेगी।”

“एक बात और। जो ज्ञान हम शिक्षा के ज़रिये प्राप्त करते हैं, वह किसी और से लिया गया ज्ञान होता है। किसी और से लिया गया ज्ञान हमें बहुत ज्यादा ज्ञानी नहीं बनाता। बेहतर होगा कि कुछ चीज़ों को स्वयं ही देख और अनुभव कर लिया जाये। साथ ही, आप गुरु के शब्दों को अपने स्वयं के हृदय से जाँचते रहें। यदि आपका हृदय सहमत है तो आप कह सकते हैं, “हाँ, गुरु की बात सही है।” अगर आपका हृदय “न” कहता है, तो फिर आप गुरु को अनदेखा कर दें। तो फिर सच्चा गुरु कौन हुआ—जो आपको शिक्षा देता है या फिर आपका हृदय?”

मैंने कहा, “तो फिर गुरु का मङ्कसद असल में शिक्षा देना नहीं है।”

दाजी ने कहा, “गुरु की एकमात्र शिक्षा, यदि कोई है तो वह है—उसकी अपनी मिसाल। फिर भी, जब हम गुरु को देखते हैं तो क्या देखते हैं? मुझे याद है एक बार बाबूजी ने कहा था : ‘बहुत सारे लोग मुझे देखने आते हैं, लेकिन कोई भी वास्तव में मुझे देख नहीं पाता।’ अक्सर, लोग गुरु की नक़ल करने की कोशिश तो करते हैं, लेकिन वे उसके मर्म को समझ नहीं पाते। जो चीज़ गुरु को नक़ल करने योग्य बनाती है, उसे लोग नहीं पकड़ पाते। इसकी बजाय वे केवल गुरु के कार्यों, उसके कपड़ों या तौर-तरीक़ों की नक़ल करने लगते हैं। इस तरह, असल चीज़ उनसे छूट जाती है। वे गुरु की ज़रूरी प्रकृति को समझने से वंचित रह जाते हैं।”

“यह उनकी ग़लती नहीं है। किसी भी वस्तु का आँकलन करने या उसके बारे में कोई निष्कर्ष निकालने के लिए हमें उस वस्तु से अधिक सूक्ष्म होना चाहिए। यही वजह है कि गुरु कभी अपने शिष्यों की पकड़ में नहीं आता। वह इस स्तर तक सूक्ष्म होता है कि हम उसे वास्तव में देख ही नहीं पाते। अधिक से अधिक हम एक ऐसा परिष्कृत व्यक्ति देख पाते हैं, जो कभी-कभी ज्ञान की बातें करता है। सबसे सूक्ष्म चीज़ तो स्वयं परम तत्व ही है। तो इसे कभी कैसे देखा जा सकता है, और कैसे हम कभी इसके बारे में कोई निष्कर्ष निकाल सकते हैं?”

“लेकिन आध्यात्मिक अभ्यास के ज़रिये, हम भी सूक्ष्मतर होते जाते हैं। गुरु असल में क्या है, इसे अब हम बेहतर रूप से समझना शुरू कर देते हैं। और जिस हृद तक हम गुरु को समझ पाते हैं, उतना बाकी चीज़ों को भी समझने लगते हैं। जैसा कि मैंने पहले ही कहा कि वे शायद ही हमें कभी कोई शिक्षा दें। हमें खुद ही इन्हें समझना होता है।”

“वाकई, गुरु कुछ नहीं करता। और न ही उसे कुछ करना है। क्या सूर्य की मौजूदगी में रात हो सकती है? सूर्य उदय होता है, और अँधकार चला जाता है। इसके लिए सूर्य कुछ नहीं करता। उसका स्वभाव ही यह है। गुरु भी ठीक इसी प्रकार होता है। गुरु का शाब्दिक अर्थ है ‘अँधकार को दूर करने

वाला'। लेकिन सूर्य की ही तरह वह भी अँधकार को दूर करने के लिए कुछ नहीं करता। वह तो जैसा है, वैसा है।"

"कली पर जैसे ही सूर्य की किरणें पड़ती हैं, वह धीरे-धीरे खिलने लगती है। क्या सूर्य को इसके लिए कुछ करना पड़ता है? क्या कली को कुछ करना पड़ता है? यह तो बस हो जाता है।"

"इसलिए गुरु खुद कुछ नहीं करता। यह तो उसकी मौजूदगी है जो सब कुछ करती है। और उसकी मौजूदगी तभी कार्य करती है जब जिज्ञासु का हृदय पुष्टि होने के लिए तैयार हो। कली को जबरन खोलने का प्रयास उसे बर्बाद ही करेगा। अगर गुरु को हम पर कार्य करना पड़े तो वह एक थोपी हुई चीज़ होगी। यह विघ्वंसकारी होगा। इसलिए गुरु ऐसा नहीं करेगा।"

"लेकिन गुरु हमें साफ़ करता है और हमें प्राणाहुति देता है।" मैंने कहा।

"नहीं," दाजी बोले। "हम गुरु की उपस्थिति के कारण साफ़ होते हैं। उसकी उपस्थिति के कारण ही हम प्राणाहुति प्राप्त करते हैं। गुरु कुछ भी नहीं करता है। लेकिन वह जैसा है, वैसा बनने के लिए उसने खुद पर बहुत मेहनत की ठीक उसी तरह जैसे हमें भी अपने ऊपर मेहनत करनी है। हमें अभ्यास करना होता है! अभ्यास के ज़रिये हम अपने हृदय को तैयार करते हैं जिससे कि वह गुरु से सब कुछ खींच सके। इसीलिए हम प्रतिदिन ध्यान, सफाई और प्रार्थना करते हैं। हमारे प्रयास के बिना हमारे जीवन में गुरु की मौजूदगी व्यर्थ चली जाती है।"

"तो हमारा व्यक्तिगत प्रयास ही उत्प्रेरक है।" मैंने कहा।

"हाँ," दाजी ने कहा। "अभ्यास ज़रूरी है। आप गुरु से हर रोज़ मिल सकते हैं, उनके साथ भोजन कर सकते हैं, उनके साथ रह सकते हैं। लेकिन अगर आपका हृदय तैयार नहीं है तो यह आपकी जरा भी मदद नहीं करेगा।"

"लेकिन अगर आपका हृदय तैयार है तो फिर आपको गुरु से बार-बार मिलने की ज़रूरत ही क्या है? गुरु बहुत दूर से कार्य कर सकता है। यह सही है कि वह वाकई कुछ नहीं करता लेकिन कार्य उसी के ज़रिये होता है। और उस कार्य के होने के लिए आपको गुरु की भौतिक मौजूदगी में होना ज़रूरी नहीं है। यह एक ऐसी सीमा है जिसे हम अपने मन में बना लेते हैं। गुरु को आपका नाम जानने की ज़रूरत नहीं है। वह आपको चेहरे से पहचाने, यह भी ज़रूरी नहीं है। इस तरह का सचेतन ज्ञान उसके कार्यों के लिए पूरी तरह अनावश्यक है। गुरु को इस बारे में भी जानने की ज़रूरत नहीं है कि वह आप पर कार्य कर रहा है, क्योंकि आध्यात्मिक कार्य गुरु के हृदय से स्वतः होते हैं। आपके हृदय ने पुकार लगायी है तो गुरु के रूप में प्रकृति उत्तर देती है।

इस प्रकार, गुरु-शिष्य का सम्बन्ध आन्तरिक होता है जो गुप्त रूप से हृदय में फलता है।”

“हमें गुरु के साथ व्यक्तिगत रूप से बातचीत करने की कितनी ज़रूरत है?” मैंने पूछा।

“इस सम्बन्ध को मानवीय स्तर पर प्रकट होने की ज़रूरत बिल्कुल भी नहीं है।” दाजी ने उत्तर दिया। “इसके बावजूद, अपने जीवन में एक बार गुरु से मिलना सबसे अच्छा है। इसका मतलब यह नहीं है कि आपको हाथ मिलाना है या बातचीत करनी है। लेकिन एक बार उनके आस-पास रहें। उस वक्त अगर आपकी मनोवृत्ति सही है, आप ग्रहणशील हैं, तो कुछ विशेष घटित होगा। आपकी समूची आध्यात्मिक यात्रा की रूपरेखा तय हो जाती है। इसके बाद होने वाली दूसरी कोई मुलाकात तो बस एक अतिरिक्त लाभ यानी बोनस है। हमें गुरु के पीछे-पीछे घूमने की ज़रूरत नहीं है, जैसा कि हम भारत में अक्सर होते देखते हैं। हमें कभी गुरु की पूजा नहीं करनी चाहिए, जैसा कि बहुत से लोग करते हैं। इन लोगों का विश्वास है कि गुरु के भौतिक रूप में परम स्रोत मौजूद होता है। गुरु के भौतिक स्वरूप में स्रोत नहीं है। स्रोत कहीं नहीं है। दूसरी तरफ, यह किसी भी जगह हो सकता है। लेकिन जिस जगह आप इसे कभी पा सकेंगे, वह **आपके भीतर है**। बाह्य गुरु का उद्देश्य आपको भीतर के गुरु, यानी दिव्यता की तरफ ले जाना होता है जो हमारा मार्गदर्शन करता है, हमें प्रेरित करता है।”

“और वह जीवित गुरु ही होना चाहिए—गुज़रे ज़माने के गुरु आपकी मदद नहीं कर सकते। क्या आप एक कमरे को ऐसी लौ से रोशन कर सकते हैं जो बुझ चुकी हो? गुरु के जाने के बाद केवल उसकी शिक्षाएँ शेष रह जाती हैं। यह किंताबी ज्ञान है।”

“तो हमें एक जीवित उदाहरण की ज़रूरत है।” मैंने कहा।

“यहाँ तक कि उदाहरण की भी ज़रूरत नहीं है।” दाजी ने कहा। ‘अगर आप उससे अक्सर नहीं मिलते हैं तो फिर उसके उदाहरण से क्या मिलेगा? जिस चीज़ की हमें वाकई ज़रूरत है, वह है वो सारतत्व जो गुरु हमारे हृदय में प्राणाहुति के रूप में उड़ेलता है।

“निश्चित रूप से सारतत्व हर जगह है क्योंकि स्रोत हर जगह है! लेकिन एक जीवित गुरु के बिना, जो इसे शुद्ध कर हमारे हृदय में केन्द्रित करता है, हम इसे देख नहीं पाते। हम इससे अछूते रहते हैं, और हम अन्तहीन संघर्ष करते हैं क्योंकि हमें कोई मदद नहीं मिलती।”

“किसी की सहायता के बिना हम अपने पार, अपनी सीमाओं के पार जाने में कठिनाई महसूस करते हैं। कल्पना कीजिए कि आपकी कार ख़राब

हो गयी हो और आप कार के अन्दर बैठकर उसे धकेलने की कोशिश कर रहे हों। आप कितना भी ज़ोर से धकेलें, गाड़ी कभी नहीं हिलेगी। इसको बाहर से धक्का लगाना होगा। गुरु वही धक्का है। हम काफ़ी समय से खुद को भीतर से धकेल रहे हैं। आखिरकार हमें एहसास होता है कि इस क्षेत्र में प्रगति करने के लिए हमें मार्गदर्शन की आवश्यकता है।”

“हम गुरु को कैसे ढूँढ़ें?” मैंने पूछा।

“गुरु, सच्चे साधक को दिया गया उत्तर है।” उन्होंने जवाब दिया। “बाबूजी अक्सर कहा करते थे कि जिज्ञासु की सच्ची तड़प मालिक को उसके दरवाजे पर ले आती है। कुछ मामलों में जिज्ञासु इस आन्तरिक पुकार के प्रति जागरूक होता है। कुछ अन्य मामलों में यह पुकार अचेतन होती है। और जिस प्रकार यह सत्य है कि साधक या जिज्ञासु गुरु को खींच लेता है, यह भी उतना ही सत्य है कि गुरु जिज्ञासु का चयन करता है।”

“ऐसा कैसे?” मैंने पूछा।

“बचपन में मुझे बहुत अनुभव हुए थे।” दाजी ने कहा। “जब भी मैं बीमार पड़ता था, मैं एक सपना देखता था। इस सपने में, मैं एक सफेद घोड़े पर किसी सवार को देखता था। वह एक सफेद चिकना लबादा पहने होता था और उसकी सुन्दर सफेद दाढ़ी थी। आम तौर पर आप सपने भूल जाते हैं लेकिन जब आपको एक ही सपना बार-बार आने लगे तो वह आपको याद हो जाता है।”

“उस वक्त आपकी उम्र क्या थी?” मैंने पूछा।

“यह तब शुरू हुआ, जब मैं चार-पाँच साल का था और ग्यारह साल का होने तक यह मुझे बीच-बीच में आता रहा। अन्तिम बार, मैं बाहर एक कपड़े की फोलिंग कुर्सी पर बैठकर पढ़ रहा था। यह हमारे गाँव की बात है। वहाँ मुझे यह दृश्य एक बार फिर दिखाई दिया और मैं समाधि में पहुँच गया। मैं घण्टों बेसुध रहा।”

“उस आखिरी अनुभव के बाद, मैंने भीतरी खिंचाव महसूस करना शुरू किया, एक प्रकार की अभिलाषा। मैंने अपने परिवार के लोगों को बताया कि मैंने अपने हृदय में कुछ खास महसूस करना शुरू कर दिया है। कई साल बाद मुझे पता चला कि इस अनुभव के समय मेरे क्षेत्र से बाबूजी गुज़र रहे थे। कई वर्षों बाद जब मैं उनसे पहली बार मिला तो मैंने उनके चेहरे को तुरन्त पहचान लिया। सफेद कपड़ों में वह वही व्यक्ति थे जो मुझे बचपन से दिखाई दे रहे थे।”

“तो वे आपको पहले से ही तैयार कर रहे थे।” मैंने कहा।

“गुरु हम सबको बहुत पहले से ही तैयार करते हैं।” दाजी ने कहा। “लेकिन कुछ हद तक मुझे इसकी जानकारी थी। आम तौर पर इस प्रकार की तैयारी बिना पता चले होती है। यह चुपचाप, बिना हमारी या किसी और की जानकारी के होती है। यह उस बीज की तरह है जो ज़मीन के भीतर अंकुरित होता है। इस बीज को केवल वही जानता है जिसने उसे बोया है।”

“बाबूजी जहाँ भी जाते थे, प्राणाहुति देते थे। जो लोग तैयार होते थे, उसका उत्तर देते थे। एक तरह से हम सभी ने उन तक पहुँचने की राह खुद बनाई है। 1940 के दशक में उन्होंने ट्रेन से भारत में यात्रा एँ कीं। कुछ स्थानों पर वे रुक जाते थे और रिक्शे पर बैठकर पूरे शहर में घूमते थे। वे जहाँ-जहाँ जाते, रिक्शे पर बैठे-बैठे प्राणाहुति देते जाते। जब वह सन्तुष्ट हो जाते कि उस क्षेत्र में आध्यात्मिक सम्भावना के लिए काफ़ी हद तक बीजारोपण हो चुका है तो वह ट्रेन पकड़ कर किसी और जगह चले जाते और इस प्रक्रिया को दोहराते। बाबूजी ने अपनी पूरी ज़िन्दगी इसी प्रकार आध्यात्मिक बीजारोपण किया। हालाँकि बाद में वे घर से निकले बिना ही यह कार्य किया करते थे।”

“तो क्या गुरु हमें तैयार करता है या फिर हमारा हृदय गुरु को बुलाता है?” मैंने पूछा।

“उसका अस्तित्व ही हमारी आन्तरिक ज़रूरतों के कारण है।” दाजी ने कहा। “उसकी मौजूदगी के कारण कुछ लोग इस ज़रूरत के प्रति जागरूक हो जाते हैं। उनके हृदय तड़पते हैं। आध्यात्मिक अभिलाषा सभी में मौजूद है, लेकिन कई मामलों में यह सुन्प पड़ी होती है। कभी-कभी प्राणाहुति के एक स्पर्श मात्र से आप अपने गहरे उद्देश्य के प्रति जागरूक हो जाते हैं। तो गुरु प्राणाहुति देते रहता है, देते रहता है। यह प्राणाहुति एक प्रकार का निमन्त्रण होती है। अगर हम उसका प्रत्युत्तर देते हैं तो हमें गुरु तक का मार्ग मिल जाता है। गुरु हमें जबरन नहीं बुला सकता। आपके हृदय की सहमति ज़रूरी है। गुरु कभी आपके हृदय के खिलाफ नहीं जा सकता। गुरु कितना भी महान हो, अनिच्छुक हृदय उसके कार्यों को निष्प्रभावी कर देता है।”

“यही कारण है कि आन्तरिक परिवर्तन थोपना सम्भव नहीं है। जिज्ञासु की ओर से इसके प्रति इच्छा होना ज़रूरी है। केवल तभी गुरु के कार्य प्रभावकारी हो सकते हैं। जिज्ञासु और एक समर्थ गुरु के बीच के रिश्ते में निर्णायिक कारक जिज्ञासु होता है—गुरु कभी नहीं। गुरु महान हो सकता है, वह सशक्त हो सकता है, लेकिन अपनी शक्ति को वह हमारे ऊपर कभी थोप नहीं सकता।”

“ऐसे कई दुर्भाग्यपूर्ण उदाहरण हैं, जहाँ ढोंगी लोग गुरु बनकर अपने निजी लाभ के लिए या अपने अहंकार को सन्तुष्ट करने के लिए, दूसरों पर

बलपूर्वक शक्ति का इस्तेमाल करते हैं। यह एक कारण है कि अन्धविश्वास ख़तरनाक क्यों होता है। हमें अपना पूरा विश्वास उस व्यक्ति में केवल तभी लगाना चाहिए, जब वह स्वयं को भरोसेमन्द और समर्थ साबित कर चुका हो। विश्वास तभी आता है जब हम परिणामों की मिसालें देखते हैं—उससे पहले कभी नहीं। यह विश्वास कभी अन्धा नहीं होना चाहिए।”

“लेकिन एक गुरु को आप पहली बार में कैसे पहचानेंगे?” मैंने पूछा।

“किसी बाहरी संकेत की ज़रूरत नहीं है।” दाजी ने कहा। “एक सच्चा गुरु कभी दिखावा नहीं करेगा। एक ज़ेब्रा को उसकी धारियों और तेन्दुए को उसके धब्बों से जान सकते हैं। लेकिन गुरु को? कोई भी गुरु जैसे कपड़े पहन सकता है और चेहरे पर दाढ़ी रख सकता है। इस तरह की बाहरी विशेषताओं का कोई अर्थ नहीं है और इसलिए ये अनावश्यक भी हैं। एक गुरु लम्बा भी हो सकता है या फिर छोटा भी। वह वैभवपूर्ण भी दिख सकता है और साधारण भी। वह बहुत पढ़ा-लिखा भी हो सकता है और बोलते समय अटकने वाला भी। वह रईस भी हो सकता है और कंगाल भी। गुरु की बाहरी चीज़ों से हम कभी कुछ नहीं सीखते। एकमात्र निर्णायक कारक गुरु का आन्तरिक आध्यात्मिक आयाम होता है।”

“लेकिन इसका निर्धारण कैसे किया जाये? अगर आप गुरु की आन्तरिक दशा को अपने भीतर समाविष्ट करने में सक्षम होते तो हो सकता है कि आपको गुरु की ज़रूरत ही न पड़ती।”

“तो फिर उसे परखने का क्या तरीक़ा है?” मैंने पूछा।

“जब आपकी आत्मा अपने विवेक से ऐसे व्यक्ति को पाती है जो सही है तो आप अपने हृदय में शान्ति और स्थिरता महसूस करेंगे।” दाजी ने कहा।

“यह आपके आध्यात्मिक अभ्यास की शुरुआत के तुरन्त बाद भी हो सकता है, या फिर कुछ समय बाद भी। लेकिन यह होगा ज़रूर। जब ऐसा हो तो निश्चित रूप से जान लीजिए कि यही वह व्यक्ति है जो आपका मार्गदर्शन कर सकता है।”

“हमें इस शान्ति और स्थिरता को पाने के लिए कितने समय तक अभ्यास करने की ज़रूरत है?” मैंने पूछा।

“देखिए, यह आप पर निर्भर करता है।” उन्होंने कहा। “अपनी सबसे पहली सिटिंग में मैं जान गया कि मैंने वह पा लिया है जिसकी मुझे तलाश थी। अन्य लोगों के बारे में इसमें कुछ हफ्ते या कुछ महीने लग सकते हैं। कुछ लोगों को अपने स्वयं के अनुभवों से विश्वास करने में थोड़ा वक्त लगता है।”

“और आपको कैसे मालूम पड़ेगा कि वह व्यक्ति ग़लत है?” मैंने पूछा।

“आपका हृदय सन्देह करना शुरू कर देगा।” दाजी ने कहा। “निश्चित रूप से मन में कुछ शंकाएँ ज़रूर होंगी। प्रश्न करना इसका स्वभाव है। लेकिन जब आपका हृदय सन्देह से भारी और बेचैन हो तो समझ लीजिए कि वह व्यक्ति आपके लिए नहीं है।”

“इसके विपरीत, जब आपका हृदय सन्तुष्ट हो तो मन की शंकाओं के बारे में न सोचें। यह अपने अभ्यास में स्थिर होने और खुद पर कार्य करने का समय है।”

“अगर आप असन्तुष्ट हैं तो आपको अपने गुरु को किसी भी समय छोड़ने का अधिकार है। किसी गुरु से अपनी राह अलग कर लेने में किसी प्रकार की घबराहट नहीं होनी चाहिए। गुरु को अधिकार नहीं है कि वह शिष्य को अपने तक ही रखने की उम्मीद करे। उसे खुद का अनुसरण करने का अधिकार नहीं है।”

“शिष्य गुरु से अपना जुड़ाव काट लेने का अधिकार हमेशा अपने पास रखता है। जहाँ तक गुरु का प्रश्न है, अगर वह शिष्य को उसकी आध्यात्मिक यात्रा में और आगे ले जा पाने में समर्थ नहीं है तो उसे खुद से बेहतर गुरु की तलाश करने में शिष्य की मदद करनी चाहिए।”

“सन् 1961 में एक जिज्ञासु बाबूजी के पास आया। उसके पास पहले से ही एक गुरु थे जिन्हें वह स्वामी जी कहता था। हालाँकि, बाबूजी की उपस्थिति में उसे बेहतर अनुभव हुए। इसलिए उसने बाबूजी को एक पत्र लिखकर कहा कि उसके साथ एक समस्या है। वह बाबूजी को गुरु के रूप में स्वीकार करना चाहता था, लेकिन साथ ही वह अपने स्वामीजी को धोखा देना भी नहीं चाहता था। इस पर बाबूजी का जवाबी पत्र मेरे पास मौजूद है।”

दाजी अपने बेडरूम में गये और एक मिनट बाद वापस आ गये।

“मैं आपको बाबूजी के जवाब का एक पैराग्राफ पढ़कर सुनाता हूँ।” उन्होंने कहा।

“बाबूजी लिखते हैं : जहाँ तक मेरी बात है, कृपया आप मुझे अपना सेवक समझें, जो आपके घर में झाड़ू लगाकर उसे साफ़ रखता है। मुझे अपना नौकर समझें और स्वामीजी को मालिक। मुझे आपकी सेवा करने में कोई संकोच नहीं होगा और मैं यह भी चाहूँगा कि आप इसका मेहनताना स्वामी जी को देते रहें।”

“एक बात और” दाजी ने आगे कहा, “बाबूजी के साथ मेरे व्यक्तिगत अनुभव में मैंने कभी यह नहीं पाया कि बाबूजी ने खुद को गुरु के समान माना

हो। इसके बजाय, वे खुद को इस तरह से मानते थे जैसे वे बिल्कुल तुच्छ हों।”

“मुझे एक घटना याद है जब एक बड़े सरकारी अधिकारी उनसे मिलने आये थे। वे अधिकारी ट्रेन से शाहजहाँपुर उतरे (वह शहर जहाँ बाबूजी रहते थे) और वहाँ उन्हें एक व्यक्ति मिला, जो उन्हें लेने आया था। बिना कुछ कहे, उस अधिकारी ने अपना सामान उस व्यक्ति को थमा दिया और दोनों रिक्शे पर बैठकर बाबूजी के घर की ओर चल पड़े। अब ये अधिकारी काफ़ी भारी-भरकम थे और उनके पास सामान भी ज़्यादा था। इसलिए उस रिक्शे पर दो लोगों के बैठने के लिए पर्याप्त जगह नहीं थी। इसलिए अधिकारी सीट पर बैठ गये और दूसरा व्यक्ति रिक्शे की फ़र्श (जहाँ पैर रखते हैं) पर बैठ गया। जब वे बाबूजी के घर पहुँचे तो वह व्यक्ति सामान उठाकर बाबूजी के कमरे में ले आया। इसके बाद वह अधिकारी बाबूजी का अभिवादन करने गये। वहाँ उन्हें जीवन का सबसे बड़ा झटका लगा। उन्होंने उसी छोटे से व्यक्ति को बाबूजी की कुर्सी पर बैठे पाया। तब उन्हें एहसास हुआ कि बाबूजी खुद उन्हें लेने स्टेशन आये थे! उन्होंने बाबूजी को नौकर समझ लिया था।”

“आपको पता होगा कि संस्कृत का एक शब्द है : महात्मा, यानी महान आत्मा। अक्सर इस शब्द का इस्तेमाल किसी के सम्मान में किया जाता है। कुछ मामलों में तो लोग खुद को ही महात्मा कहते हैं! बाबूजी इस शब्द को बहुत नापसन्द करते थे। वे कहते थे कि सच्चे महात्मा में कोई महानता नहीं होती बल्कि वह तो अपने लिए, दुनिया के लिए और हर चीज़ के लिए बिलकुल तुच्छ होता है। वह पूरी तरह विनम्र होता है। अगर आप कभी सोचें कि आप महान हो गये हैं तो आप अपनी क़ब्र खुद खोद रहे होते हैं। एक सच्चा महात्मा वह है जो कुछ दावा नहीं करता, कुछ वादा नहीं करता, जो कुछ नहीं बन चुका होता है। लेकिन ऐसे हस्तियों की अक्सर उपेक्षा की जाती है जबकि ऐसे धूर्त या मोहित करने वाले गुरुओं की, जो आकर्षण पैदा करा के और छोटे-मोटे जादू करके अपने शिष्यों को बाँधे रखते हैं, ज़्यादा पूछ होती है।”

“एक गुरु के अन्दर कभी यह विचार नहीं आता कि वह गुरु है। अगर उसके हृदय में यह भावना एक बार भी प्रवेश कर गयी तो मेरे विचार से वह इस कार्य के लिए उसी क्षण अयोग्य हो जाता है। वास्तव में एक गुरु को स्वयं को नौकर से भी कम समझना चाहिए। लेकिन इसकी बजाय हमें अक्सर कई सारे स्वयम्भू गुरु देखने को मिल जाते हैं। आपको पता है, मैंने कभी चारी जी को स्वयं को बाबूजी के शिष्य के अलावा और कुछ कहते नहीं सुना। और बाबूजी... वे तो इतने विनम्र थे कि “मैं” शब्द से वह भ्रमित हो जाते थे।

“बहुत लोगों को ठीक से पता भी नहीं है कि गुरु है क्या। ऐसा लगता है कि लोग किसी को भी गुरु कहने को राजी हैं जो गेरुआ वस्त्र भर धारण कर लेता है, या फिर प्राचीन प्रथों का कुछ ज्ञान दिखा देता है या कुछ अच्छी बातें कर लेता है। बहुत से गुरु आपको कोई साधना भी नहीं देते। वे आपको कुछ अभ्यास दे सकते हैं, लेकिन उनका कार्य वहीं समाप्त हो जाता है। कोई सतत आन्तरिक सम्पर्क नहीं होता। दरअसल यह उसी तरह है जैसे कोई आपको बीच सड़क पर छोड़कर चला जाये! क्या ऐसे गुरु आध्यात्मिक यात्रा को शुरू करा सकते हैं और हमें तब तक साथ लेकर चल सकते हैं जब तक हम सुदूर किनारे तक न पहुँच जायें? क्या वे उन आन्तरिक पेचीदगियों और जटिलताओं को हटा सकते हैं जो हमें उलझाती हैं और उत्तरोत्तर प्रगति में बाधक बनती हैं? क्या वे मन की बेचैन प्रवृत्तियों को क्षीण करके उत्तम गुणों को हमारे हृदय में प्रविष्ट करा सकते हैं? क्या वे हमारे संस्कारों के भार को हटा सकते हैं? ऐसी बहुत सारी अन्य चीज़ें हैं जो गुरु को अवश्य करनी चाहिएँ ताकि मंज़िल पर हमारा आगमन सुनिश्चित किया जा सके। आखिर गुरु के पास हर उस शिष्य की आध्यात्मिक प्रगति की ज़िम्मेदारी होती है जो उसकी देख-रेख में है। उसकी जवाबदेही हर एक शिष्य के लिए है। उसे दोनों को जवाब देना होता है—अपने स्वयं के गुरु को और स्वयं प्रकृति को। मेरा मानना है कि प्रकृति किसी ऐसे गुरु पर भारी दण्ड लगाती है, जो इन कर्तव्यों को पूरा करने योग्य नहीं होता या करना नहीं चाहता। किसी बेकार या अहितकारी गुरु के होने से तो बेहतर है कि कोई गुरु हो ही नहीं।”

“और ऐसे भी गुरु होते हैं, जो शिष्य के अपने से आगे बढ़ने पर उससे ईर्ष्या करते हैं। क्या माता-पिता कभी अपने बच्चों से ईर्ष्या रख सकते हैं? यह हर माता-पिता का सपना होता है कि वे अपने बच्चे को खुद से आगे बढ़ते देखें। ठीक इसी तरह एक सच्चा गुरु आपको आपसे ही आगे ले जाने से सन्तुष्ट नहीं होगा। वह आपको स्वयं से आगे ले जाना चाहेगा। वह आपको विकास के शिखर तक उठाना चाहेगा। ऐसा शिखर जो लगातार ऊँचा होता रहता है।”

“इसका क्या अर्थ है?” मैंने पूछा।

“एक हज़ार साल पहले जिसे महानतम आध्यात्मिक उपलब्धि माना जाता था, उसकी तुलना वर्तमान की सम्भावनाओं से नहीं की जा सकती। और जो आज सम्भव है, हो सकता है कि वह आने वाले कल की सम्भावनाओं की तुलना में कुछ न हो।”

“तो आध्यात्मिकता विकसित होती रहती है।” मैंने कहा।

“हाँ,” दाजी ने कहा। “उदाहरण के लिए, कोपरनिक्स के समय में यह एक नया विचार था कि धरती सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है। उन

दिनों, यह एक आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान माना जाता था। यह एक नवीनतम विचार था। आज हर बच्चा यह पहले से ही जानता है। मौजूदा समय में हमें क्वाण्टम मेकेनिक्स जैसी चीज़ें ज्यादा आकर्षित करती हैं। क्या ये कोपरनिक्स को किसी भी प्रकार कम करती है? नहीं! इससे कोपरनिक्स की महत्ता कम नहीं हो जाती कि वह आइंस्टीन या हॉकिंग के बारे में नहीं जानता था। अपने समय में वह महान था।”

“ठीक उसी तरह, पूर्व काल की आध्यात्मिक हस्तियाँ अपने समय में महान थीं। लेकिन समय भी बदलता रहता है। आज के आध्यात्मिक दिग्गज नयी खोजें कर रहे हैं। क्या आपको लगता है कि बीते हुए समय की हस्तियाँ इससे जलन रखती होंगी? वे जहाँ भी हों ज़रुर खुशी से झूम रहे होंगे! हम भी आशावान हैं नयी पीढ़ी की आध्यात्मिक प्रतिभाओं से, जो एक दिन आज के लोगों से आगे निकल जायेंगी।”

“गुरु शब्द का एक और अर्थ है ‘महान’ या ‘बड़ा’। किसी बड़ी चीज़ से चीज़ें हमारी तरफ प्रवाहित होती हैं। इसका मतलब यह है कि गुरु देने वाला होता है। लेकिन आज की दुनिया में, गुरु माँगते दिखाई पड़ते हैं। वे चाहते हैं कि उनकी पूजा हो। वे गुरु दक्षिणा चाहते हैं। वे चाहते हैं कि लोग उन पर ध्यान दें, उन्हें प्रेम करें, उनका सम्मान करें, उनका अनुसरण करें। एक सच्चा गुरु इनमें से कुछ नहीं चाहता। गुरु को कभी प्राप्तकर्ता नहीं होना चाहिए। वह कभी नहीं कहता, ‘मेरा अनुसरण करो।’ बल्कि, वह अपनी जगह बना रहता है और अपने शिष्यों को स्वयं से आगे जाने देता है। वह सोचता है, देखूँ कि तुम कितना ऊँचा चढ़ सकते हो। हाँ, ये ज़रुर है कि उसकी सतर्क निगाहें हमेशा वहाँ लगी रहेंगी। वह हमेशा बचाता रहेगा। आपके लिए वह ऐसा नहीं सोचेगा कि उसे और आगे बढ़ने दो और फिर देखते हैं कि वह गिरता है या नहीं।”

“इसके साथ-साथ, गुरु हमारे आध्यात्मिक पथ पर सबसे बड़ी बाधा भी है।”

“सच में?” मैंने कहा।

“हाँ, क्योंकि आप हर चीज़ के लिए उन पर निर्भर रहने लगते हैं।” दाजी ने कहा। आप कहते हैं, “उसकी कृपा से सब ठीक हो जायेगा।” यह बेकार की बात है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसकी सहायता मौजूद है, लेकिन आपको खुद को तैयार करना है। आपको खुद पर मेहनत करनी है।”

“ऐसा न सोचें कि मैं खुद की तारीफ़ करने की कोशिश कर रहा हूँ, लेकिन मैं जेब में केवल बीस डॉलर लेकर अमेरिका गया था। मेरे पिता हमेशा मेरी मदद करना चाहते थे, लेकिन मैंने उस मदद की उम्मीद नहीं की। मैं अपने पैरों पर खड़ा हुआ और सफल हुआ।”

“इसीलिए मैं अक्सर कहता हूँ, ‘ऐसा सोचो कि तुम्हारा गुरु मर चुका है।’ इसका मतलब यह है कि आपको इस तरह काम करना चाहिए जैसे कि आपका कोई गुरु है ही नहीं। प्रगति को गुरु देता नहीं है, इसे समझिए। बल्कि, वह इसका मुख्य स्रोत है। हमारा कार्य उसकी ऊर्जा को आकर्षित करता है। जब आप रास्ते पर एक क़दम बढ़ाते हैं तो वह आपको एक क़दम और आगे ले जाता है। अन्तर केवल इतना है कि उसका एक क़दम चेतना के अनन्त क्षेत्र को समाविष्ट कर सकता है।”

“जब आप अभ्यास करते हैं तो एक समर्थ गुरु सुनिश्चित करता है कि आपकी आध्यात्मिक यात्रा जितनी जल्दी शुरू हो सके हो जाये। और वह लगातार सुनिश्चित करता रहता है कि आप चलते रहें ताकि आपकी यात्रा जारी रहे।”

“वर्तमान में जिस स्तर पर भी आप मौजूद हों, गुरु आपके अगले स्तर के लिए ज़मीन तैयार करने में व्यस्त रहता है। यहाँ तक कि गुरु आपको बहुत ऊँचे स्तर की दशा उस वक्त से काफ़ी पहले प्रदान कर सकता है, जब आप वहाँ वास्तव में पहुँचेंगे।

“मेरे साथ यह सन् 1982 में हुआ। मैं बाबूजी से मिलने उनके घर शाहजहाँपुर जा रहा था। एक दिन दोपहर के समय, मैं कुछ काम से बाहर निकला। जब मैं वापस आया तो बाबूजी ने मेरी तरफ देखा और कहा, “तुम्हें इस हालत में दिन के चौबीसों घण्टे रहना चाहिए।” वे किस बारे में कह रहे थे, ये समझने के लिए मुझे अपने भीतर देखना पड़ा।”

“उस समय मैंने अभ्यास की शुरुआत की ही थी लेकिन जो हालत उन्होंने मुझे दी, वह बहुत उच्च स्तर पर आती है। असल में, बाबूजी ने मुझे उस उच्च स्तर तक पहुँचाया नहीं था। मैं तब तक उसके लिए तैयार नहीं था इसलिए उन्होंने मुझे इसकी बजाय उस स्तर की हालत प्रदान कर दी। उन्होंने मुझे वहाँ पहुँचाए बिना ही वहाँ के गुण दे दिये। सच में, इस तरह की बातें कभी सुनी नहीं गयीं! तो देखिए कि एक महान गुरु ऐसी जादुई चीज़ें कर सकता है।”

“इसके अलावा, एक निश्चित मोड़ होता है, जो आध्यात्मिक यात्रा के हर एक स्तर पर आता है। यह एक ऐसी दशा होती है, जिसमें जिज्ञासु डाँवाडोल हो जाते हैं। वे सोचते हैं, मैं यहाँ आध्यात्मिकता में फँस के कर क्या रहा हूँ? उसके बाद, वे ग़ायब हो सकते हैं। इसलिए गुरु को, उस बिन्दु पर, जिज्ञासुओं के आवेगों को स्थिर करना पड़ता है और उन्हें अनुभवों से सन्तुष्ट कराना पड़ता है।”

“एक गुरु को कम से कम इस योग्य होना चाहिए कि वह आपको मोक्ष के स्तर तक ले जा सके। यह एक प्रारम्भिक क़दम है, और यह यात्रा की मात्र

शुरुआत भर है। वास्तव में, गुरु को इस योग्य होना चाहिए कि वह आपको साक्षात्कार तक, या फिर उससे भी आगे ले जा सके। साक्षात्कार का स्तर मोक्ष के काफी बाद आता है।”

“साक्षात्कार क्या है?” मैंने पूछा।

दाजी हँस पड़े। “देखिए, बाबूजी कहा करते थे कि अगर साक्षात्कार को परिभाषित किया जा सके तो वह साक्षात्कार नहीं होगा!” हालाँकि आप इसे परिभाषित करने का प्रयास कर सकते हैं, लेकिन यह परिभाषा से परे की चीज़ है। लेकिन इसे सरल तरीके से समझें तो हम कह सकते हैं कि साक्षात्कार का मतलब हमारे स्व का साक्षात्कार होता है। स्व, मतलब हमारे अस्तित्व का अन्तर्भाग और केन्द्र। लेकिन क्या हमारे अपने अन्तर्रतम केन्द्र और ईश्वर के प्रकटीकरण में कोई अन्तर है?”

“इसका मतलब स्व का साक्षात्कार और ईश्वर साक्षात्कार एक ही बात है।” मैंने कहा।

“इन्तज़ार कीजिए और देखिए।” दाजी ने कहा, “यह जो भी हो लेकिन यह वह न्यूनतम योग्यता है, जो गुरु में होनी चाहिए। अन्यथा, इसे प्राप्त करने में वह हमारी मदद कैसे करेगा? गुरु की सहायता की ज़रूरत निम्न स्तरों पर भी पड़ती है। हमारी यात्रा में ऐसे भी दौर आते हैं जब हम ऐसे रास्तों पर पहुँचते हैं जिनके आगे नहीं जाया जा सकता। यह ठीक उसी तरह है जैसे आप मैदानी इलाके में बड़े आराम से चले जा रहे हों और आपका सामना एक गहरी नदी से हो जाये। आप क्या करेंगे? इसलिए गुरु आपको उस पार ले जायेगा। और फिर बहुत उच्च स्तर पर आप दिव्य इच्छा के प्रति इतने समर्पित हो जायेंगे कि आप में प्रगति करने की कोई इच्छा ही नहीं रह जायेगी। अब, गुरु को फिर आना होगा। जैसे एक कंगारू अपने बच्चे को अपने थैले में रखता है, उसी प्रकार गुरु आपको अगले स्तर पर ले जाता है। जब हम अनन्त सागर के किनारों पर पहुँच जाते हैं तो हम पाते हैं कि गुरु वहाँ भी हमारी प्रतीक्षा कर रहा होता है, तब उसे हमें तैरना सिखाना होता है।”

“गुरु यह सब प्राणाहुति के माध्यम से अर्जित करता है। प्राणाहुति, जिसका वह संरक्षक होता है। हालाँकि समर्थ गुरु द्वारा प्रदान की गयी ‘कृपा’ की एक बूँद वह दिला सकती है जो हज़ारों प्राणाहुतियाँ भी कभी नहीं दे सकतीं। यह भी बड़े जादुई तरीके से होता है। कृपा क्या है और यह किस प्रकार प्राणाहुति से भिन्न है, इसे समझने के लिए व्यक्ति को इस कृपा का अनुभव करना होगा। यह अहसास की बात है। बिना प्राणाहुति और कृपा के हार्टफुलनेस अभ्यास का कोई अर्थ ही नहीं है और बिना गुरु के न तो कोई प्राणाहुति है और न ही कोई ऐसा है जो कृपा की धारा इस को जिज्ञासु की ओर मोड़ने का माध्यम बन सके। जिस प्रकार कोई चीज़ मुद्रा को सहारा

देती है, आध्यात्मिक अभ्यास के मामले में भी ऐसा ही होना चाहिए। मुद्रा के बदले में सोना रखा जाता था। अब स्वर्ण मानक नहीं है, लेकिन मुद्रा के बदले में और कुछ रखा जाता है क्योंकि बदले में कुछ रखे बिना मुद्रा का कोई मूल्य नहीं है। गुरु की भी यही भूमिका है—वह अभ्यास को सहारा देता है। वह उसकी गारण्टी देने वाला है—आध्यात्मिक स्वर्ण मानक।”

निष्कर्ष



मुझे हार्टफुलनेस का अनुभव करते हुए 15 साल हो चुके हैं। क्या कारण है कि मैं इतने साल से यह अभ्यास कर रहा हूँ? मैं अपने पहले दिन ही पूरी तरह सन्तुष्ट था। फिर जारी रखने वजह ही क्या? इन 15 वर्षों के दौरान मुझे जितनी शान्ति और सन्तुष्टि प्राप्त हुई है, उतनी ही अन्दरूनी बेचैनी भी बढ़ती जा रही है। यह बेचैनी एक शान्त आन्तरिक संकेत के प्रत्युत्तर में एक प्रश्न के रूप में आती है :

‘क्या आप वह हैं, जो आपको होना चाहिए?’

इस प्रश्न का जवाब बाहर से नहीं मिल सकता। यह प्रश्न अपने आपमें ही उत्तर है। अगर मैं वैसा हूँ जैसा मुझे होना चाहिए तो यह प्रश्न उठता ही नहीं। यह प्रश्न हताशा या लाचारी की अभिव्यक्ति नहीं है। बल्कि इसमें सम्भावनाएँ निहित हैं। ऐसे प्रश्नों के बिना विकास सम्भव नहीं।

रूपान्तरण हमारे हाथ में है। हार्टफुलनेस अभ्यास हमें रूपान्तरित होने के लिए उपकरण प्रदान करता है, लेकिन उनका इस्तेमाल हमें करना होता है। स्वयं को रूपान्तरित करना स्वयं को नया बनाना है, जो हमारे आन्तरिक-स्व के रूपान्तरण से शुरू होता है। ध्यान के अभ्यास से आन्तरिक रूपान्तरण स्वतः होने लगता है। बिना आन्तरिक रूपान्तरण के हमारे चरित्र और जीवनशैली में बदलाव महज़ एक सपना है। हालाँकि, ये बाहरी रूपान्तरण स्वतः नहीं होते। इसके लिए हमारी दृढ़ इच्छा की ज़रूरत होती है।

हार्टफुलनेस का यह चमत्कार है कि जिस क्षण हम खुद को बदलने का फ़ैसला कर लेते हैं, बदलाव आ चुका होता है। हमें इसे चाहने की ज़रूरत नहीं होती। हमें इसके लिए प्रार्थना करने की ज़रूरत नहीं होती। यहाँ तक कि हमें इसके लिए कार्य करने की भी ज़रूरत नहीं होती। जब हम बदलाव के लिए पूर्णतः तैयार और खुले होते हैं तो हमें बस अपने भीतर देखने की ज़रूरत होती है और हम उसे वहाँ मौजूद पाते हैं।

“क्या आप वह हैं, जो आपको होना चाहिए?”

इस प्रश्न का उत्तर हम एक दूसरे प्रश्न से भी दे सकते हैं : ‘मुझे कैसे पता चले कि मुझे क्या होना चाहिए?’ इसका जवाब भी बाहर से नहीं मिल सकता। केवल आपका हृदय बता सकता है। लेकिन अगर आप सुनना चाहें तो हृदय इस विषय पर चुप नहीं रहेगा। बल्कि यह जवाबों की झड़ी लगा देगा।

फिर भी भले ही हृदय आपको लगातार संकेत देता रहे, आप उसे पकड़ नहीं पायेंगे अगर आपका मन उफनते समन्दर की तरह अशान्त है। जब भी हमें ज़रूरत हो, हमारा हृदय हमारा मार्गदर्शन कर सकता है। लेकिन उसके संकेत हमारे विचारों, भावनाओं, खलबलियों और अन्य आवेगों के शोरगुल के बीच से उभरते हैं। जब हमारा आन्तरिक वातावरण इतना शोरगुल भरा हो तो हम हृदय के सूक्ष्म निर्देशों को कैसे पकड़ पायेंगे?

ऐसी परिस्थितियों को समझाने के लिए वैज्ञानिक सिग्नल-टू-नॉइज़ अनुपात का इस्तेमाल करते हैं। यह अनुपात बताता है कि पीछे चल रहे शोरगुल के बीच किस सीमा तक संकेतों को सुना जा सकता है। उदाहरण के लिए, जब हम रेडियो को एक निश्चित फ्रीक्वेंसी पर ठ्यून करते हैं तो हमें अक्सर कुछ घड़घड़ाहट सुनाई देती है। जब घड़घड़ाहट बहुत ज्यादा होती है तो उस फ्रीक्वेंसी पर कुछ स्पष्ट नहीं सुनाई देता। शोरगुल में संकेत दब कर रह जाता है।

हमारे भीतर के संकेत कभी चिल्लाते नहीं हैं। वे पीछे नहीं पड़ते। वे तो इतनी कोमलता और सौम्यता से आते हैं, जैसे कोई खुसर-फुसर। वे शब्द नहीं होते, बल्कि हमारे मन में उत्पन्न सूक्ष्म अहसास होते हैं। जब तक हमारा मन शान्त और स्थिर न हो और हमारे आवेग सन्तुलित न हों, हमें इन संकेतों का भान नहीं हो पायेगा।

कल्पना कीजिए कि एक ख़ज़ाने का पिटारा किसी झील की तलहटी में पड़ा है। आप उस ख़ज़ाने की सुनहरी चमक केवल तभी देख पायेंगे जब झील शान्त और साफ़ हो। लेकिन अगर पानी गन्दा हो और उसमें तलछट भरा हो तो आप कुछ देख नहीं पायेंगे। यह झील हमारा मन है और ख़ज़ाने का पिटारा हमारा हृदय। लहरें हमारे अनियमित विचार हैं और तलछट छापों का वह जाल है जो हमारे बोध को बिंगाड़ देता है। जब मन शान्त और साफ़ हो जाता है केवल तभी हृदय अपने रहस्य प्रकट करता है। मन के शान्त होने के लिए हम ध्यान करते हैं। और यह साफ़ हो सके, इसके लिए हम सफाई करते हैं। और हृदय के दिव्य सन्देशों के प्रति ग्रहणशील होने के लिए, हमें प्रार्थनापूर्ण और विनम्रता के आन्तरिक भाव को बनाए रखना चाहिए। ग्रहणशील भाव तथा शान्त एवं साफ़ मन होने से हृदय के आवेग स्वतः ही

प्रेरक विचारों में बदल जाते हैं। ये प्रेरक विचार ही अब जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के प्रति हमारी प्रतिक्रियाओं का संचालन करते हैं।

सम्पूर्ण इतिहास में, मानव जाति ने प्रेरणा को ऐसी चीज़ माना है जो स्वतः उठती है, जो हमारे चेतन नियन्त्रण से परे है। लेकिन हम स्वयं को इसके प्रति प्रहणशील ज़रुर बना सकते हैं। हमें बस ध्यान के अभ्यास से अपने मन को स्थिर करना है। इस अर्थ में, ध्यान प्रेरणा को सक्रिय रूप से पैदा करने और फिर उसे पकड़ने का एक तरीक़ा है।

लेकिन इस प्रेरणा को प्राप्त करने के बाद हम उसका करें क्या? हम इसका इस्तेमाल परिस्थितियों की प्रतिक्रिया हृदय से देने में कर सकते हैं या फिर इसकी जगह अपने मन को चुन सकते हैं। दाजी ने एक बार मुझे बताया था कि अगर हम हृदय के उन संकेतों को अनदेखा करते हैं जिनसे हमारा विकास होना है तो कोई अभ्यास हमारी मदद नहीं कर सकता। कोई गुरु हमारी मदद नहीं कर सकता। यहाँ तक कि ईश्वर भी हमारी मदद नहीं कर सकता।

“क्यों नहीं कर सकता?” मैंने उनसे पूछा।

“किसी सोये हुए व्यक्ति को जगाना आसान है लेकिन उसे कोई नहीं जगा सकता जो केवल सोने का बहाना कर रहा है।” उन्होंने कहा।

अगर आप हृदय के संकेतों का जवाब देते हैं तो वे आपसे और ज्यादा साफ़-साफ़ बात करने लगते हैं। यदि आप इन संकेतों को नज़रअन्दाज़ करते हैं तो वे कमज़ोर पड़ने लगते हैं फिर उन्हें समझ पाना मुश्किल हो जाता है। लेकिन हृदय का अनुसरण करना आसान है! बस हमें केवल थोड़े साहस और ठान लेने की ज़रूरत होती है, जो लगातार होने वाले अनुभवों से ही आता है।

हृदय की प्रेरणाएँ हमेशा उसकी प्रकृति के ही अनुरूप होती हैं। और यह प्रकृति प्रेम है और कुछ नहीं। हृदय कभी आपको गुमराह नहीं करेगा। उदाहरण के लिए, यह कभी आपको किसी को लूटने या किसी का दिल दुखाने को नहीं कहेगा। इसलिए हृदय की प्रेरणा के अनुसार जीवन जीते हुए हमारे कार्य सहजता से और अपने आप ही अच्छे होते हैं।

समय-समय पर हृदय हमें सकारात्मक कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। वह हमें किसी की मदद करने को कहता है या वह हमें एक नयी अन्तर्दृष्टि दे सकता है। हृदय आपके जमीर का भी रूप ले सकता है और किसी नकारात्मक कार्य के प्रति आगाह कर सकता है। हालाँकि, यह शायद ही कभी सकारात्मक फ़िडबैक देता हो। जैसा कि दाजी अक्सर कहते हैं, हृदय कभी आपको अच्छे कार्यों के लिए बधाई नहीं देता!

उन्होंने एक बार मुझसे पूछा था, “क्या आपके फेफड़े आपको ठीक से साँस लेने के लिए बधाई देते हैं?”

हम साँस के प्रति तभी सचेत होते हैं जब इसमें हमें मेहनत करनी पड़ती है। यह इस बात का संकेत है कि कुछ गड़बड़ है। इसी प्रकार हृदय भी कभी नहीं कहेगा, ‘वाह, आपका काम तो शानदार है!’ यह आपको तब सूचित करता है जब आपको खुद को बदलने की ज़रूरत हो।

हाँ, जब जीवन में आपका झुकाव विकास की ओर उम्मुख हो जाता है तो हृदय रहस्यमय आनन्द से सकारात्मक स्पन्दन करने लगता है। यह हृदय का उल्लास है आखिर उसका उद्देश्य जो पूर्ण होने जा रहा है।

लेकिन हमारा झुकाव विकास की ओर उम्मुख कब होता है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए, हमें हृदय के बारे में कुछ समझने की ज़रूरत है। हृदय का झुकाव सामूहिक हित की ओर होता है। अपने आप में ही उलझे रहकर, केवल अपना विकास हृदय को नहीं लुभाता क्योंकि हृदय स्वार्थ से प्रसित नहीं होता। मन सोचता है ‘मेरा’, लेकिन हृदय सोचता है ‘हमारा’। मन सोचता है ‘मैं’, लेकिन हृदय सोचता है ‘हम’। हृदय के लिए पूरा ब्रह्माण्ड एक है।

आध्यात्मिक जीवन वह होता है जो पूरे ब्रह्माण्ड के सम्पर्क में आ चुका हो। फिर यह केवल ‘मेरे’ के बारे में नहीं होता। जो धारा नदी से अलग हो जाती है शायद ही फिर सागर में मिल पाती हो। वह एक जगह पर रुक जाती है और फिर उसमें से बदबू आने लगती है। यदि हम अपने जीवन को उद्देश्यपूर्ण बनाना चाहते हैं—यदि हम इस अनन्त महासागर के तट पर पहुँचना चाहते हैं, तो फिर हमें व्यक्तिगत उद्देश्य को भूलना होगा। जब मैं केवल अपने बारे में ही सोचूँगा तो मेरा हृदय मेरे किसी भी काम में मेरा साथ नहीं देगा। मैंने खुद अपने जीवन में ऐसा होते हुए देखा है। उद्देश्य कभी व्यक्तिगत नहीं होता। यह हमेशा सामूहिक होता है। जब हम अपने शब्द, कर्म और उससे भी अपने ज्यादा इरादों में बड़ी गहराई से सर्वहितकारी होते हैं तो हमारा जीवन दूसरा रूप धारण कर लेता है। हम उन्नत हो जाते हैं। तब हमारे हृदय गरजना शुरू कर देते हैं। इसलिए हृदय की आवाज़ को ध्यान से सुनें और ईमानदारी से उसका अनुसरण करें। इसे अपना आन्तरिक गुरु बना लें। आपकी राह के हर क्रदम पर और आपके जीवन के हर स्तर पर यह आपका मार्गदर्शन करेगा। यही हार्टफुलनेस है।

हार्टफुलनेस का अनुभव कोजिए



हार्टफुलनेस का अनुभव करने के लिए:

- वेबसाइट: <http://www.heartfulness.org> or <http://daaji.org>
- फेसबुक: <https://www.facebook.com/practiceheartfulness/>
- <https://www.facebook.com/kamleshdaaji/>
- ट्विटर: <https://twitter.com/heartfulness>
- <https://twitter.com/kamleshdaaji>
- ईमेल: info@heartfulness.org
- ऑनलाइन मेडिटेशन करने के लिए Android और iPhone पर Let's Meditate ऐप डाउनलोड करें
- हार्टफुलनेस पत्रिका पढ़ने के लिए <http://www.heartfulnessmagazine.com> क्लिक करें

शब्दावली



आदि शक्ति : वह मूल बल, या मूल शक्ति जिसका इस्तेमाल यौगिक प्राणाहुति की प्रक्रिया में किया जाता है

अर्थ : जीविकोपार्जन का साधन, सांसारिक समृद्धि, धन और शक्ति

आसन : बैठने की मुद्रा, अष्टांग योग का तीसरा सोपान या अंग

अष्टांग योग : पतंजलि ने योग के आठ सोपान या अंग बताये हैं : यम (अच्छा आचार-व्यवहार), नियम (नियम, अनुपालन), आसन (बैठने की मुद्रा), प्राणायाम (श्वास), प्रत्याहार (आन्तरिक निर्लिप्तता), धारणा (मानसिक संकेन्द्रण), ध्यान (किसी चीज़ के बारे में निरन्तर सोचना), और समाधि (आरम्भिक दशा, सन्तुलन)

भक्ति : श्रद्धा

भोग : छापों को भोगने की प्रक्रिया। अनुभव, खुशी और कष्ट

ब्राह्मण या ब्रह्म : ईश्वर

धारणा : मन को स्थिर करना (पतंजलि के योग का छठा अंग)

धर्म : एक ऐसा शब्द, जिसके सन्दर्भ के अनुसार कई मायने हैं, कर्तव्य, नेकी, ईश्वरीय रास्ता, सत्य, सदाचार, वह जो जीवन को थामे रखता है, विधि और न्याय का जीवन

ध्यान : किसी चीज़ के बारे में निरन्तर सोचना, पतंजलि के अष्टांग योग का सातवाँ सोपान या अंग

गुरु : वह जो प्रकाश, ज्ञान प्रदान करता है, एक आध्यात्मिक शिक्षक

ज्ञान : प्रज्ञानवाद, ज्ञान

काम : इच्छा, प्रेम, आवेग, सुख और खुशियाँ

कर्म : कार्य

महात्मा : महान आत्मा

मोक्ष : जन्म-मरण के चक्र से स्थायी छुटकारा

निष्काम कर्म : परिणाम से निर्लिप्त होकर कार्य करना

नियम : अष्टांग योग का दूसरा सोपान या अंग, अनुपालन

परा ब्राह्मण : पूर्ण, ईश्वर अस्तित्व का परम कारण है

प्राणाहुति : प्राणों की आहुति, गुरु द्वारा जीवन शक्ति को जिज्ञासु के हृदय में प्रवेश कराना

प्राणायाम : प्राण (जीवन) और आयाम (विस्तार देना), हठ योग श्वास तकनीक, पतंजलि के अष्टांग योग का चौथा सोपान

प्रत्याहार : मन एवं ज्ञानेन्द्रियों की आन्तरिक निर्लिप्तता, पतंजलि के अष्टांग योग का पाँचवाँ सोपान

राज योग : आत्म साक्षात्कार या ईश्वर साक्षात्कार की प्राचीन पद्धति या विज्ञान

समाधि : वह सन्तुलन जो सृष्टि के आरम्भ में था, वह दशा जिसमें हम वास्तविकता से जुड़े रहते हैं, मौलिक (आरम्भिक) दशा जो सृष्टि की शुरुआत के समय प्रबल थी, पतंजलि के अष्टांग योग का आठवाँ सोपान

संस्कार : संचित कर्म एवं विचार, छापें

संन्यासी या संन्यासिन : वह जिसने घर त्याग कर दिया है और एकान्त जीवन व्यतीत कर रहा है

श्लोक : श्लोक

सिटिंग : एक ध्यान सत्र, जो आम तौर पर बीस मिनट से एक घण्टे तक चलता है, जिसमें हार्टफुलनेस प्रशिक्षक यौगिक सफाई या प्राणाहुति के उद्देश्य से समूह में या किसी एक व्यक्ति के साथ ध्यान करता है

स्वामी : हिन्दू पुजारी, सन्त

तवज्जो : यौगिक प्राणाहुति की प्रक्रिया से मिलता-जुलता एक सूफी शब्द

उपरति : आत्म-निर्लिप्तीकरण

यम : अष्टांग योग का प्रथम सोपान या अंग, आत्म-निषेध। हिंसा, झूठ, लूट-पाट, व्यभिचार से परहेज़ और प्राप्ति की इच्छा

योगनिद्रा : एक योगी की आध्यात्मिक दशा, जिसमें वह सोया हुआ प्रतीत होता है, लेकिन वह भीतर से जागृत अवस्था में होता है

योगी या योगिन : वह जो योग का अभ्यास करता/करती है, वह जो परम तत्व के साथ जुड़ जाता है।

टिप्पणियाँ

1. बालासुब्रमणियम, के. एस., उप निदेशक, कुण्ठुस्वामी शास्त्री रिसर्च इंस्टिट्यूट, चेन्नै, भारत, ने इस पुस्तक में इस्तेमाल किये गये सभी संस्कृत सन्दर्भों एवं अनुवादों की पुष्टि की है।
2. चन्द्रा, आर. 2009. रामचन्द्र की सम्पूर्ण कृतियाँ, भाग एक. कोलकाता : स्पिरिचुअल हाइरार्की पब्लिकेशन ट्रस्ट.
3. विवेकानन्द. 2009. Complete works of Swami Vivekananda, कोलकाता : अद्वैत आश्रम